VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
द्वितीय वर्ष
(डिप्लोमा कोर्स)
सेमेस्टर-IV

राजनीतिशास्त्र

पाश्चात्य राजनीतिक विचार

SYLLABUS

UNIT-I

Plato, Aristotle.

UNIT-II

Thomas Aquinas and St. Augustine.

UNIT-III

Machiavelli, Jean Bodin.

UNIT-IV

Thomas Hobbes, John Locke, J.J. Rousseau.

UNIT-V

Immanuel Kant, Edmund Burke, Jeremy Bentham.

UNIT-VI

T.H. Green, G.W. Hegel, Karl Marx.

UNIT-VII

Mary Wollstonecraft, Simone De Beauvoir, Rosa Luxemburg.

UNIT-VIII

John Rawls, Michael, J. Oakeshott and Hannah Arendt.

TOUCH n PASS

VIDYA UNIVERSITY PRESS®

पंजीकृत कार्यालय
विद्या एम्पायर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

लेखन एवं सम्पादन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I	: प्लेटो और अरस्तू	...3
UNIT-II	: थॉमस एक्विनास और सेण्ट ऑगस्टाइन	...27
UNIT-III	: मैकियावेली और जीन बोदां	...44
UNIT-IV	: हॉब्स, लॉक और रूसो	...64
UNIT-V	: कांट, बर्क और बेन्थम	...94
UNIT-VI	: ग्रीन, हीगल और मार्क्स	...116
UNIT-VII	: वोलस्टोनक्राफ्ट, बोउआर और लक्जेमबर्ग	...137
UNIT-VIII	: जॉन रॉल्स, माइकल ओकशॉट और हाना आरेंट	...144

UNIT-I

प्लेटो और अरस्तू
Plato and Aristotle

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्लेटो का दर्शनशास्त्र और राजनीतिक चिन्तन संबंधी विचार लिखिए।
Write the views related to Plato's philosophy and political thought.

उत्तर प्लेटो पाश्चात्य जगत का प्रथम राजनीतिक दार्शनिक है, क्योंकि उससे पहले पश्चिम में किसी ने भी राजनीतिक दर्शन का क्रमबद्ध रूप में प्रतिपादन नहीं किया है। प्लेटो के सम्बन्ध में इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उसका राजनीतिक दर्शन मानवता के लिए अमर सन्देश है। उसका यह कथन कि राज्य मानव का ही प्रतिरूप है और जिस प्रकार एक आदर्श मानव में सत, रज तथा तम गुणों का मेल होना चाहिए, उसी प्रकार एक आदर्श राज्य में, इन तीनों गुणों का सामंजस्य और सतोगुण की अन्य गुणों पर प्रधानता होनी चाहिए—एक शाश्वत सत्य है। इसी प्रकार प्लेटो का यह विश्वास कि 'शासन सत्ता केवल उन लोगों के हाथों में होनी चाहिए, जो आर्थिक स्वार्थों से निर्लिप्त तथा इहलौकिक आकर्षणों से परे हों' अमर संदेश है जो आज भी उतना ही सत्य है, जितना कि उस समय था।

प्र.2. 'रिपब्लिक' क्या है?
What is 'Republic'?

उत्तर 'रिपब्लिक' प्लेटो की सर्वोत्तम कृति है। इसमें उसकी नाटकीय शैली, कवित्व और कल्पना की उड़ान का अपूर्व रूप देखने को मिलता है। इसे 'गणराज्य' (Republic) और 'न्याय' (Concerning Justice) का दुहरा शीर्षक प्राप्त है, किन्तु इस आधार पर इसे राजनीति विज्ञान या विधानशास्त्र का ही ग्रन्थ नहीं समझा जाना चाहिए। यह इससे बहुत अधिक भिन्न है और इसमें समाजशास्त्रीय, आध्यात्मिक और शैक्षणिक सभी समस्याओं की विवेचना की गयी है। यह तो एक प्रकार से सम्पूर्ण मानव जीवन का दर्शन है।

प्र.3. अरस्तू के अनुसार संविधान क्या है?
What is constitution according to Aristotle?

उत्तर अरस्तू के अनुसार, "संविधान या पोलिटी राज्य का एक ऐसा संगठन है जिसका सम्बन्ध सामान्यतया राज्य के पदों के निर्धारण से है और विशेषकर ऐसे पद के निर्धारण से है जो समस्त राजनीतिक मामलों में सर्वोच्च हो।"

प्र.4. प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त के बारे में लिखिए।
Write about the Plato's education theory.

उत्तर प्लेटो ने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में संरक्षक वर्ग की शिक्षा पर इतने विस्तार से और ध्यानपूर्वक विचार किया है कि रूसो के शब्दों में, 'रिपब्लिक राजनीतिशास्त्र का ग्रन्थ नहीं, वरन् शिक्षा पर कभी भी लिखा गया सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है।' वास्तव में प्लेटो अपने राज्य के मूलाधार न्याय की प्राप्ति के लिए अनुरूप वातावरण की सृष्टि पर बहुत अधिक बल देता है और इसके अनुसार ऐसे वातावरण की उत्पत्ति के लिए दो बातों की आवश्यकता है—प्रथम, राज्य द्वारा नियन्त्रित सुनियोजित शिक्षा प्रणाली और दूसरी, साम्यवादी सामाजिक व्यवस्था। प्लेटो का विचार था कि इस शिक्षा पद्धति द्वारा आदर्श राज्य के लिए दार्शनिक शासक, संरक्षकों तथा सैनिकों की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी, साम्यवादी सामाजिक व्यवस्था के द्वारा परिवार तथा सम्पत्ति के प्रति प्रेम की उन परिस्थितियों को दूर किया जा सकेगा, जो संरक्षक तथा सैनिक वर्ग के कर्तव्य पालन में अधिक बाधक बनती हैं।

TOUCH 'n PASS

प्र.5. अरस्तू के अनुसार राज्य के उद्देश्य और कार्य क्या हैं?

What are the objectives and functions of the state according to Aristotle?

उत्तर अरस्तू के अनुसार, राज्य एक 'सकारात्मक अच्छाई' (Positive good) है, इसका कार्य केवल बुरे कामों अथवा अपराधों को रोकना ही नहीं, वरन् मानव को नैतिकता और सद्गुणों के मार्ग पर आगे बढ़ाना है। इस प्रकार राज्य का उद्देश्य है कि व्यक्ति के जीवन को श्रेष्ठ बनाना और व्यवहार में उसके द्वारा वे सभी कार्य किये जाने चाहिए, जो इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हों। संक्षेप में, वह राज्य को निम्नलिखित कार्य सौंपता है—

1. अपने सदस्यों के लिए पूर्ण और आत्मनिर्भर जीवन की व्यवस्था करना।
2. व्यक्ति की श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को श्रेष्ठ कार्य की आदत के रूप में विकसित करना।
3. अपने सदस्यों की प्राकृतिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना।
4. व्यक्तियों को ऐसे साधन और वातावरण प्रदान करना, जिसमें वे अपना शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास कर सकें। इसका लक्ष्य सर्वोच्च शुभ की प्राप्ति है।

प्र.6. सेबाइन के अनुसार 'न्याय' की क्या परिभाषा है?

What is the definition of 'Justice' according to Sabine?

उत्तर सेबाइन के शब्दों में, "न्याय समाज का एकता सूत्र है, यह उन व्यक्तियों के परस्पर तालमेल का नाम है, जिनमें से प्रत्येक ने अपनी प्रकृति और शिक्षा-दीक्षा के अनुसार अपने कर्त्तव्य को चुन लिया है और उसका पालन करता है। वह व्यक्तिगत धर्म भी है और सामाजिक धर्म भी, क्योंकि इसके द्वारा राज्य तथा उसके घटकों को परम कल्याण की प्राप्ति होती है।"

प्र.7. प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य का प्रतिपादन किस पुस्तक में किया है?

In which book did Plato propound his ideal state?

उत्तर प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य का प्रतिपादन 'रिपब्लिक' में किया है और उप-आदर्श राज्य का प्रतिपादन 'स्टेट्समैन' और प्रमुखतया 'लॉज' में। प्लेटो मूलत: एक आदर्शवादी विचारक है और उसे इसी रूप में जाना जाता रहेगा। राजनीतिक चिन्तन में प्लेटो की कीर्ति 'रिपब्लिक' और उसके इस आदर्शवादी चिन्तन के कारण ही है।

प्र.8. अरस्तू ने मनुष्य को किस प्रकार परिभाषित किया है?

How did Aristotle define human?

उत्तर समाज द्वारा सुसंस्कृत मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठतम होता है। परन्तु जब यह बिना कानुन तथा न्याय के जीवन व्यतीत करता है, तब वह सबसे भयंकर हो जाता है। यदि कोई मनुष्य ऐसा हो, जो समाज में न रह सकता हो अथवा जो यह कहता हो कि मुझे केवल अपने ही साधनों की आवश्यकता है, तो उसे मानव समाज का सदस्य मत समझो, वह या तो जंगली जानवर है या देवता।

प्र.9. अरस्तू के अनुसार 'नागरिकता' क्या है?

What is 'Citizenship' according to Aristotle?

उत्तर अरस्तू के अनुसार नागरिकता का निर्धारण जन्म, निवास-स्थान या कानूनी अधिकारों से नहीं हो जाता, वरन् वह इस सम्बन्ध में व्यक्ति की राजनीतिक क्षेत्र में सक्रियता को महत्त्व देता है। अरस्तू के मतानुसार "वह व्यक्ति नागरिक है जो स्थायी रूप से न्याय के प्रशासन तथा राजकीय पदों को ग्रहण करने की प्रक्रिया में भाग लेता है।" लोकतन्त्र के लिए वह इस लक्षण को अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है कि वह व्यक्ति नागरिक है जो राज्य के न्याय सम्बन्धी तथा विचार सम्बन्धी (कानून निर्माण के) कार्यों में भाग लेता है।

प्र.10. अरस्तू 'न्याय' को क्या मानता है?

What does Aristotle consider 'Justice'?

उत्तर प्लेटो के समान ही अरस्तू भी राज्य के लिए न्याय को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता है, लेकिन अरस्तू ने न्याय की धारणा का प्रतिपादन प्लेटो से भिन्न रूप में किया है। अरस्तू न्याय को 'सद्गुणों का समूह' मानता है। व्यक्ति के न्यायप्रिय होने के लिए यह आवश्यक है कि वह समुदाय के अन्य सदस्यों के प्रति अपने नैतिक कर्त्तव्यों का पालन करे। अरस्तू सर्वप्रथम न्याय के दो भेद करता है—पूर्ण न्याय और विशेष न्याय।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्लेटो का जीवन परिचय लिखिए।
Write a life sketch of Plato.

उत्तर

प्लेटो का जीवन परिचय
(Life Sketch of Plato)

पश्चिमी जगत के इस अमर दार्शनिक प्लेटो का जन्म एथेन्स के एक कुलीन परिवार में 428 ई. पू. में हुआ। उसका पिता अरिस्तौन एथेन्स के अन्तिम सम्राट काडरस के वंश में हुआ था और उसकी माता एथेन्स के प्रसिद्ध स्मृतिकार सोलन के घराने की थी। उसे उच्च कुल, वैभव, अद्वितीय सौन्दर्य, शारीरिक स्वास्थ्य, प्रखर बुद्धि और सभी प्रकार का सौभाग्य प्राप्त था। उसका वास्तविक नाम अरिस्तोक्लीज था, किन्तु उसके खूब भरे हुए चौड़े कन्धों के कारण उसके व्यायाम शिक्षक ने उसे 'प्लेटो' नाम दिया और कालान्तर में यही नाम प्रसिद्ध हो गया।

प्लेटो को प्रारम्भिक शिक्षा के बाद 20 वर्ष की अवस्था में सुकरात के विद्यालय में भेज दिया गया, जहाँ 8 वर्ष तक सुकरात के चरणों में बैठकर उसने ज्ञानार्जन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुलीन वर्ग में उत्पन्न होने के कारण तत्कालीन स्थिति के आधार पर उसकी स्वाभाविक इच्छा एथेन्स में राजनीतिक जीवन अपनाने की थी, किन्तु उसके प्रिय गुरु और उसकी दृष्टि में विश्व के श्रेष्ठतम मानव सुकरात को जब 399 ई.पू. में मृत्युदण्ड मिला तो इस घटना का उसके जीवन पर ऐसा आघात लगा कि उसने अपनी सारी योजनाएँ परिवर्तित कर दी और एक दार्शनिक जीवन को अपना लिया। फोस्टर के शब्दों में, "प्लेटो के जीवन में मोड़ 399 ई. में आया, जबकि वह 28 वर्ष का था।" प्लेटो के समस्त चिन्तन पर सुकरात का सबसे अधिक प्रभाव है। इस सम्बन्ध में मैक्सी ने लिखा है कि "प्लेटो में सुकरात पुनः जीवित हो गया है।"

सुकरात की मृत्यु के बाद प्लेटो ऐथेन्स में अधिक दिनों तक न रह सका और सर्वोत्तम शासन प्रणाली की खोज में अगले 12 वर्षों तक मिस्र, इटली और यूनान के नगरों का भ्रमण करता रहा। ऐसा समझा जाता है कि इन दिनों उसने गंगा के तट तक भारत की यात्रा भी की थी। इसी काल में वह सिसली भी गया और सिसली के सिराक्यूज राज्य में उसकी भेंट दियोन (Dion) नामक एक अत्यन्त सुसंस्कृत व्यक्ति एवं वहाँ के राजा दियोनिसियस प्रथम से हुई। एक युग बीत जाने पर पितृभूमि के प्रेम ने प्लेटो को फिर सताया और वह एथेन्स लौट आया। सुकरात की मृत्यु के ठीक 11 वर्ष बाद विदेश यात्रा से लौटकर प्लेटो ने 388 ई. पू. में एक शिक्षणालय खोला। यही प्लेटो की वह प्रसिद्ध 'अकादमी' (Academy) या शिक्षण संस्था थी जिसे यूरोप का प्रथम विश्वविद्यालय कहा जा सकता है। उसने अपने जीवन के शेष 49 वर्ष एक दार्शनिक और अध्यापक के रूप में यहीं बिताये। इस अकादमी में राजनीति, कानून और दर्शन–सभी विषयों की शिक्षा की व्यवस्था थी, किन्तु गणितशास्त्र और ज्यामिति की शिक्षा को प्रधानता प्राप्त थी। इस शिक्षणालय के प्रवेश द्वार पर ये शब्द अंकित थे, "Let no man ignorant of geometry enter hear."

367 ई. पू. में दियोनिसियस प्रथम की मृत्यु हुई और उसका पुत्र दियोनिसियस द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। इसी समय उसे दियोन से सन्देश मिला कि दार्शनिक राजा के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का अवसर आ गया है। इसमें निश्चित रूप से बड़ी सम्भावनाएँ निहित थीं, इसलिए वह सिराक्यूज गया। प्लेटो वहाँ कुछ समय तक रहा, किन्तु उसे विशेष सफलता नहीं मिली। इसी समय दियोनिसियस ने दियोन को सिराक्यूज से निर्वासित कर दिया। अतः दियोन के प्रश्न को लेकर दोनों के बीच एक विवाद उत्पन्न हो गया और प्लेटो 366 ई. पू. में एथेन्स लौट आया। इस प्रकार दार्शनिक राजा के सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप प्रदान करने में उसे सफलता नहीं मिली। 81 वर्ष की आयु में 347 ई. पूर्व अपने पीछे अरस्तू, आदि सैकड़ों शिष्यों को छोड़कर यह अमर दार्शनिक मृत्यु की गोद में सो गया।

प्र.2. प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की विशेषताओं को बताइए।
State the features of Plato's theory of justice.

उत्तर

प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की विशेषताएँ
(Features of Plato's Theory of Justice)

1. **नैतिक सिद्धान्त**—प्लेटो की न्याय सम्बन्धी धारणा वैधानिक नहीं, वरन् नैतिक और सर्वव्यापी है। इसमें मानव के केवल वैधानिक कर्त्तव्यों का ही नहीं वरन् समस्त कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है।

TOUCH 'n PASS

2. **न्याय जीवन का एक आन्तरिक तत्त्व और सन्तुलनकारी धारणा**—न्याय कृत्रिम या बाह्य वस्तु न होकर मनुष्य के अन्त:करण की एक पवित्र भावना है जिसका आधार आत्म संयम एवं आत्म त्याग है। इसमें इस बात पर बल दिया गया है कि जीवन में अति को नहीं वरन् सन्तुलन को अपनाया जाना चाहिए।
3. **कार्य विशिष्टता का सिद्धान्त**—न्याय सिद्धान्त के अनुसार मानवीय जीवन के तीन नैसर्गिक तत्त्व हैं : विवेक, साहस और तृष्णा (Appetite)। जीवन के इन तीन तत्त्वों के अनुरूप ही राज्य के नागरिकों को क्रमश: तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : शासक वर्ग, सैनिक वर्ग और उत्पादक वर्ग। इनमें से प्रत्येक वर्ग को विशेष मनोयोग से अपने आपको उसके कार्य में लगाये रखना चाहिए, जो कार्य उसकी प्रकृति के अनुकूल है। इस आधार पर ही कार्य-श्रेष्ठता और समस्त समाज में एकता की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। 'कार्य विशिष्टता' में यह बात भी सम्मिलित है कि व्यक्ति के द्वारा अन्य व्यक्तियों के कार्यों में हस्तक्षेप न किया जाय। इस सम्बन्ध में, जैसा कि डॉ० रूज ने लिखा है, 'अपने कार्य को करना और अन्य लोगों के कार्य में हस्तक्षेप न करना ही न्याय है।'
4. **अति व्यक्तिवाद का विरोधी और सावयव एकता का सिद्धान्त**—न्याय सिद्धान्त की एक प्रमुख मान्यता यह है कि व्यक्ति समष्टि का एक अंग है और समाज के विकास में ही व्यक्ति का विकास निहित है। कार्य विशिष्टता का सिद्धान्त वर्गों और व्यक्तियों में भिन्नता उत्पन्न करने के लिए नहीं वरन् एकता उत्पन्न करने के लिए अपनाया गया है। न्याय सिद्धान्त में 'व्यक्ति बनाम राज्य' जैसी कोई स्थिति नहीं है। इसमें व्यक्ति राज्य के लिए है और राज्य के प्रति उसके कर्त्तव्य ही हैं अधिकार नहीं। प्लेटो ने स्पष्टतया लिखा है कि 'नागरिकों में कर्त्तव्य भावना ही राज्य का न्याय सिद्धान्त है।'
5. **दार्शनिक शासक**—न्याय की प्राप्ति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि राज्य की शासन व्यवस्था विवेकशील, निस्वार्थी और कर्त्तव्यपरायण व्यक्तियों के हाथ में हो। उपर्युक्त गुणों से युक्त व्यक्ति को ही प्लेटो के द्वारा दार्शनिक शासक का नाम दिया गया है।

प्लेटो का न्याय सिद्धान्त सीधा-सादा होने के कारण महत्त्वहीन प्रतीत हो सकता है, लेकिन तत्त्कालीन परिस्थितियों के सम्बन्ध में इसका महत्त्व नितान्त स्पष्ट है। प्लेटो के पूर्व और उसके समय में समाज और राज्य में बड़ी अव्यवस्था फैली हुई थी और प्रत्येक राज्य धनी तथा निर्धन, इस प्रकार के दो परस्पर विरोधी वर्गों में बँटा हुआ था। उस समय 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त क्रियात्मक रूप में तो प्रचलित था ही थ्रेसीमेकस जैसे सोफिस्ट विचारक बुद्धि एवं तर्क की दृष्टि से भी इसे न्यायसंगत ठहरा रहे थे। इनके विरोध में नैतिकता तथा सदाचरण को प्रतिष्ठित करने के लिए तथा तत्त्कालीन राज्य और सामाजिक व्यवस्था की कुरीतियों को दूर करने के लिए प्लेटो ने श्रेष्ठ तर्कों के आधार पर न्याय के विचार को प्रतिपादित किया।

प्र.3. प्लेटो के साम्यवाद की तुलना आधुनिक साम्यवाद से किस प्रकार की जा सकती है? उल्लेख कीजिए।
How can Plato's communism be compared to modern communism? Mention.

उत्तर

प्लेटो के साम्यवाद की आधुनिक साम्यवाद से तुलना
(Plato's Communism Compared to Modern Communism)

प्लेटो ने साम्यवाद की वैसी ही विधिवत् विवेचना की है, जैसी की कार्ल मार्क्स या किसी और विचारक ने इसी आधार पर अनेक लेखकों के द्वारा प्लेटो को पश्चिमी जगत का प्रथम साम्यवादी विचारक माना गया है। प्लेटो के साम्यवाद और आधुनिक साम्यवाद के बीच निम्न समानताएँ देखी जा सकती हैं—

1. दोनों ही साम्यवादों का लक्ष्य राज्य में न्याय की व्यवस्था कर वर्ग-संघर्ष को दूर करना है, जिससे राज्य में राजनीतिक एकता और सामाजिक भाईचारे की भावना स्थापित हो सके।
2. दोनों ही व्यक्ति और राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों में राज्य को सर्वोपरि मानते हैं और व्यक्ति की तुलना में राज्य को प्रधानता देते हैं।
3. प्लेटो व आधुनिक साम्यवादी दोनों ही राज्य के हित में व्यक्ति की स्वार्थी प्रवृत्ति पर नियन्त्रण आवश्यक समझते हैं।
4. दोनों सार्वजनिक तथा सामाजिक हित में ही व्यक्ति का हित समझते हैं।
5. दोनों राज्य में शक्ति तथा पदों के लिए प्रतिद्वन्द्विता को समाप्त करना चाहते हैं।
6. दोनों राज्य के विभिन्न वर्गों के बीच आर्थिक प्रतियोगिता को समाप्त करने के पक्ष में हैं।

TOUCH 'n PASS

दोनों विचारधाराओं की उपर्युक्त समानताओं को दृष्टि में रखते हुए ही सम्भवतया मैक्सी ने लिखा है, "यदि प्लेटो आज जीवित होते, तो वे आधुनिक साम्यवादियों से भी प्रबल साम्यवादी होते।"

असमानताएँ (Inequalities)—यद्यपि दोनों विचारधाराओं में कुछ समानताएँ हैं, लेकिन इसके साथ ही इनमें असमानताएँ भी हैं और असमानताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण तथा आधारभूत हैं। प्रमुखतया निम्न असमानताओं का उल्लेख किया जा सकता है—

1. **लक्ष्य का भेद**—प्लेटो के साम्यवाद का लक्ष्य राजनीतिक है और वह विशिष्ट प्रकार की आर्थिक योजना के आधार पर राज्य में भ्रष्टाचार तथा कुशासन को दूर कर सुशासन स्थापित करना तथा राज्य में एकता को बनाये रखना चाहता है। आधुनिक साम्यवाद का प्रधान लक्ष्य आर्थिक है और वह विशेष प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था के आधार पर आर्थिक शक्ति का न्यायपूर्ण वितरण करना चाहता है।
2. **वर्गीय आधार पर भेद**—प्लेटो का साम्यवाद जैसा कि नैटार्प (Natorp) ने कहा है, 'अर्द्ध-साम्यवाद (half-communism) है, क्योंकि यह शासक तथा सैनिक वर्ग पर ही लागू होता है, जिसकी संख्या सम्पूर्ण जनसंख्या की आधे से भी कम होती है, किन्तु आधुनिक साम्यवाद इस अर्थ में सर्वव्यापी है कि वह राज्य के सभी नागरिकों पर लागू होता है।
3. **आर्थिक ढाँचे के सम्बन्ध में भेद**—प्लेटो का साम्यवाद राज्य के आर्थिक ढाँचे को बिलकुल अपरिवर्तित रखता है। कोई भी उत्पादक या उत्पादन क्रिया का कोई भी अंग इससे प्रभावित नहीं होता, किन्तु आधुनिक साम्यवाद राज्य के आर्थिक ढाँचे को पूर्णतया परिवर्तित कर देता है।
4. **उपभोग व्यवस्था के सम्बन्ध में भेद**—प्लेटो का साम्यवाद उपभोग के पदार्थों को प्रभावित करता है, इसका उत्पादन के साधनों से कोई सम्बन्ध नहीं है। अभिभावक वर्ग सामूहिक रूप से भोजन, वस्त्र और निवास का ही उपयोग करता है, भूमि या पूँजी का नहीं। आधुनिक समाजवाद या साम्यवाद उत्पादन के साधनों के सामूहिक स्वामित्व से ही अधिक सम्बन्धित है। प्लेटो के विपरीत यह उपभोग पदार्थों में निजी सम्पत्ति की व्यवस्था को बनाये रखता है।
5. **राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों के एकीकरण के सम्बन्ध में भेद**—प्लेटो का विचार है कि राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का एकीकरण राज्य को नष्ट कर देगा और इसी कारण उसने इस प्रकार के एकीकरण को रोका है, लेकिन आधुनिक साम्यवाद उत्पादक वर्ग को ही राजनीतिक शक्ति प्रदान करना चाहता है। 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व' का तात्पर्य है कि श्रमिक वर्ग के हाथ में ही राजनीतिक शक्ति हो।
6. **आधारभूत स्वरूप का भेद**—प्लेटो का साम्यवाद अपने स्वरूप में आध्यात्मिक है। बार्कर के शब्दों में, "यह समर्पण का मार्ग है और इस समर्पण की माँग सर्वोत्तम और केवल सर्वोत्तम मनुष्य से ही की गयी है।" उसने अभिभावक वर्ग को समस्त निजी सम्पत्ति से वंचित कर दिया है, क्योंकि निजी सम्पत्ति को सार्वजनिक क्षेत्र के कर्त्तव्यपालन की एक बाधा समझा गया है। किन्तु आधुनिक साम्यवाद पूर्णतया भौतिक है और वह सम्पत्ति की वांछनीयता को स्वीकार करते हुए उसके वितरण पर बल देता है।
7. **पारिवारिक साम्यवाद के सम्बन्ध में भेद**—प्लेटो के साम्यवाद में सम्पत्ति की सामूहिक व्यवस्था के साथ-साथ स्त्रियों की भी सामूहिक व्यवस्था की गयी है, किन्तु आधुनिक साम्यवाद स्त्रियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की किसी व्यवस्था का प्रतिपादन नहीं करता।
8. **नगर राज्यों और अन्तर्राष्ट्रीयता का भेद**—प्लेटो के साम्यवाद का प्रतिपादन यूनान के छोटे-छोटे नगर राज्यों को दृष्टि में रखकर ही किया गया है। उसके लिए ये नगर राज्य उच्चतम प्रकार के सामाजिक संगठन हैं और उसने कभी विश्व-व्यवस्था के सम्बन्ध में सोचा ही नहीं है। किन्तु आधुनिक साम्यवाद एक ऐसी नवीन व्यवस्था स्थापित करना चाहता है, जिसमें राष्ट्रीय राज्यों का कोई अस्तित्त्व नहीं होगा। वे समस्त विश्व के मजदूरों की आधारभूत एकता में विश्वास करते हैं।

वस्तुत: प्लेटो का साम्यवाद आधुनिक साम्यवाद से इतना अधिक भिन्न है कि टेलर के इस कथन को स्वीकार करना पड़ता है कि 'रिपब्लिक के समाजवाद और साम्यवाद के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहे जाने के बावजूद वस्तुत: इस ग्रन्थ में न तो समाजवाद पाया जाता है और न ही साम्यवाद।'

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. अरस्तू का जीवन परिचय एवं इनकी रचनाएँ लिखिए।
Write the life sketch of Aristotle and his work.

उत्तर

अरस्तू का जीवन परिचय
(Life Sketch of Aristotle)

आज विश्व अरस्तू से एथेन्स के विचारक के रूप में परिचित है, किन्तु वह एथेन्स का जन्मजात नागरिक नहीं था। उसका जन्म 384 ई. पूर्व में मकदूनिया के तट पर स्टेगीरा नामक स्थान पर हुआ था, जहाँ उनके पिता माही चिकित्सक थे। स्टेगीरा की परम्परागत संस्कृति यूनान से भिन्न थी। मकदूनिया में राजतन्त्र था और नगर राज्य नहीं थे। अरस्तू का पालन-पोषण सम्पन्नता और विपुलता के वातावरण में हुआ। 17 वर्ष की अवस्था में वह प्लेटो की कीर्ति से आकर्षित होकर एथेन्स आया और उसकी शिक्षण संस्था अकादमी में सम्मिलित हुआ। उसने अपने जीवन के अगले 20 वर्ष अर्थात् 347 ई. पू. प्लेटो की मृत्यु तक का समय इस अकादमी में विद्याध्ययन में व्यतीत किया। प्लेटो अपने शिष्य अरस्तू की योग्यता से बहुत प्रभावित था और उसे 'अकादमी का मस्तिष्क' या 'शरीरधारी बुद्धिमत्ता' (Nous) कहा करता था। प्लेटो की मृत्यु के बाद अरस्तू अकादमी का प्रधान बनने की आशा करता था, किन्तु विदेशी होने के कारण उसे वह पद नहीं मिल सका। यह पद प्लेटो के भतीजे को प्राप्त हुआ, जिससे अरस्तू को कुछ निराशा भी हुई।

एथेन्स छोड़ने के बाद अरस्तू 'एशिया माइनर' गया और वहाँ उसने अकादमी की एक शाखा स्थापित की। उसको यहाँ निमन्त्रित करने वाला अतार्नियस का राजा हर्मीज था। वह अरस्तू का बहुत सम्मान करता था और उसने अपनी दत्तक पुत्री पीथियास की शादी भी अरस्तू के साथ कर दी। यहाँ अरस्तू के तीन वर्ष बडे आनन्द के साथ बीते। हर्मीज के दरबार में ही उसे ईरान का पतनोन्मुख निरंकुशवाद देखने का अवसर मिला, जिसका उल्लेख उसने अपनी 'पॉलिटिकस' में किया है। उसने हर्मीज के दरबार में रहते हुए ही व्यावहारिक राजनीति, अर्थशास्त्र तथा राजतन्त्र का क्रियात्मक अनुभव प्राप्त किया। 342 ई. पू. में उसे मकदूनिया बुलाया गया और मकदूनिया के शासक फिलिप ने अपने तेरह वर्षीय पुत्र सिकन्दर की शिक्षा का भार उसे सौंपा। अरस्तू 6 वर्ष तक यहाँ रहा। सिकन्दर अपने गुरु अरस्तू का बहुत अधिक सम्मान करता था और 335 ई.पू. में सिकन्दर ने राजगद्दी पर बैठते ही अपने गुरु के विध्वस्त नगर को पुन: बनवा दिया। जब सिकन्दर विश्व विजय के लिए निकला, तो अरस्तू एथेन्स लौट आया और वहाँ एक स्वतन्त्र विचारक के रूप में जम गया। एथेन्स में उसने अपना एक निजी शिक्षालय स्थापित किया जो 'लीसियम' (Lyceum) के नाम से विख्यात हुआ। वह 12 वर्ष तक इसका प्रधान रहा और इस काल में उसे सिकन्दर से बराबर सहायता मिलती रही। 322 ई. पू. में सिकन्दर की मृत्यु के बाद जब मकदूनिया विरोधी दल को एथेन्स में सत्ता प्राप्त हुई, तो अपने आपको सुकरात वाली स्थिति से बचाने के लिए वह कैलसिसको भाग गया, क्योंकि धर्म के प्रति अविश्वास का आरोप उस पर लगाया जा चुका था। भागते समय उसने कहा था कि 'मैं एथेन्सवासियों को दर्शन के विरुद्ध दूसरी बार अपराध करने का मौका नहीं दूँगा।' उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी। कुछ व्यक्तियों का विचार है कि उसकी मृत्यु स्वाभाविक न होकर आत्महत्या का परिणाम थी।

यद्यपि अरस्तू ने अपने 62 वर्ष के जीवनकाल में यूनान के इतिहास का अत्यन्त संकटपूर्ण दौर देखा था, किन्तु जैसा कि फॉस्टर ने लिखा है, 'उस पर अपने समय की हलचलों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह समकालीन घटनाओं से बिलकुल विरक्त रहा।'

अरस्तू की रचनाएँ (Wprks of Aristotle)

अरस्तू सर्वतोमुखी प्रतिभा का धनी विलक्षण व्यक्ति था। उसने प्राणिशास्त्र , प्राकृतिक विज्ञान, ज्योतिषशास्त्र, शिक्षा, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, भाषण कला और काव्य लेखन, आदि सभी विषयों पर ग्रन्थ रचना की, जिनकी संख्या कुल मिलाकर 400 के लगभग बतलायी जाती है। राजनीतिशास्त्र पर उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ दो हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है 'पॉलिटिकस' और अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण 'एथेन्स का संविधान' (Constitution of Athens)। बार्कर ने अरस्तू की 'पॉलिटिकस' को राजनीति के क्षेत्र में 'Magnum Opus' या 'राजनीति की सर्वश्रेष्ठ रचना' कहा है। अरस्तू की यह रचना 'पॉलिटिकस' आठ भागों में विभाजित है।

प्र.5. प्लेटो के विचारों का महत्त्व बताइए।
State the importance of Plato's thoughts.

उत्तर

प्लेटो के विचारों का महत्त्व
(Importance of Plato's Thoughts)

प्लेटो को एक कल्पनादर्शी विचारक कहकर उसकी आलोचना की जाती है, किन्तु वास्तव में, प्लेटो एक कल्पनादर्शी विचारक नहीं, वरन् आदर्शवादी विचारक है जिसने अपनी आदर्शवादिता के आधार पर वास्तविकता में सुधार करने की चेष्टा की है। कुछ

TOUCH 'n PASS

सीमा तक प्लेटो के विचार काल्पनिक है। 'रिपब्लिक' में चित्रित आदर्श राज्य के सम्बन्ध में यह स्वयं कहता है कि इस प्रकार का आदर्श राज्य तो स्वर्ग में ही सम्भव है, पृथ्वी पर नहीं। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आदर्श राज्य के चित्रण में उसके द्वारा एक ऐसा प्रतीक खड़ा किया गया है जैसा कि राज्य को वास्तव में होना चाहिए। उसका कार्य विद्यमान राज-व्यवस्था में सुधार और उनके गुणों के मापदण्ड के लिए एक आदर्श की स्थापना करना मात्र है, अपने आदर्श की व्यावहारिकता पर विचार करना नहीं। प्लेटो एक आदर्शवादी और इसके साथ ही एक व्यावहारिक दार्शनिक है।

प्लेटो के राजदर्शन में कुछ अमरत्व के तत्त्व हैं। राजनीतिक चिन्तन को प्लेटो के अनुदाय और महत्त्व का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. **प्लेटो का न्याय सिद्धान्त**—प्लेटो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को उसका उचित अंश प्राप्त होना ही न्याय है। यह एक सही सिद्धान्त है और कोई भी श्रेष्ठ समाज इसी पर आधारित हो सकता है।
2. **कार्यात्मक विशेषीकरण का सिद्धान्त**—न्याय की धारणा से ही सम्बन्धित कार्यात्मक विशेषीकरण का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा केवल एक ही ऐसा कार्य किया जाना चाहिए, जिसे करने के लिए वह सर्वाधिक उपयुक्त हो। इस धारणा को अपनाकर ही समाज में व्यवस्था और श्रेष्ठता को प्राप्त किया जा सकता है।
3. **बुद्धि का शासन**—प्लेटो का यह विचार कि शासन का कार्य सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिए और शासन के क्षेत्र में गुण तथा योग्यता को सर्वोच्च महत्त्व प्राप्त होना चाहिए एक सार्वलौकिक सत्य है, जिसे अपनाने में ही मानवता का कल्याण निहित है।
4. **स्त्री-पुरुष की समानता**—प्लेटो नारी जाति को मुक्ति प्रदान करना और उसे राज्य की सेवा में लगाना चाहता है। यह न केवल एक श्रेष्ठ वरन् व्यावहारिक विचार है। वर्तमान में विश्व के सभी प्रगतिशील देशों में हजारों स्त्रियाँ सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य कर रही हैं।
5. **सम्पत्ति के साम्यवाद का विचार**—यद्यपि प्लेटो के सम्पत्ति के साम्यवाद के विचार को भूतकाल में नहीं अपनाया जा सका और इसे एक काल्पनिक विचार समझा गया, किन्तु आधुनिक काल में विश्व के कुछ देशों द्वारा सम्पत्ति के साम्यवाद के विचार को अपनाया गया है। इसे प्लेटो की दूरदर्शिता ही कहा जाना चाहिए कि वह धनी और निर्धन के भेद को कम करने पर बार-बार बल देता है।

प्लेटो राजनीतिक दर्शन के इतिहास में सर्वाधिक प्रभावशाली दार्शनिक है। वह एक यूनानी विचारक मात्र नहीं है और न ही उसके विचार देश और काल की सीमाओं में आबद्ध हैं, वे आज समस्त विश्व के राजदर्शन का आधार बने हुए हैं। सर थॉमस मूर की रचना 'यूटोपिया' में तो रिपब्लिक का प्रभाव लक्षित होता ही है, सिसरो की 'डी रिपब्लिका' (De Republica) में भी प्लेटो की इस रचना का उल्लेख मिलता है। सेण्ट आगस्टाइन ने 'रिपब्लिक' की सहायता से ही दैवी राज्य की कल्पना को चित्रित किया है और मध्य युग में भी प्लेटो के विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है। दाँते की 'डी मोनार्किया' (De Monarchia) बहुत अंशों में प्लेटो से प्रभावित है और आधुनिक विचारकों में रूसो और हीगल पर उसका सर्वाधिक प्रभाव देखा जा सकता है। वास्तव में, प्लेटो को एक साथ ही क्रान्तिकारी, आदर्शवादी और समाजवादी विचारधारा का जनक कहा जा सकता है। उसकी रचना 'रिपब्लिक' यदि आदर्श का प्रतिनिधित्व करती है, तो 'लॉज' यथार्थ और वास्तविकता का।

प्लेटो के अनुदाय के सम्बन्ध में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा लिखते हैं, "यूरोपीय चिन्तन के इतिहास में उसका इतना व्यापक प्रभाव रहा है कि वह निरा व्यक्ति न होकर एक परम्परा और प्रतीक के रूप में हमारे सामने आता है.....आध्यात्मिक और नैतिक वैशिष्ट्य की जो परम्परा उसने प्रतिपादित की है, वह उसे शंकराचार्य, दाँते और काण्ट की श्रेणी में स्थान दिलाती है।"

मैक्सी ने इन शब्दों में प्लेटो की महत्ता को आँकने का प्रयत्न किया है, "उनकी रचनाएँ चौबीस शताब्दियाँ बीत जाने के बाद आज भी आदर के साथ पढ़ी जाती हैं, इनसे प्रेरणा ग्रहण की जाती है और इनके आधार पर अपने मतों की पुष्टि की जाती है। किसी विचारक की अमरता और महत्ता का इससे अधिक प्रबल प्रमाण नहीं मिल सकता है।"

प्लेटो के अनुदाय का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि केटलिन ने उसे 'दर्शन का पोप' (The Pope of Philosophy) कहा है और एमर्सन कहते हैं कि "प्लेटो दर्शन है और दर्शन प्लेटो है।" ज्ञान के क्षेत्र में इससे बड़ा अनुदाय और इससे श्रेष्ठ शब्दावली और क्या हो सकती है?

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. प्लेटो के न्याय सिद्धान्त का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
Briefly mention Plato's theory of justice.

उत्तर

प्लेटो का न्याय सिद्धान्त
(Plato's Theory of Justice)

सिफालस और पोलीमार्कस, थ्रेसीमेकस तथा ग्लाउकन न्याय से सम्बन्धित जिन दृष्टिकोणों का प्रतिपादन करते हैं, उन तीनों की ही एक समान विशेषता है और वह यह कि ये न्याय को बाह्य मानते हैं। इसके विपरीत प्लेटो न्याय को आत्मा की अन्तर की वस्तु मानता है और इसी आधार पर इन तीनों दृष्टिकोणों को अस्वीकार कर देता है। प्लेटो का कहना है कि "न्याय मानव आत्मा की उचित अवस्था और मानवीय स्वभाव की प्राकृतिक माँग है।" प्लेटो कहता है कि 'न्याय राज्य की प्राण वायु है।'

प्लेटो न्याय के दो रूपों का वर्णन करता है—व्यक्तिगत और सामाजिक या राज्य से सम्बन्धित। पाइथागोरस के अनुयाइयों के समान प्लेटो की धारणा थी कि मानवीय आत्मा में तीन तत्त्व या अंश विद्यमान हैं—इन्द्रिय तृष्णा (Appetite), शौर्य (Spirit) और बुद्धि (Wisdom)। ये तीनों गुण जब उचित अनुपात में मानव मस्तिष्क में विद्यमान रहते हैं, तभी व्यक्ति न्याय का पालन कर सकता है। दूसरे शब्दों में, इन्द्रिय तृष्णा, शौर्य तथा बुद्धि का उचित समन्वय और सामंजस्य व्यक्ति के जीवन में न्याय की सृष्टि करता है।

इसके बाद प्लेटो राज्य के सम्बन्ध में न्याय का प्रतिपादन करता है। प्लेटो के अनुसार जिस प्रकार छोटे अक्षरों की तुलना में बड़े अक्षर आसानी से पढ़े जा सकते हैं, उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन की अपेक्षा राज्य में न्याय को स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। राज्य के सम्बन्ध में प्लेटो का विचार है कि "राज्य मानव मस्तिष्क का ही व्यापक रूप है। राज्य बलूत के वृक्ष अथवा चट्टानों से नहीं निकलते, वरन् वे उन लोगों के मस्तिष्क और चरित्र का परिणाम होते हैं, जो उनमें निवास करते हैं।" अत: मानव जीवन के इन गुणों के अनुरूप ही प्लेटो राज्य के चार गुण बतलाता है। ये हैं—बुद्धिमत्ता, साहस, संयम और न्याय। बुद्धिमत्ता, साहस और संयम-इन तीनों गुणों के प्रतिनिधि के रूप में राज्य के तीन वर्ग होते हैं जिन्हें क्रमश: शासक वर्ग, सैनिक या रक्षक वर्ग और उत्पादक या सेवक वर्ग कहा जाता है। राज्य में जब शासक नि:स्वार्थ भाव से हितों की रक्षा करते हुए शासन कार्य करता है, सैनिक वर्ग प्राणों की बाजी लगाते हुए देश की सीमाओं की रक्षा करता है और उत्पादक वर्ग सब कष्टों को सहन कर अपने उपयोग से अधिक उपभोग की सामग्रियाँ पैदा करता है-तभी राज्य में न्याय स्थिर रहता है। न्याय वस्तुत: कर्त्तव्य पालन से परे कोई वस्तु नहीं है। न्याय क्या है और उसका अधिवास कहाँ है, इसका उत्तर देते हुए प्लेटो ने कहा है कि "यह अपने निश्चित स्थान में अपने कर्त्तव्यों का पालन करना और दूसरे के कर्त्तव्यों में हस्तक्षेप न करना ही है और इसका निवास-स्थान अपना निश्चित कर्त्तव्य पूरा करने वाले प्रत्येक नागरिक के मन में है।" प्लेटो की न्याय सम्बन्धी धारणा विशेषीकरण (Specialization) के इस विचार पर आधारित है कि एक व्यक्ति को केवल एक ही ऐसा कार्य कुशलतापूर्वक करना चाहिए जो उसके स्वभाव के नितान्त अनुकूल हो। प्लेटो के इस न्याय सिद्धान्त के सम्बन्ध में बार्कर के विचार हैं, 'न्याय का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उस कर्त्तव्य का पालन, जो उसके प्रकृतिस्थ गुणों एवं सामाजिक स्थिति के अनुकूल है। नागरिक की स्वधर्म की चेतना तथा सार्वजनिक जीवन में उसकी अभिव्यंजना ही राज्य का न्याय है।' केटलिन प्लेटो की न्याय सम्बन्धी धारणा को सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'मेरा स्थान और उसके कर्त्तव्य यही न्याय है।' इस दृष्टि से प्लेटो का न्याय सिद्धान्त। हिन्दू दर्शन के स्वधर्म पालन के सिद्धान्त के निकट है।

प्र.7. प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की आलोचना किस प्रकार की गई है उल्लेख कीजिए।
How has Plato's theory of justice been criticized? Mention.

उत्तर

प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की आलोचना
(Plato's Theory of Justice)

यूनान की तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से न्याय की धारणा उपयोगी है तथा उसका अपना महत्त्व है, लेकिन वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की प्रमुखतया निम्नलिखित आलोचनाएँ की जाती हैं—

1. **कानूनी धारणा नहीं, वरन् एक नैतिक धारणा**—आज न्याय को एक कानूनी धारणा के रूप में स्वीकार किया जाता है, लेकिन प्लेटो ने न्याय का एक कानूनी धारणा के रूप में नहीं, वरन् एक नैतिक धारणा के रूप में प्रतिपादन किया है। बार्कर के अनुसार इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि प्लेटो का न्याय वस्तुत: न्याय नहीं है, वह केवल मनुष्यों को अपने कर्त्तव्यों तक सीमित करने वाली भावना मात्र है, कोई ठोस कानून नहीं है।' कानून और नैतिकता में अन्तर होता है, प्लेटो ने इस अन्तर को दृष्टि में नहीं रखा है और विलियम बॉयड के शब्दों में, 'उसने नैतिक कर्त्तव्य और वैधानिक दायित्व के बीच की सीमा को भी भुला दिया है।'

TOUCH 'n' PASS

2. **दार्शनिक वर्ग को समस्त शक्तियाँ प्रदान करना अनुचित**—प्लेटो ने शासन सम्बन्धी सभी शक्तियाँ एक ही वर्ग—दार्शनिक वर्ग को प्रदान कर दी हैं। हमारा सामान्य अनुभव यह बताता है कि एक ही वर्ग को राजनीतिक सत्ता का एकाधिकार प्रदान करने का परिणाम उस वर्ग को पतित करना और इस प्रकार राज्य को भ्रष्ट करना होता है। यह एक तथ्य है कि 'असीमित शक्ति पूर्णतया भ्रष्ट कर देती है।'
3. **मनुष्य और समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं**—न्याय सम्बन्धी किसी भी व्यवस्था का उद्देश्य मनुष्य और समाज का सर्वांगीण विकास होना चाहिए, लेकिन प्लेटो के न्याय सिद्धान्त के आधार पर इसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को केवल एक ही कार्य तक सीमित कर दिया गया है और इसका लक्ष्य व्यक्ति की एक ही प्रवृत्ति का विकास है। केवल एक ही कार्य पर बल देने से व्यक्ति की अन्य योग्यताओं, दूसरे शब्दों में व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता और इसके अभाव में समाज का सर्वांगीण विकास भी सम्भव नहीं है।
4. **गुणों के निर्धारण का कोई आधार नहीं**—इस सिद्धान्त में मानव जीवन के गुणों या तीन प्रवत्तियों के आधार पर समाज को तीन वर्गों में विभक्त तो किया गया है, किन्तु मानव में कौन-से गुण या प्रवृत्ति की प्रधानता है, इसके निर्धारण का आधार नहीं बतलाया गया है। ऐसी स्थिति में जन्म ही गुण के निर्धारण का एक आधार बन जाता है और इस आधार को श्रेष्ठकर नहीं कहा जा सकता। इस बात की क्या गारण्टी है कि दार्शनिकों की सन्तान भी विवेक और ज्ञान से युक्त होगी। प्लेटो कहता तो है कि कर्म का निर्धारण जन्म के आधार पर नहीं वरन् गुण के आधार पर होगा और लोहा ताँबे में तथा ताँबा स्वर्ण में बदल सकेगा। लेकिन प्लेटो ने इस सम्बन्ध में कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं की है और इसी कारण प्लेटो पर यह दोषारोपण किया जा सकता है कि वह 'लौह तत्त्व' (उत्पादक वर्ग के सदस्य) को निरन्तर लौह तत्त्व ही बनाये रखना चाहता है, उसे 'स्वर्ण-तत्त्व' (शासक वर्ग के सदस्य) में परिणत होने का अवसर नहीं देना चाहता।
5. **वर्तमान समय के राज्यों पर लागू करना सम्भव नहीं**—प्लेटो के न्याय सिद्धान्त को वर्तमान समय के राज्यों में लागू नहीं किया जा सकता। प्लेटो के समय में थोड़ी जनसंख्या वाले नगर राज्य थे, किन्तु वर्तमान समय में राज्यों की जनसंख्या करोड़ों होती है। इन राज्यों की जनसंख्या को तीन वर्गों में विभाजित कर प्रत्येक व्यक्ति के लिए कार्य निश्चित कर पाना संभव नहीं है।
6. **सर्वाधिकारवाद का मार्ग प्रशस्त होना**—प्लेटो का न्याय सिद्धान्त इस कारण भी अस्वीकार्य है कि इससे सर्वाधिकारवाद का मार्ग प्रशस्त होता है। समाज के किस व्यक्ति को किस श्रेणी में रखा जाय, इसका निश्चय शासक वर्ग ही करेगा। शासक वर्ग की शक्ति की कोई सीमा नहीं है और उसे सदैव शासक वर्ग ही बने रहना है। ये मार्ग सर्वाधिकारवाद की ओर ले जाते हैं जिसे किसी भी प्रकार मानव जाति के हित में नहीं कहा जा सकता।
7. **वर्गीय विशेषाधिकारों का समर्थन अनुचित**—एक विरोधाभास यह भी है कि न्याय से सामान्यतया हमें व्यक्तियों के प्रति व्यवहार में समानता का बोध होता है, किन्तु प्लेटो ने अपने न्याय सिद्धान्त के अन्तर्गत वर्गीय विशेषाधिकारों को न्यायोचित ठहराया है। न्याय के नाम पर वर्गीय विशेषाधिकारों का समर्थन किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता।

वास्तव में प्लेटो ने अपने न्याय सिद्धान्त का प्रतिपादन एक वैधानिक सिद्धान्त के रूप में नहीं, वरन् एक नैतिक सिद्धान्त के रूप में ही किया है।

प्र.8. प्लेटो की शिक्षा पद्धति की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
Describe the features of Plato's education system.

उत्तर

प्लेटो की शिक्षा पद्धति की विशेषताएँ
(Features of Plato's Education System)

प्लेटो की शिक्षा पद्धति की कई विशेषताएँ हैं जिनका उल्लेख निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. अपनी शिक्षा योजना के अन्तर्गत प्लेटो के द्वारा राज्य नियन्त्रित अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। शासक वर्ग शिक्षा के माध्यम से नागरिकों के चरित्र में सुधार करना और उनमें कर्त्तव्यों के निष्काम सम्पादन की प्रवृत्ति उत्पन्न करना चाहता है।
2. प्लेटोवादी शिक्षा का उद्देश्य—व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अर्थात् सर्वांगीण विकास करना है। इस दृष्टि से यह वास्तविक और पूर्ण शिक्षा है।

TOUCH 'n PASS

3. प्लेटो का अन्तिम उद्देश्य न्याय के आधार पर एक आदर्श राज्य की स्थापना करना है और इस कारण उसकी शिक्षा योजना में न्याय के तत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।
4. शिक्षा को प्रारम्भिक और उच्च इस प्रकार के दो भागों में बाँटना नितान्त मनोवैज्ञानिक और विज्ञान सम्मत है।
5. उसकी शिक्षा योजना स्त्री-पुरुष दोनों के लिए है और इस दृष्टि से इसे एथेन्स की शिक्षा पद्धति पर एक सुधार कहा जा सकता है, क्योंकि एथेन्स में केवल पुरुषों को ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था।
6. प्लेटो ने अपनी शिक्षा योजना के अन्तर्गत धर्म और नैतिकता को उचित स्थान प्रदान किया है। यह नैतिकता की दृष्टि से कुरुचिपूर्ण साहित्य और कलाकृतियों को सहन करने के लिए तैयार नहीं है।
7. शिक्षा पद्धति की एक विशेषता शासन को एक कला मानकर सुशासन के लिए शासकों के शिक्षण पर बल देना है।
8. प्लेटो ने शिक्षण को जीवन का अल्पकालीन कार्य न मानकर उसे आजीवन चलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। शिक्षाशास्त्रियों के लिए यह अवश्य ही एक गौरवपूर्ण दृष्टान्त है।

मैक्सी ने लिखा है कि 'प्लेटो की शिक्षा योजना अनेक दृष्टियों से स्पष्टतया आधुनिक लगती है।' शिक्षा के सम्बन्ध में प्लेटो की सबसे बड़ी विशेषता यह है उसने न केवल शिक्षा योजना का निरूपण किया, वरन अपनी 'अकादमी' में सभी विषयों की आदर्श शिक्षा का प्रबन्ध भी किया।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्लेटो की न्याय सम्बन्धी धारणा की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
Explain in detail Plato's concept of justice.

उत्तर

प्लेटो की न्याय सम्बन्धी धारणा
(Plato's concept of Justice)

'रिपब्लिक' का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विषय न्याय की प्रकृति एवं उसके अधिवास की खोज करना है 'रिपब्लिक' में उसकी इस न्याय सम्बन्धी धारणा को इतना प्रमुख स्थान प्राप्त है कि रिपब्लिक का उपशीर्षक 'न्याय से सम्बन्धित' (Concerning justice) रखा गया है। इस सम्बन्ध में बार्कर ने लिखा है कि 'चाहे वह सोफिस्ट वर्ग की धारणाओं का विरोध कर रहा हो या समाज की विद्यमान व्यवस्था में सुधार के लिए प्रयत्नशील हो, न्याय प्लेटो के विचार का मूलाधार रहा है।' ऐसा होना स्वाभाविक भी है। क्योंकि जैसा कि ईबन्सटीन ने कहा है, 'प्लेटो के न्याय सम्बन्धी विवेचन में उसके राजनीतिक दर्शन के समस्त तत्त्व शामिल हैं।

वर्तमान समय में 'न्याय' शब्द का प्रयोग कानून के आधार पर न्यायाधीश द्वारा दिये गये निर्णय के लिए किया जाता है। किन्तु प्लेटो ने 'न्याय' शब्द का प्रयोग वैधानिक अर्थ में नहीं वरन् नैतिक अर्थ में किया है। उसके द्वारा 'न्याय' शब्द का प्रयोग धर्म (लौकिक धर्म) के पर्यायवाची अर्थ में किया गया है। इसका अर्थ केवल यह है कि मनुष्य अपने उन सभी कर्त्तव्यों का पालन करे, जिनका पालन समाज की व्यवस्था और हित की दृष्टि से किया जाना आवश्यक है। प्लेटो का कहना है कि समाज अथवा राज्य समाज की आवश्यकता और व्यक्ति की योग्यता को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुछ कर्त्तव्य निश्चित करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सन्तोषपूर्वक अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही न्याय है। न्याय की इस धारणा के सम्बन्ध में अरस्तू ने कहा है, 'न्याय वह सम्पूर्ण सद्गुण है जो हम एक-दूसरे के साथ अपने व्यवहार में प्रदर्शित करते हैं।'

प्लेटो ने न्याय सम्बन्धी अपनी धारणा का प्रतिपादन करने से पूर्व तत्कालीन समय में प्रचलित न्याय सम्बन्धी धारणाओं का विवेचन और खण्डन किया है। तत्कालीन समय में इस प्रकार की निम्नलिखित धारणाएँ प्रचलित थीं—

1. **परम्परागत सिद्धान्त** (Traditionalism)—सर्वप्रथम उसने न्याय की परम्परागत धारणा का विश्लेषण किया है, जो कि परम्परागत नैतिकता के विचार पर आधारित है। प्लेटो के सम्वादों में न्याय की इस धारणा का प्रतिपादन सिफालस और उसके बाद उसके पुत्र पोलीमार्कस द्वारा किया गया है। सिफालस के अनुसार, "सत्य बोलना और दूसरों के ऋण को चुका देना ही न्याय है।"

   पोलीमार्कस के अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति को उसके प्रति उचित व्यवहार देना ही न्याय है।" उचित शब्द की व्याख्या में आगे चलकर कहा गया है कि "न्याय एक कला है, कला चतुराई के साथ प्रयोग करने का नाम है, अत: मित्र के प्रति श्रेष्ठ

और शत्रु के प्रति घृणित व्यवहार करना ही न्याय है।'' किन्तु प्लेटो न्याय की इस धारणा को स्वीकार नहीं करता और इसकी आलोचना करते हुए निम्नलिखित बातें कहता है—

(i) प्लेटो कहता है कि 'सत्य बोलने और ऋण चुकाने के रूप में न्याय की परिभाषा करना दोषपूर्ण है, क्योंकि ये दोनों ही कार्य कुछ परिस्थितियों में अन्यायपूर्ण और अनुचित हो सकते हैं जैसे सत्य बोलते हुए दूसरे को अपने देश के सैनिक रहस्यों की जानकारी प्रदान करना अन्याय है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति अपने स्वस्थ चित्त वाले मित्र से अस्त्र ले और उसके बाद अस्त्र देने वाला पागल हो जाय और अपने उन अस्त्रों को वापस माँगे, तो ऐसी अवस्था में अस्त्र लौटाना एक न्यायपूर्ण कार्य नहीं, वरन् एक अन्यायपूर्ण कार्य हो जाता है। अत: व्यापारिक नैतिकता के आधार पर न्याय की यह जो परिभाषा की गयी है, उसे सम्पूर्ण जीवन में नहीं अपनाया जा सकता।

(ii) इसके अतिरिक्त मित्रों के प्रति भलाई और शत्रुओं के प्रति बुराई की बात करना सरल है, परन्तु उस दशा में इसका क्या अर्थ होगा जबकि मित्र केवल नाम के लिए मित्र हो और यथार्थ में शत्रु हो। व्यावहारिक जीवन में अनेक बार ऐसा ही होता है।

(iii) यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि क्या शत्रुओं के प्रति बुराई करना न्याय है? यह तो नैतिकता के सबसे सामान्य सिद्धान्त के ही विरुद्ध है। जिन व्यक्तियों के विरुद्ध बुराई की जाती है, उनका अध:पतन हो जाता है। किसी व्यक्ति की स्थिति को पहले की अपेक्षा अधिक खराब करना न्याय कभी नहीं हो सकता।

(iv) इन सबके अतिरिक्त न्याय के सम्बन्ध में सिफालिस और पोलीमार्कस द्वारा जो विचार व्यक्त किये गये हैं, वे नितान्त वैयक्तिक हैं! यह वैयक्तिक दृष्टिकोण समाज के लिए अहितकर होगा, क्योंकि ऐसा व्यक्ति समाज की उपेक्षा करेगा। समष्टि के कल्याण की दृष्टि से किया गया कार्य ही न्याय हो सकता है। उपर्युक्त कारणों से प्लेटो न्याय की परम्परागत धारणा को स्वीकार नहीं करता।

2. **क्रान्तिकारी सिद्धान्त** (Radicalism)—प्लेटो की 'रिपब्लिक' में इस धारणा का प्रतिपादन सोफिस्ट वर्ग के प्रतिनिधि थ्रेसीमेकस ने किया है। यह धारणा 'शक्ति ही सत्य है' (Might is Right) के विचार पर आधारित है और इसके अनुसार, 'शक्तिशाली का हित साधन ही न्याय है' (Justice is the interest of the stronger)। न्याय के बारे में इसके दो दृष्टिकोण हैं। प्रथम, समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों को पूरा करना चाहता है, किन्तु केवल शक्तिशाली ही इसमें सफल होते हैं। समाज में सरकार सबसे अधिक शक्तिशाली होती है, इसलिए शासन द्वारा निर्मित कानूनों के पालन में ही न्याय है। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार शासक के अतिरिक्त शेष सभी व्यक्तियों के लिए न्याय का अर्थ दूसरों का हित करना है। इस प्रकार थ्रेसीमेकस दो बातें कहता है—(i) शासक वर्ग स्वयं अपने हितों की रक्षा के लिए ही शासन करता है, और (ii) अन्याय न्याय से श्रेयस्कर है।

प्लेटो थ्रेसीमेकस के इन दोनों ही विचारों का खण्डन करता है। प्रथम विचार के सम्बन्ध में उसका कथन है कि शासन करना एक कला है और सभी कलाओं का लक्ष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि करना नहीं, वरन् उन वस्तुओं के दोषों को दूर करना है, जिनके साथ उनका सम्बन्ध होता है। जिस प्रकार एक अच्छा शिक्षक विद्यार्थियों की त्रुटियों को दूर कर उनकी गुप्त शक्तियों को जाग्रत करता है, उसी प्रकार शासक का लक्ष्य प्रजा के दोषों, दु:खों और कठिनाइयों को दूर कर उनका कल्याण करना है। दूसरे विचार के सम्बन्ध में उसका कथन है कि न्याय पर चलने वाला व्यक्ति अन्याय की अपेक्षा अधिक सुखी है क्योंकि ऐसा व्यक्ति आदर्श जीवन की प्राप्ति का प्रयत्न करता है और इस आदर्श की प्राप्ति में ही सुख निहित है। सुख की अवस्था दुख की अवस्था से श्रेयस्कर है। इस प्रकार प्लेटो थ्रेसीमेकस की धारणा को अस्वीकार कर देता है।

3. **कार्यकारण सिद्धान्त** (Pragmatic Theory)—इसका प्रतिपादन ग्लाउकन (Gloucon) के द्वारा किया गया है। इसके अनुसार न्याय एक कृत्रिम वस्तु है और इसका आधार कोई शाश्वत नियम न होकर समयानुसार बदलती हुई परम्पराएँ हैं। वर्तमान अनुबन्धवादी विचारकों की भाँति उसका विश्वास है कि प्राकृतिक अवस्था में निर्बल मनुष्यों को अनेक कष्ट उठाने होते थे, इसलिए उन्होंने उसका त्याग कर एक समझौता किया, जिसके आधार पर कानूनों का निर्माण हुआ, जो मानवीय व्यवहार और न्याय का मापदण्ड निर्धारित करते हैं। दण्ड की शक्ति के भय के कारण ही मनुष्य न्याय के आधार पर कानूनों का पालन करते हैं। अत: 'न्याय भय का शिशु है' (Justice is the child of the fear)।

TOUCH 'n' PASS

ग्लाउकन के अनुसार न्याय भय की प्रवृत्ति पर आधारित है तथा यह निर्बलों की आवश्यकता है न कि शक्तिशाली का हित। इस प्रकार से ग्लाउकन के सिद्धान्त के निम्न दो परिणाम हैं—(i) राज्य पारस्परिक भय की प्रवृत्ति पर आधारित है न कि सर्वव्यापी नैतिक सिद्धान्तों पर। (ii) राज्य स्वाभाविक संगठन नहीं, वरन् परम्परागत कृत्रिम संगठन है।

प्लेटो इस धारणा से भी सहमत नहीं है। वह कानून और न्याय को समझौते पर आधारित बाहरी वस्तु नहीं मानता, वरन् आत्मा का आन्तरिक गुण समझता है। न्याय का गुण स्थायी रूप से व्यक्ति की आत्मा में निवास करता है और न्याय का पालन भय अथवा शक्ति के कारण नहीं, वरन् स्वाभाविक रूप से होता है।

प्र.2. अरस्तू द्वारा परिवार विषयक साम्यवाद की आलोचना किस प्रकार की गई है? बताइए।
How has family communism criticized by Aristotle? State.

उत्तर

अरस्तू द्वारा परिवार विषयक साम्यवाद की आलोचना
(Aristotle's Criticism on Family Communism)

प्लेटो का परिवार विषयक साम्यवाद एक नवीन कल्पना है और सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से इसके औचित्य पर अनेक सन्देह किये जा सकते हैं। प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने निम्नलिखित आधारों पर इस योजना की प्रबल आलोचना की थी—

1. प्लेटो अपने परिवार विषयक साम्यवाद की योजना के अन्तर्गत स्त्री और पुरुष के आधारभूत अन्तर को दृष्टि में नहीं रखता है। प्लेटो स्त्री और पुरुष में लिंगभेद के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं पाता। एक दृष्टान्त द्वारा वह सिद्ध करता है कि कुतिया भी कुत्ते की भाँति एक अच्छी पहरेदार हो सकती है। परन्तु उसका यह दृष्टान्त दुर्बल प्रतीत होता है। जैसा कि बार्कर ने लिखा है, "स्त्री की प्रकृति में लिंग एकमात्र तथ्य नहीं है जिसमें और केवल जिसमें ही वह पुरुष से भिन्न है, अपितु वह तो उसके समस्त जीवन को प्रभावित करता है।"
2. स्त्री और पुरुष के अस्थायी सम्बन्ध की योजना प्रस्तावित करते हुए प्लेटो पति-पत्नी के सम्बन्धों की पवित्रता को भुला देता है। पति और पत्नी का सम्पर्क केवल यौन सम्बन्ध के लिए नहीं होता, वरन् यह सम्बन्ध तो सम्पूर्ण जीवन का आधार है। इस प्रकार उसका साम्यवाद मानव मनोविज्ञान की अवहेलना करता है और इस दृष्टि से अव्यावहारिक है।
3. यह सन्देहपूर्ण है कि राज्य के माध्यम से संसर्ग स्थापित कर बुद्धिमानों, सदाचारियों और बलवानों की एक जाति उत्पन्न की जा सकेगी। अनाथ बालक अधिक लाड़ले और मानव जाति के दुर्बल नमूने सिद्ध होंगे। प्लेटो एक संदिग्ध हित के लिए एक मान्यता प्राप्त संस्था को समाप्त करता है, जो सदाचार का स्रोत और नागरिकता के गुणों की श्रेष्ठ पाठशाला है।
4. जो वस्तु सबकी होती है, उसकी परवाह करना कोई भी अपना उत्तरदायित्व नहीं समझता। प्लेटो की व्यवस्था में जब बच्चे सबके समझे जायेंगे, तो उनका लालन-पालन वैसे प्रेम, दुलार, ममता और सावधानी से नहीं हो सकता, जैसा वर्तमान परिवार व्यवस्था में होता है। अरस्तू इसी बात को दृष्टि में रखते हुए लिखता है, 'प्लेटोवादी पुत्र होने की अपेक्षा तो निकट सम्बन्धी होना कहीं अधिक उत्तम है।'
5. प्लेटो के साम्यवाद में अभिभावक वर्ग को पारिवारिक सुख से वंचित कर दिया गया है। इससे अभिभावक वर्ग प्रसन्न नहीं रह सकेगा और न ही वह अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों का सम्पादन भली-भाँति कर सकेगा।
6. उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के लिए प्लेटो ने अपनी साम्यवादी व्यवस्था को पशु जगत के उदाहरणों से पुष्ट करने का प्रयत्न किया है, किन्तु पशु जगत के नियमों को मानवीय जीवन पर लागू करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता।
7. प्लेटो ने इस व्यवस्था का प्रतिपादन राज्य में एकता स्थापित करने के लिए किया है, परन्तु प्लेटो के साम्यवाद में स्त्रियों को लेकर झगड़े निश्चित रूप से बहुत अधिक बढ़ जायेंगे।
8. स्त्रियों का साम्यवाद संयम के गुण को नष्ट कर देगा, जो कि श्रेष्ठ चरित्र का एक अत्यन्त आवश्यक तत्त्व है।
9. प्लेटो की व्यवस्था में अत्यन्त निकट सम्बन्धियों या स्वयं अपने ही रक्त से सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ अपवित्र कार्य होने की आशंका है।
10. प्लेटो की व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को उस क्षेत्र में केवल एक साधन बना दिया गया है, जिसमें स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के द्वारा साध्य होने का दावा किया जा सकता है।

TOUCH n PASS

11. प्लेटो की व्यवस्था का अभिभावक वर्ग पारिवारिक जीवन के व्यावहारिक अनुभव से वंचित रहेगा और उसके द्वारा उत्पादक वर्ग के व्यक्तियों की सामाजिक आवश्यकताओं और समस्याओं को ठीक रूप से नहीं समझा जा सकेगा। ऐसे व्यक्ति योग्य शासक के रूप में कार्य कर सकेंगे, यह बात बहुत सन्देहपूर्ण है।

प्लेटोवादी साम्यवाद के पक्ष में सैद्धान्तिक दृष्टि से चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाय, उसकी व्यावहारिकता नितान्त सन्देहास्पद है। समाज के एक पक्ष को साम्यवाद की परिधि में लाना और दूसरे को उससे मुक्त रखना अपने आप में नितान्त त्रुटिपूर्ण है। परिवार विषयक साम्यवाद की अव्यावहारिकता तो इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है कि अब तक व्यवहार में इसे कहीं पर भी अपनाया नहीं जा सका है।

प्र.3. प्लेटो के आदर्श राज्य से आप क्या समझते हैं तथा आदर्श राज्य की योजनाओं के दोष भी बताइए।
What do you understand by Plato's ideal state and also, state the demerits of the plans of the ideal state.

उत्तर

प्लेटो का आदर्श राज्य
(Plato's Ideal State)

प्लेटो ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में आदर्श राज्य का चित्रण किया है। 'आदर्श राज्य' के स्वरूप का निर्धारण करने में उसने केवल इस दृष्टि से ही विचार किया है कि राज्य का स्वरूप कैसा होना चाहिए? और उसने इस बात को ध्यान में नहीं रखा है कि क्या विद्यमान राज्य आदर्श की इस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। उसके लिए वस्तुत: यह एक नितान्त गौण प्रश्न है। प्लेटो के आदर्श राज्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **दार्शनिकों का शासन**—प्लेटो के आदर्श राज्य की सर्वप्रमुख विशेषता दार्शनिकों का शासन है। प्लेटो के अनुसार दार्शनिक शासक राज्य के हितों के साथ स्वयं अपने हितों का पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेता है और समुदाय के हितों की पूर्ति करना अपना सर्वप्रमुख तथा एकमात्र कर्त्तव्य समझता है। वह सत्य का अनवरत अन्वेषक होता है और उसमें एक श्रेष्ठ आत्मा के सभी लक्षण होते हैं।
2. **निरंकुशता असीमित नहीं**—प्लेटो के आदर्श राज्य में शासक वर्ग को असीमित निरंकुशता प्राप्त नहीं है। यद्यपि दार्शनिक शासक पर लिखित कानून या जनमत का नियन्त्रण नहीं है, लेकिन इस कारण इसे असीमित निरंकुशता नहीं कहा जा सकता। वह यूनानी साहित्य के प्रचलित अर्थों में स्वेच्छाचारी शासक नहीं है। दार्शनिक राजा इस बात के लिए बाध्य है कि वह संविधान के मूल प्रबन्धों का पालन करे।
3. **आदर्श राज्य में न्याय**—प्लेटो का आदर्श राज्य न्याय पर आधारित है। न्याय ही राज्य की एकता को बनाये रखने वाला सूत्र है। प्लेटो का कहना है कि समाज अथवा राज्य समाज की आवश्यकता और व्यक्ति की योग्यता को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुछ कर्त्तव्य निश्चित करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सन्तोषपूर्वक अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करना ही न्याय है। प्लेटो का आदर्श राज्य एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने निश्चित कर्त्तव्यों का पालन करता है।
4. **नागरिकों के तीन वर्ग**—आदर्श राज्य के समस्त नागरिकों को तीन वर्गों में बाँटा गया है—(i) शासक वर्ग (दार्शनिक राजा का वर्ग), (ii) सैनिक वर्ग, और (iii) उत्पादक वर्ग। ये वर्ग अपना विशेष कार्य करते हैं। दार्शनिक वर्ग राजनीतिज्ञता के कार्य से सम्बन्धित है, सैनिक वर्ग राज्य की रक्षा के कार्य से सम्बन्धित है और उत्पादक वर्ग श्रमिकों, कृषकों आदि के उपवर्गों में विभाजित होकर उत्पादन कार्यों में लगा हुआ है। प्लेटों ने प्रथम दो वर्गों—शासक वर्ग और सैनिक वर्ग को उच्च वर्ग या अभिभावक वर्ग का नाम दिया है।
5. **कार्यात्मक विशेषीकरण का सिद्धान्त**—प्लेटो के आदर्श राज्य में कार्यात्मक विशेषीकरण का सिद्धान्त लागू है। प्रत्येक व्यक्ति केवल उन्हीं कार्यों का सम्पादन करता है, जिन्हें करने के लिए वह सर्वाधिक योग्य है।
6. **शिक्षा व्यवस्था पर शासकों का नियन्त्रण**—प्लेटो के आदर्श राज्य में शिक्षा शासकों के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में है। प्लेटो का विचार है कि शिक्षा राज्य की प्रकृति और आवश्यकताओं के अनुकूल हो, इसके लिए शिक्षा राज्य द्वारा सुनियोजित और नियन्त्रित होनी चाहिए।

TOUCH 'n PASS

7. **कुरुचिपूर्ण कला तथा साहित्य पर प्रतिबन्ध**—प्लेटो के आदर्श राज्य में कला और साहित्य पर पर्याप्त नियन्त्रण की व्यवस्था है। यह व्यवस्था इस उद्देश्य से है कि अनैतिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली कोई भी वस्तु नवयुवक वर्ग के हाथों में न पड़ जाय। उसका विचार है कि केवल श्रेष्ठ साहित्य और कलाएँ ही प्रकाश में आनी चाहिए।
8. **आदर्श राज्य में साम्यवादी व्यवस्था**—प्लेटो के आदर्श राज्य में अभिभावक वर्ग के लिए सम्पत्ति और स्त्रियों के साम्यवाद की व्यवस्था की गयी है। शासक और सैनिक वर्ग की न तो अपनी कोई सम्पत्ति होती है और न ही परिवार। प्लेटो का विचार है कि यह साम्यवादी व्यवस्था ही ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकती है जिनमें अभिभावक वर्ग अपने कर्त्तव्यों का श्रेष्ठतापूर्वक सम्पादन कर सके।
9. **नर-नारियों को समान अधिकार**—आदर्श राज्य में प्लेटो नारियों को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर उन्हें शिक्षा, जीवनयापन, शासन, आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान अधिकार प्रदान करता है।
10. **सर्वाधिकारवादी राज्य**—प्लेटो का आदर्श राज्य अपनी प्रकृति में सर्वाधिकारवादी है, क्योंकि वह व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों को अपने नियन्त्रण में रखना चाहता है।

प्लेटो की आदर्श राज्य सम्बन्धी धारणा को व्यक्त करते हुए वेपर लिखते हैं कि 'उचित नेतृत्व, उचित सुरक्षा, उचित पोषण आदर्श राज्य के अपरिहार्य तत्त्व हैं।'

प्लेटो के आदर्श राज्य की योजना के दोष
(Demerits of Plato's Plan of the Ideal State)

प्लेटो के आदर्श राज्य को एक ऐसा स्वप्नलोकीय राज्य कहा जाता है, जिसकी स्थापना पृथ्वी पर सम्भव नहीं है। उसके द्वारा प्रस्तावित आदर्श राज्य की योजना की प्रमुख रूप से निम्नलिखित आलोचनाएँ की जा सकती हैं—

1. **स्वतन्त्रता का निषेध**—प्लेटो का आदर्श राज्य व्यक्तियों को आवश्यक स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करता है। वह इतना नियन्त्रणकारी है कि इसमें व्यक्तियों की सभी प्रवृत्तियों का विकास सम्भव नहीं है। प्लेटो का आदर्श राज्य एक सर्वाधिकारवादी राज्य है और यह अपने स्वभाव से ही मानवीय स्वतन्त्रता के हित में नहीं हो सकता है।
2. **कार्यात्मक विशेषीकरण की पद्धति अनुचित**—प्लेटो के आदर्श राज्य का एक प्रमुख आधार कार्यात्मक विशेषीकरण की पद्धति या न्याय है। कार्यात्मक विशेषीकरण की पद्धति या न्याय के आधार पर मानवीय व्यक्तित्त्व का एक विशेष पक्ष ही विकसित हो पाता है और शेष व्यक्तित्त्व अप्रभावित रहता है। हम यह कह सकते हैं कि प्लेटोवादी आदर्श राज्य में मानवीय व्यक्तित्त्व के सभी पक्षों के विकास की सम्भावना नहीं है।
3. **व्यक्ति और राज्य की समानता को अत्यधिक महत्त्व**—प्लेटो ने अपनी आदर्श राज्य की धारणा में राज्य और व्यक्ति की समानता को अत्यधिक और अनुचित महत्त्व दिया है। मानवीय आत्मा के तीन तत्त्वों के आधार पर राज्य के नागरिकों को तीन वर्गों में बाँटना वस्तुस्थिति से निश्चित रूप में भिन्न और अव्यावहारिक है। व्यक्ति और राज्य में इस प्रकार की समानताओं के निरूपण से अनेक शंकाएँ उत्पन्न होती हैं।
4. **उत्पादक वर्ग की नितान्त उपेक्षा**—प्लेटोवादी आदर्श राज्य की आलोचना का एक प्रमुख आधार यह है कि इसमें उत्पादक वर्ग की नितान्त अपेक्षा की गयी है। वह अन्य दोनों वर्गों के समान इनके लिए न तो विशेष शिक्षा की व्यवस्था करता है और न ही सामाजिक ढाँचे में उनको महत्त्वपूर्ण स्थिति प्रदान करता है।
   उत्पादक वर्ग की यह शोचनीय उपेक्षा राज्य के अस्तित्त्व को ही नष्ट करने वाली है। प्लेटो इस बात को स्वीकार करता है कि निम्न वर्ग में उत्पन्न व्यक्तियों को अपनी योग्यता के आधार पर उच्च वर्ग में सम्मिलित होने का अधिकार मिलना चाहिए, लेकिन प्लेटो इस कार्य को सम्भव बनाने हेतु उत्पादक वर्ग के लिए समुचित शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था नहीं करता।
5. **शासक वर्ग की निरंकुश सत्ता**—प्लेटो के आदर्श राज्य में कानूनों और नियमों का पूर्ण अभाव है और इसमें दार्शनिकों को निरंकुश सत्ता सौंप दी गयी है, जिसे किसी भी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता। इन व्यक्तियों को शिक्षा द्वारा चाहे कितना ही विवेकशील और बीतरागी क्यों न बना दिया गया हो, अनियन्त्रित शक्ति पा जाने पर मानवीय स्वभाव के अनुसार इसमें दोष आ जाना नितान्त स्वाभाविक है। इसी आधार पर बार्कर ने प्लेटो के आदर्श राज्य को 'प्रबुद्ध निरंकुशवाद' (Enlightened tyranny) की संज्ञा दी है।

TOUCH 'n' PASS

6. **शासन के लिए आवश्यक तत्त्वों की उपेक्षा**—प्लेटो ने आदर्श राज्य में शासन के लिए आवश्यक अनेक तत्त्वों की घोर उपेक्षा की है। उनके द्वारा कानूनों, सरकारी पदाधिकारियों की नियुक्ति, न्यायालयों का प्रबन्ध और अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था का कोई वर्णन नहीं किया गया है। इन तत्त्वों की उचित व्यवस्था के बिना एक आदर्श राज्य का कार्य-संचालन कठिन ही प्रतीत होता है।
7. दास प्रथा के सम्बन्ध में मौन-आदर्श राज्य की धारणा का एक बड़ा दोष प्लेटो का तत्त्कालीन समाज के प्रमुख लक्षण दास-प्रथा के सम्बन्ध में मौन रहना है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्लेटो ने इसे अपनी मौन स्वीकृति प्रदान कर दी है।

अरस्तू द्वारा आलोचना (Criticism by Aristotle)

अरस्तू ने अपने ग्रन्थ 'पॉलिटिकस' (Politicus) में प्लेटो के आदर्श राज्य की धारणा की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की है—

1. प्लेटो की साम्यवादी योजना मानवीय प्रकृति के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध है।
2. प्लेटो का राज्य में पूर्ण एकता का विचार राज्य के लिए विनाशकारक है, क्योंकि राज्य की प्रकृति का मूल तत्त्व ही बहुलता है।
3. प्लेटो अपने आदर्श राज्य में निम्न वर्गों की बिलकुल उपेक्षा करता है, जो कि राज्य की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग है। प्लेटो की यह उपेक्षा समाज को दो परस्पर विरोधी वर्गों में विभाजित कर सकती है।

प्र.4. अरस्तू के आदर्श राज्य का विस्तृत वर्णन कीजिए। आदर्श राज्य की विशेषताओं पर भी प्रकाश डालिए।
Describe in detail Aristotle's ideal state. Also, throw light on the features of an ideal state.

उत्तर

अरस्तू का आदर्श राज्य
(Aristotle's Ideal State)

'पॉलिटिकस' (Politicus) की सातवीं पुस्तक में अरस्तू प्लेटो के 'लॉज' (Laws) से प्रेरणा ग्रहण करते हुए अपने आदर्श राज्य का एक सुन्दर और व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। प्लेटो द्वारा रिपब्लिक में प्रतिपादित आदर्श राज्य में एक दार्शनिक राजा राज्य करता है जिसकी शक्ति पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है और जिसे जन-स्वीकृति की भी आवश्यकता नहीं है। इस आदर्श राज्य की असम्भावना को समझकर प्लेटो ने 'लॉज' में अंकित अपने उपादर्श राज्य में दार्शनिक शासन के स्थान पर कानून के शासन को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की है। किन्तु ऐसा करते समय भी उनके मन और मस्तिष्क पर 'रिपब्लिक' का आदर्श राज्य ही छाया रहता है और इस कारण कानून, शासन तथा जनमत को प्रतिष्ठित करने के लिए राज्य व्यवस्था में जो दूसरे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये जाने चाहिए, प्लेटो वे परिवर्तन नहीं कर सका है। इसका श्रेय उसके महान् शिष्य अरस्तू को है। अपने ग्रन्थ 'पॉलिटिकस' में उसने न केवल कानून को उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया है, वरन् राज्य के वास्तविक प्रशासन में अनुभव, रीति-रिवाज और जनमत के महत्त्व को भी स्वीकार किया है। अरस्तू ने प्लेटो के 'उपादर्श राज्य' (Sub-ideal State) को विधिवत् रूप में अपने आदर्श राज्य के रूप में ग्रहण किया है।

अरस्तू के आदर्श राज्य की विशेषताएँ
(Features of Aristotle's Ideal State)

अरस्तू के अनुसार शासन का उद्देश्य व्यक्ति को उत्तम जीवन व्यतीत करने के लिए साधन प्रस्तुत करना है। अपने इसी दृष्टिकोण के आधार पर अरस्तू ने अपने आदर्श राज्य की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है—

1. **आदर्श राज्य का लक्ष्य व्यक्ति का नैतिक विकास**—अरस्तू के अनुसार आदर्श राज्य का लक्ष्य अपने नागरिकों का नैतिक कल्याण है। राज्य समुदायों का समुदाय है। प्रत्येक समुदाय अपने सदस्यों के हित को दृष्टि में रखता है और राज्य सभी समुदायों में सर्वोच्च है, इसलिए इसका उद्देश्य सर्वोच्च हित साधन है। इसका उद्देश्य व्यक्तियों के नैतिक जीवन को सुधारना है। अरस्तू की प्रसिद्ध उक्ति है—राज्य जीवन के लिए अस्तित्त्व में आया और वह अच्छे जीवन के लिए अस्तित्त्व में बना हुआ है।' यहाँ पर 'अच्छे जीवन' शब्दों का प्रयोग 'नैतिक जीवन' के अर्थ में ही किया गया है।
2. **मध्यम मार्ग का सिद्धान्त : संवैधानिकतन्त्री शासन व्यवस्था** (Theory of Mean-Polity)—अरस्तू प्लेटो के समान अतिवादी नहीं, अपितु अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण मध्यम मार्ग का अनुसरण करने वाला था। उसके शब्दों में,

TOUCH 'n' PASS

'मध्यम मार्ग का अनुसरण करने वाला जीवन ही अनिवार्यत: श्रेष्ठ जीवन है और यह मध्यम मार्ग ही ऐसा है जिसे प्राप्त कर लेना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव है।'' अरस्तू अपने आदर्श राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में मध्यम मार्ग को अपनाने पर बल देता है।

आदर्श राज्य की शासन व्यवस्था पर विचार करते हुए अरस्तू कहता है कि सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त कोई एक व्यक्ति राजा हो जाय या सर्वोत्तम गुणों वाले कुछ व्यक्तियों के हाथ में शासन शक्ति आ जाय तो शासक की आज्ञाओं का पालन आनन्दपूर्वक किया जाना चाहिए। किन्तु व्यवहार में इन आदर्श परिस्थितियों या व्यक्तियों की प्राप्ति सहज सम्भव नहीं है, अत: सर्वोत्तम रूप में जो शासन प्राप्त किया जा सकता है उसी के लिए चेष्टा की जानी चाहिए। प्राप्ति योग्य सर्वोत्तम शासन का चुनाव स्वर्णिम मध्यम मार्ग के आधार पर ही किया जा सकता है और मध्यममार्गी शासन व्यवस्था संवैधानिक तन्त्र या सुप्रजातन्त्र (Polity) ही हो सकती है।

नगर राज्य में तीन वर्ग होते हैं—(i) अत्यन्त सम्पन्न, (ii) अत्यन्त निर्धन, और (iii) इन दोनों के बीच का मध्य वित्त वर्ग। संवैधानिकतन्त्र या सुप्रजातन्त्र में इन तीनों वर्गों में से तीसरे वर्ग के द्वारा ही शासन किया जाता है।

संवैधानिकतन्त्र या सुप्रजातन्त्र एक प्रकार की मिश्रित शासन प्रणाली है और अरस्तू ने इसे 'लोकतन्त्र व धनिकतन्त्र का मेल' (Fusion of Democracy and Oligarchy) बताया है। अरस्तु के अनुसार मध्य वर्ग की प्रधानता रखने वाली शासन व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है। अरस्तू के अनुसार मध्यम मार्ग की दृष्टि से व्यावहारिक आधार पर सर्वोत्तम शासन व्यवस्था संवैधानिकतन्त्र या सुप्रजातन्त्र (Polity) ही है। इस मध्यममार्गी शासन व्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण 'विधि की सर्वोच्चता' है।

अरस्तू ने अपने आदर्श राज्य में तीन प्रकार के कार्य करने वाली तीन संस्थाओं का वर्णन किया है (i) शासन सम्बन्धी विषयों पर विचार कर निर्णय करने के लिए असेम्बली (Assembly)—सब नागरिक जिसके सदस्य होते थे, (ii) शासन करने वाले अधिकारी, जिन्हें अरस्तू 'मजिस्ट्रेसी' (Magistracy) का नाम देता है, (iii) न्यायालय और न्यायिक अधिकारी (Judiciary)।

3. **विधि की सर्वोच्चता**—अरस्तू के आदर्श की एक प्रमुख विशेषता विधि की सर्वोच्चता है। अरस्तू विधि की सर्वोच्चता का समर्थन करते हुए लिखता है—''व्यक्ति के शासन की तुलना में विधि का शासन श्रेयकर हैं, क्योंकि विधि ऐसा विवेक है जिस पर व्यक्ति की इच्छा का प्रभाव नहीं पड़ता है।'' यह सम्भव है कि कानून के कठोर शासन से कुछ अन्याय हों, किन्तु यह व्यक्ति की निरंकुश एवं स्वच्छन्द इच्छा से होने वाले अन्याय से कम होगा। सेबाइन (Sabine) के शब्दों में ''अरस्तू का आदर्श सदैव ही संवैधानिक शासन रहा है—निरंकुश राज्य नहीं, चाहे वह दार्शनिक राजा का निरंकुश राज्य ही क्यों न हो। अरस्तू आरम्भ से ही इस विचार का प्रतिपादन करता है कि श्रेष्ठ राज्य में अन्तिम सम्प्रभु कानून ही होना चाहिए, कोई व्यक्ति नहीं। उसने इस बात को मानवीय दुर्बलता के प्रति रियायत के रूप में नहीं, वरन् अच्छे शासन के अनिवार्य अंग के रूप में और इस प्रकार एक आदर्श राज्य के रूप में स्वीकार किया है।''

शासनतन्त्र की चर्चा करते हुए अरस्तू मानता है कि यदि किसी समाज में ऐसा व्यक्ति मिल सके, जिसके वैयक्तिक गुण सर्वश्रेष्ठ और सम्पूर्ण समाज के सामूहिक गुणों से अधिक हों उसे शासक बनाना अच्छा होगा, क्योंकि वह मनुष्यों में देवता है। परन्तु बर्बर जातियों को छोड़कर अन्य राज्यों में ऐसे व्यक्ति का मिलना कठिन है, अत: वह सर्वशक्तिशाली सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों के निरंकुश शासन की अपेक्षा संवैधानिक या नियमों में बँधे हुए शासन को अच्छा समझता है। विधि के शासन का सबसे बड़ा गुण यह है विधियाँ सबके साथ समान व्यवहार करती है, लेकिन व्यक्ति का शासन पक्षपातपूर्ण हो सकता है।

4. **जनसंख्या**—अरस्तू के अनुसार आदर्श राज्य में जनसंख्या न तो बहुत अधिक होनी चाहिए और भी बहुत कम। जनसंख्या अधिक होने पर कानून और व्यवस्था बनाये रखना कठिन हो जायेगा और जनसंख्या कम होने पर राज्य अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकेगा। नागरिक कार्यों को उचित रीति से सम्पादन करने के लिए आवश्यक है कि सब नागरिक एक-दूसरे को वैयक्तिक रूप से जानते हों। इसलिए उनकी अधिकतम संख्या उतनी ही होनी चाहिए, जितनी राज्य की आवश्यकताएँ पूरी कर उसे आत्मनिर्भर बनाने के लिए पर्याप्त हों। अरस्तू ने प्लेटो के समान आदर्श राज्य की जनसंख्या बिल्कुल निश्चित तो नहीं की है, किन्तु यह नितान्त स्पष्ट है कि कम जनसंख्या वाला नगर राज्य ही उसका आदर्श हो सकता है।

TOUCH n PASS

5. **प्रदेश**—अरस्तू के अनुसार राज्य का प्रदेश बहुत विशाल नहीं होना चाहिए, किन्तु इसके साथ ही इतना अवश्य होना चाहिए कि उसमें जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें और उस पर निवास करने वाली जनता संयम और उदारतापूर्ण जीवन बिता सके। राज्य का क्षेत्र ऐसा होना चाहिए, जिसमें शत्रुओं का प्रवेश कठिन हो तथा जिसकी रक्षा आसानी से हो सके। राज्य ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ जल और स्थल दोनों मार्गों से आसानी से पहुँचा जा सके क्योंकि ऐसा होने पर ही राज्य का विकास एक व्यापारिक केन्द्र के रूप में सम्भव है।
6. **नागरिकों का चरित्र**—अरस्तू का विचार है कि चरित्र और योग्यता में जनता यूनानियों के समान होनी चाहिए, जिनमें उत्तरी जातियों के उत्साह और एशियाई जातियों की बुद्धिमत्ता का मेल है। उसका विचार है कि बुद्धिमत्ता, साहस और उत्साह के मेल से ही नागरिक अपना राजनीतिक विकास कर सकते हैं।
7. **शिक्षा**—अरस्तू आदर्श राज्य के लिए आवश्यक चरित्र-निर्माण की दिशा में शिक्षा के महत्त्व पर बहुत अधिक बल देता है। उसके लिए राज्य एक शिक्षण संस्था है और आदर्श राज्य की यह एक प्राथमिक आवश्यकता है कि सभी नागरिकों के लिए एक ही प्रकार की अनिवार्य तथा सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था हो।
8. **राज्य की स्थिति**—नगर राज्य में बस्ती का स्थान इन बातों को ध्यान में रखते हुए चुना जाना चाहिए—सार्वजनिक स्वास्थ्य, राजनीतिक सुविधा और सैनिक आवश्यकताएँ। नगर को बसाते समय सौन्दर्य का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। राज्य का प्रदेश दो भागों में बँटा होना चाहिए—(i) विशेष बस्ती या नगर, तथा (ii) इसके चारों ओर का प्रदेश। बस्ती में पूजागृह, पार्क, व्यायामशालाएँ, बाजार, बन्दरगाह और सार्वजनिक स्थान होने चाहिए।
9. **राज्य में विभिन्न वर्ग**—आदर्श राज्य के नागरिकों की प्रमुख आवश्यकताएँ 6 हैं—भोजन, कला-कौशल, हथियार, सम्पत्ति, सार्वजनिक देव पूजा तथा सार्वजनिक हित का निर्धारण। इन 6 कार्यों को करने के लिए राज्य में 6 वर्ग होने चाहिए—कृषक, शिल्पी, योद्धा, व्यापारी या सम्पत्तिशाली, पुरोहित तथा सार्वजनिक हित का निर्धारण करने वाले निर्णायक। इनमें से प्रथम दो वर्गों को अरस्तू नागरिकता का स्तर प्रदान नहीं करता। वे राज्य में रहते और राज्य के लिए कार्य करते, किन्तु राज्य के सदस्य नहीं होते हैं। शेष वर्गों के सम्बन्ध में वह यह व्यवस्था करता है कि वर्गों के नागरिक युवावस्था में देश की रक्षा का कार्य करें, प्रौढ़ावस्था में राज्य के शासन सम्बन्धी विषयों का चिन्तन करें तथा वृद्धावस्था में पुरोहित का कार्य करें। प्लेटो एक व्यक्ति को सम्पूर्ण जीवन के लिए एक ही कार्य देना चाहता था, अरस्तू एक ही व्यक्ति को उसकी अवस्थानुसार तीन कार्य देता है।
10. **आर्थिक व्यवस्था**—अरस्तू अपने आदर्श राज्य में किसी भी वर्ग के लिए सम्पत्ति के साम्यवाद का प्रतिपादन नहीं करता, किन्तु वह यह मानता है कि सम्पत्ति का विषम वितरण राज्य के हित पर विपरीत प्रभाव डालता है। वह सम्पत्ति की विषमता को दूर करने के लिए तीन विकल्प प्रस्तुत करता है—
    (i) भू-सम्पत्ति वैयक्तिक हो, किन्तु इसका उपयोग सामूहिक हो, सब लोग इसका समान रूप से उपभोग कर सकें।
    (ii) सम्पत्ति सामूहिक हो, पर इसका उपयोग वैयक्तिक हो।
    (iii) सम्पत्ति सामूहिक हो तथा इसका उपयोग भी सामूहिक हो।
    अरस्तू इनमें से प्रथम विकल्प के पक्ष में है। भूमि को निजी और सामूहिक-दो भागों में विभाजित किया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के पास भूमि का टुकड़ा होगा, जिस पर वह दासों की सहायता से कृषि कार्य करेगा, लेकिन उत्पादन से प्राप्त लाभों का उपयोग सामूहिक रूप से किया जायेगा। उत्पादन वैयक्तिक होने के कारण सभी व्यक्ति अधिकाधिक उत्पादन का प्रयत्न करेंगे और उपभोग सामूहिक होने के कारण समाज में समानता और भाई-चारे के भाव को अपनाया जा सकेगा।
11. **स्त्रियों का साम्यवाद नहीं**—सम्पत्ति के साम्यवाद को अस्वीकार करने के साथ-साथ अरस्तू अपने आदर्श राज्य में किसी भी वर्ग के लिए स्त्रियों के साम्यवाद की धारणा का प्रतिपादन नहीं करता है।

अरस्तू के आदर्श राज्य की धारणा के अन्तर्गत किसी भी रूप में नागरिक के हितों और इच्छाओं की अवहेलना नहीं की गयी है। नागरिक राज्य के प्रति कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ अपने ध्येय की प्राप्ति करता है। अरस्तू के आदर्श राज्य में राज्य के श्रेष्ठ जीवन तथा व्यक्ति के श्रेष्ठ जीवन में कोई भेद नहीं है और इस दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है।

TOUCH 'n PASS

प्र.5. अरस्तू का 'क्रान्ति' शब्द से क्या अभिप्राय है तथा उसके द्वारा क्रान्ति के कारणों की विवेचना कीजिए।
What does Aristotle mean by the word 'Revolution' and discuss the causes of revolution by him.

उत्तर

अरस्तू के अनुसार क्रान्ति का अर्थ
(Meaning of Revolution According to Aristotle)

यूनानी नगर राज्यों के जीवन की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी राजनीतिक अस्थिरता थी। अरस्तू ने स्वयं इस राजनीतिक अस्थिरता के दुष्परिणाम देखे थे। अत: उसने इस अस्थिरता, जिसे उसने क्रान्ति का नाम दिया है, को दूर करने के उपाय सुझाने का निश्चय किया। 'पॉलिटिकस' की सातवीं पुस्तक में उसने राज्य क्रान्ति और संविधान में परिवर्तन लाने वाले कारणों पर प्रकाश डाला है और दूसरी पुस्तक में उसने उन उपायों का सुझाव दिया है जिनके आधार पर क्रान्ति का प्रतिकार किया जा सकता है।
अरस्तू ने क्रान्ति, उसके कारणों और प्रतिकार के उपायों का विवेचन ऐतिहासिक अध्ययन और पर्यवेक्षण के आधार पर किया है। उसने 158 देशों के संविधानों का अध्ययन करने के बाद परिपक्व राजनीतिक बुद्धिमत्ता के आधार पर यह विवेचन प्रस्तुत किया। सेबाइन (Sabine) ने ठीक ही लिखा है कि इस विषय से सम्बन्धित 'पॉलिटिकस' के पृष्ठ उसकी राजनीतिक सूझ-बूझ एवं यूनानी नगर राज्यों के शासन का अधिकारपूर्ण ज्ञान प्रकट करते हैं।'
अरस्तू के द्वारा 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग फ्रेंच क्रान्ति या साम्यवादी क्रान्ति के अर्थ में नहीं किया गया है, वरन् उसके अनुसार राज्य, संविधान या शासन सत्ता में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन क्रान्ति है। अरस्तू के अनुसार क्रान्ति के प्रमुख रूप निम्नांकित हो सकते हैं—

1. पहले से स्थापित किसी शासन व्यवस्था के स्थान पर दूसरी शासन व्यवस्था स्थापित करना जैसे जनतन्त्र के स्थान पर धनिकतन्त्र या धनिकतन्त्र के स्थान पर जनतन्त्र स्थापित करना।
2. अनेक बार क्रान्ति किसी शासन व्यवस्था के मूल रूप को बदलने के लिए नहीं किन्तु उसके आधारभूत तत्त्व की मात्रा को परिवर्तित करने के लिए होती है जैसे जनतन्त्र को अधिक या कम जनतन्त्रात्मक बनाना।
3. यदि शासन व्यवस्था के स्वरूप को अपरिवर्तित रखते हुए शासन करने वाले व्यक्तियों में कोई परिवर्तन होता है, तो वह भी क्रान्ति का एक रूप ही है। विशेष बात यह है कि एक देश के शासक वर्ग में जो परिवर्तन होते हैं, चाहे उन परिवर्तनों से शासन व्यवस्था का मूल रूप अप्रभावित रहे, अरस्तू उन्हें क्रान्ति की संज्ञा देता है।

क्रान्ति के कारण (Causes of Revolution)

अरस्तू ने क्रान्ति के कारणों की विवेचना तीन रूपों में की है—(1) सामान्य कारण, (2) विशेष कारण, तथा (3) विभिन्न राज्यों या शासन प्रणालियों में क्रान्ति के विशेष कारण।

1. **सामान्य कारण** (General causes)—क्रान्ति के सामान्य कारण निम्नलिखित हैं—

(क) **असमानता**—क्रान्ति का सर्वप्रथम कारण व्यक्ति की असमानता का अन्त कर समानता की प्राप्ति के लिए लालसा है। समानता के दो रूप होते हैं—पूर्ण समानता और आनुपातिक समानता । सर्वसाधारण जनता पूर्ण समानता में विश्वास करती है और यह महसूस करती है कि शासकों के समान होने के बावजूद भी हमारा उचित अधिकार हमें नहीं मिल रहा है। आनुपातिक समानता का अर्थ योग्यता सम्बन्धी समानता है और विशेष वर्ग आनुपातिक समानता की माँग करते हुए यह महसूस करता है कि धन तथा योग्यता और अन्य बातों की श्रेष्ठता के अनुपात में उन्हें राजनीतिक शक्ति में अधिक भाग नहीं मिल रहा है। पूर्ण और आनुपातिक समानता के इस पारस्परिक अवरोध का परिणाम क्रान्ति के रूप में प्रकट होता है। स्वयं अरस्तू के शब्दों में, 'छोटे व्यक्ति बराबर होने के लिए विद्रोही बना करते हैं और बराबर स्थिति वाले बड़े बनने के लिए। यही वह मनोदशा है, जिसमें क्रान्तिकारियों की उत्पत्ति होती है।

(ख) **अन्याय**—क्रान्ति का मूलभूत कारण अन्याय है। यदि एक वर्ग को जितना वह पाने का अधिकारी है उससे कम मिलता है तथा दूसरे वर्ग को जितना उसे मिलना चाहिए, उससे अधिक मिलता है, तो असन्तोष का उदय होता है और वह असन्तोष क्रान्ति को जन्म देता है। 'क्योंकि न्याय और मित्रता राज्य के नैतिक आधार हैं, इसलिए अन्याय और दुर्भावना असन्तोष और अस्थिरता के सबसे बड़े कारण हैं।'

इस प्रकार असमानता और अन्याय, क्रान्ति के दो कारण हैं।

TOUCH 'n' PASS

2. **विशेष कारण** (Special causes)—अरस्तू ने क्रान्ति के विशेष कारण निम्न बताये हैं—

(क) **शासकों की धृष्टता तथा लाभ की लालसा**—जब शासक वर्ग धृष्टता के वशीभूत होकर जनता के हितों की परवाह किये बिना अनुचित रूप से धन संग्रह करने लगता है तो उस शासन प्रणाली या शासक वर्ग के विरुद्ध जनता विद्रोह कर देती है।

(ख) **सम्मान की लालसा**—जब शासक किसी व्यक्ति को अनुचित रूप से योग्यता के बिना सम्मानित करता है या बिना कारण के किसी को अपमानित करता है, तो जनता रुष्ट होकर विद्रोह कर देती है।

(ग) **किसी प्रकार की उत्कृष्टता**—किसी प्रकार की उत्कृष्टता का होना भी क्रान्ति का कारण होता है। जब किसी राज्य में एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का गुट अन्य व्यक्तियों से अधिक उत्कृष्ट और शक्तिशाली हो जाता है, तो वह शासन की सत्ता को सहन नहीं करता और शासन सत्ता अपने हाथ में लेने की चेष्टा करता है। इसलिए एथेन्स तथा आगोस के नगर राज्यों में यह चलन था कि शक्तिशाली बनने वाले व्यक्ति को राज्य से निर्वासित कर दिया जाता था।

(घ) **घृणा**—घृणा क्रान्ति को जन्म देती है। उदाहरणार्थ, धनिकतन्त्र में जब धनिक शासक वर्ग बहुसंख्यक, किन्तु अधिकार वंचित दरिद्र जनता को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है तो ऐसी स्थिति में जनता विद्रोह कर देती है।

(ङ) **भय**—भय दो प्रकार से व्यक्तियों को क्रान्ति के लिए प्रेरित करता है-अपराध से बचने के लिए और अन्याय का प्रतिकार करने के लिए। उदाहरणार्थ, रोड्स टापू के राज्य में जनता वहाँ के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर अभियोग चलाने की धमकियाँ दे रही थी, जिससे बचने के लिए उन्होंने जन शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

(च) **प्रमाद**—प्रमाद भी क्रान्ति का कारण होता है। जनता अपने आलस्य और उपेक्षा के कारण ऐसे व्यक्तियों को सत्तारूढ़ होने दे सकती है जो वर्तमान शासक के प्रति निष्ठावान नहीं होते और शासन को बदल देते हैं।

(छ) **विदेशी या विजातीय तत्त्व**—विदेशी या विजातीय तत्त्व भी क्रान्ति का कारण बन जाते हैं। यदि राज्यों में रहने वाले विजातीय तत्त्वों का भावनात्मक एकीकरण न हुआ हो तो राज्य में सदैव ही क्रान्ति की आशंका बनी रहती है क्योंकि ये विजातीय तत्त्व विदेशी शत्रुओं के साथ मिलकर राज्य के लिए संकट खड़ा कर देते हैं।

(ज) **क्षुद्र घटनाएँ**—कभी-कभी क्षुद्र घटनाओं के गम्भीर परिणाम के रूप में भी क्रान्ति घटित होती है। उदाहरणार्थ, साइराक्यूज के दो कुलीन युवकों के प्रणय सम्बन्धी कलह ने राज्य के अधिकारियों को दो वर्गों में विभक्त कर दिया और राज्य को क्रान्ति का सामना करना पड़ा।

(झ) **परस्पर विरोधी वर्गों का सन्तुलित होना**—क्रान्ति का एक कारण परस्पर विरोधी वर्गों (धनी एवं निर्धन) का राज्य में सन्तुलित होना भी है। जब एक पक्ष दूसरे पक्ष से प्रबल होता है तो सामान्यत: संघर्ष नहीं होता है। किन्तु जब दोनों पक्षों की शक्ति बराबर होती है और दोनों को विजय प्राप्त होने की आशा रहती है, तो वे विद्रोह करके सत्ता हस्तगत करने का प्रयत्न करते हैं।

3. **विभिन्न राज्यों या शासन प्रणालियों में क्रान्ति के विशेष कारण** (Special causes of revolution in different states or systems of governance)—प्रजातन्त्र में क्रान्ति का विशेष कारण वाग्वीर (Demagogues) होते हैं। ये वाग्वीर सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए अपने जोशीले भाषणों से जनता को धनिकों के विरुद्ध भड़काते हैं, उनके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं और अन्त में उन्हें क्रान्ति के लिए विवश करते हैं। अनेक बार ये वाग्वीर नेता अपने जोशीले भाषणों के आधार पर स्वयं शासन सत्ता हथिया लेते हैं।

धनिकतन्त्रों में क्रान्ति दो विशेष कारणों से होती है। प्रथम, शासकों का सर्वसाधारण के प्रति अन्याययुक्त व्यवहार और दूसरे, शासक वर्ग में फूट तथा दलबन्दियाँ।

कुलीनतन्त्र में क्रान्ति को जन्म देने वाले तीन प्रमुख कारण होते हैं—प्रथम, पद अथवा प्रतिष्ठा बहुत कम व्यक्तियों में सीमित कर देना। द्वितीय, किसी शक्तिशाली व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा अथवा असन्तोष। तृतीय, विभिन्न वर्गों में उचित सामंजस्य का अभाव।

संवैधानिकतन्त्र (Polity) में क्रान्ति का मुख्य कारण लोगों द्वारा अपने शासक वर्ग के समान योग्य और गुणशाली समझना है।

राजतन्त्र या आततायीतन्त्र में क्रान्ति प्रमुख रूप से इन कारणों से होती है—(i) शासक या सामान्य जनता के प्रति अपमानजनक व्यवहार, जिससे जनता में शासक के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाय। (ii) किसी प्रमुख व्यक्ति का व्यक्तिगत अपमान जिससे वह षड्यन्त्र और विद्रोह के लिए प्रेरित हो। (iii) विरोधी लक्षण वाले पड़ोसी राज्य का प्रभाव।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. अरस्तू ने क्रान्तियों के प्रतिकार के उपाय का किस प्रकार उल्लेख किया है? वर्णन कीजिए।
How has aristotle mentioned the way to counter the revolutions? Describe.

उत्तर

क्रान्तियों के प्रतिकार के उपाय
(Measures to Counter Revolutions)

क्रान्ति के कारणों की विवेचना करने में अरस्तू का उद्देश्य राज्य को क्रान्ति से सुरक्षित रखना ही है। मैक्सी ने लिखा है, 'अरस्तू ने जितने विवेकपूर्ण ढंग से क्रान्ति के कारणों का विश्लेषण किया है, उतने ही विवेकपूर्ण ढंग से उसने उनके निराकरण के उपायों पर भी प्रकाश डाला है।'

वह क्रान्ति के प्रतिकार के लिए दो प्रकार के उपायों का उल्लेख करता है—(I) सामान्य उपाय, (II) विशेष उपाय।

I. **सामान्य उपाय** (General measures)—क्रान्ति के प्रतिकार करने के सामान्य उपाय निम्नलिखित हैं—

1. **शासक और शासित में सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध**—क्रान्ति के प्रतिकार का सबसे प्रमुख उपाय यही हो सकता है कि शासक और शासित में सद्भावनापूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखा जाय। क्रान्ति का सबसे प्रमुख कारण अन्याय होता है और क्रान्ति के प्रतिकार का सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय सामान्य नागरिकों में यह भावना उत्पन्न करना है कि शासक वर्ग द्वारा उनके प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार किया जा रहा है और इस दृष्टि से संविधान और शासन सभी व्यक्तियों के सन्तोष पर आधारित होना चाहिए। सभी व्यक्तियों को उच्च पदों के लिए समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। संक्षेप में ऐसे वातावरण की सृष्टि की जानी चाहिए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करे कि उसे उसका उचित अंश प्राप्त हो रहा है।
2. **नागरिकों को संविधान की भावना के अनुरूप शिक्षित करना**—क्रान्ति के प्रतिकार के लिए नागरिकों को संविधान की आत्मा के अनुरूप शिक्षित किया जाना चाहिए। शिक्षा के आधार पर इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि लोगों की सामाजिक भावनाएँ, मूल्य, आदतें और व्यवहार शासन व्यवस्था के अनुरूप हो जायें। शिक्षा के आधार पर ही नागरिकों में शिक्षा, देशभक्ति और निस्वार्थता की भावनाओं का संचार किया जा सकता है। अरस्तू ने इस उपाय पर बहुत अधिक बल दिया है। एक स्थान पर उसने लिखा है कि 'सभी बातें जो मैंने संविधान को स्थायित्व प्रदान करने के सम्बन्ध में कही हैं उन सब में जो चीज संविधान को स्थायी रखने में सबसे महत्त्वपूर्ण है, वह है, शासन प्रणाली के अनुकूल शिक्षा।'
उदाहरण के लिए, राजतन्त्रीय व्यवस्था में नागरिकों को वीर पूजा की शिक्षा दी जानी चाहिए प्रजातन्त्र में नागरिकों को यह सिखाया जाना चाहिए कि चुनाव कभी दूर नहीं होते, दीर्घकालीन अच्छाई तात्कालिक लाभ से श्रेष्ठ है और सिरों को गिनना सिरों को तोड़ने से अच्छा है, आदि। यदि व्यक्तियों को इस प्रकार शिक्षित किया गया तो वे अपने आपको संविधान के अनुरूप ढाल लेंगे और इससे विद्रोह की सम्भावना बहुत ही कम हो जायेगी।
3. **कानून का पालन**—राज्य के स्थायित्व के लिए आवश्यक है कि कानून का पालन व्यक्तियों के स्वभाव का एक अंग बन जाय। नागरिकों के हृदय में कानून के प्रति निष्ठा उत्पन्न की जानी चाहिए। कानून के छोटे-छोटे उल्लंघन पर सरकार को सजग होकर कटोर रुख अपनाना चाहिए और किसी भी रूप में कानून को अवहेलना की स्थिति को सहन नहीं किया जाना चाहिए।
4. **राजनीतिक सत्ता पर एकाधिकार नहीं**—राजकीय सत्ता पर एकाधिकार सामान्य जनता में असन्तोष को जन्म देता है। अत: राजनीतिक सत्ता पर एक व्यक्ति या एक वर्ग का एकाधिकार नहीं होना चाहिए और राज्य में सभी व्यक्तियों तथा वर्गों को उनका उचित अंश प्रदान किया जाना चाहिए।
इस सम्बन्ध में अरस्तू यह सुझाव देता है कि राज्य के अधिकारियों का कार्यकाल अधिक नहीं होना चाहिए, जिससे सभी लोगों को बारी-बारी से सरकारी पदों पर कार्य करने का अवसर प्राप्त हो सके तथा राज्य के पद कुछ परिवारों तक सीमित न रह जायें। अरस्तू के अनुसार सम्मान, पदों और पुरस्कारों का अधिक से अधिक विस्तृत वितरण किया जाना चाहिए क्योंकि पदों और सम्मान की असमानताएँ विद्रोह के लिए प्रेरित करती हैं।
5. **भ्रष्टाचार रहित शासन**—भ्रष्ट शासन अनिवार्य रूप से क्रान्ति को जन्म देता है, अत: शासन भ्रष्टाचाररहित होना चाहिए और पदाधिकारियों का व्यवहार तथा आचरण सन्देहरहित होना चाहिए। सर्वसाधारण को जो बात राजव्यवस्था का सबसे अधिक विरोधी बनाती है, वह है सार्वजनिक धन का गबन और अपव्यय। अत: राज्य के शासन की सत्ता का गठन इस

TOUCH 'n' PASS

प्रकार होना चाहिए कि शासक वर्ग अपने राजकीय पदों के आधार पर अनुचित आर्थिक लाभ प्राप्त न कर सके। इसके अतिरिक्त जनता को शासन की स्वच्छता का विश्वास दिलाने के लिए राजकीय आय-व्यय का लेखा ईमानदारी से तैयार किया जाना चाहिए।

6. **विभिन्न वर्गों में सन्तुलन**—सन्तुलन ही राजनीतिक स्थायित्व को जन्म दे सकता है अत: शासन का कार्य दो विरोधी गुणों वाले लोगों को दिया जाना चाहिए। सद्‌गुणी लोगों के साथ धनवानों को तथा धनवानों के साथ निर्धनों को नियुक्त किया जाना चाहिए, जिससे राज्य में सन्तुलन स्थापित रह सके। सन्तुलन स्थापित करने का एक उपाय यह है कि प्रजातन्त्र में धनिकों का धन और अल्पतन्त्र में निर्धनों के अधिकार तथा सम्मान सुरक्षित रहने चाहिए। इसके साथ ही जहाँ तक सम्भव हो, मध्यम वर्ग की शक्ति बढ़ायी जानी चाहिए। अरस्तू के अनुसार, 'सशक्त मध्यम वर्ग क्रान्तियों को रोकने का एक साधन होता है।'
7. **विदेशियों की उच्च पदों पर नियुक्ति नहीं**—विदेशियों को राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए, अन्यथा वे प्रभावशाली होकर राज्य की स्वतन्त्रता के लिए संकट बन सकते हैं। संविधान के प्रति निष्ठा रखने वाले योग्य तथा ईमानदार व्यक्तियों को सरकारी पद मिलने चाहिए।
8. **छोटे और महत्त्वहीन समझे जाने वाले परिवर्तनों पर दृष्टि**—छोटे और महत्त्वहीन समझे जाने वाले परिवर्तनों पर दृष्टि रखी जानी चाहिए, क्योंकि अनेक बार ये परिवर्तन या विवाद क्रान्ति का कारण बन जाते हैं।
9. **बाहरी आक्रमण का भय खड़ा करना**—उपर्युक्त के अतिरिक्त अरस्तू एक बड़ा उपाय यह बतलाता है कि शासक वर्ग के द्वारा नागरिकों के सामने सदैव ही बाहरी आक्रमण का भय खड़ा किया जाना चाहिए। इस भय के आधार पर नागरिकों के आन्तरिक विरोधों को शान्त कर उनमें एकता तथा देशभक्ति की भावना का संचार किया जा सकता है और यह स्थिति राजनीतिक स्थायित्व के लिए हितकारक हो सकती है। अरस्तू ने अपनी रचना 'पॉलिटिकस' में लिखा है कि 'जिस शासक को राज्य की सुरक्षा की चिन्ता है उसे बाहरी खतरों का आविष्कार करना चाहिए और दूर के खतरों को निकट लाना चाहिए, जिससे नागरिक रात्रि को पहरेदार की भाँति सचेत और चेतन रहें और उनका ध्यान कभी विचलित न हो।'

II. **विशेष उपाय** (Special measures)—क्रान्ति के प्रतिकार हेतु सामान्य उपाय सुझाने के बाद अरस्तू विभिन्न शासन व्यवस्थाओं में परिवर्तन लाने वाले विशेष कारणों को दृष्टि में रखते हुए विशेष उपायों का उल्लेख करता है। उसके अनुसार 'मिश्रित संविधानों ' में राजनीतिक परिवर्तन की दिशा में काम करने वाली सभी स्थितियों पर सावधानीपूर्वक दृष्टि रखी जानी चाहिए। कुलीनतन्त्र और वर्गतन्त्र में निम्न वर्गों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाना चाहिए और विशेष वर्गों में प्रजातान्त्रिक समानता के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए। वर्गतन्त्र में सामान्य प्रशासनिक कार्य निर्धन वर्ग के व्यक्तियों को सौंपे जाने चाहिए, जिससे वर्गीय असन्तोष की भावना उत्पन्न न हो। प्रजातन्त्र में धनिकों को उनकी सम्पत्ति की रक्षा का आश्वासन प्राप्त होना चाहिए और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जनता लोकप्रिय वक्ताओं या जननायकों के बहकावे में आकर क्रान्ति न कर बैठे।

अरस्तू आततायी शासक (Tyrant) को भी अपनी सत्ता सुरक्षित रखने के उपाय बताता है। उसके अनुसार आततायी शासक के द्वारा जासूस और विशेषतया स्त्री जासूस रखे जाने चाहिए, स्वयं निरन्तर आक्रामक नीति अपनायी जानी चाहिए और अपने राज्य की जनता को आक्रमण के भय से ग्रस्त रखा जाना चाहिए। इसके द्वारा नागरिकों के बौद्धिक जीवन को नष्ट कर दिया जाना चाहिए, अपराधियों को दण्ड तथा व्यक्तियों को सम्मान और पुरस्कार दिया जाना चाहिए, नागरिकों के भौतिक कल्याण का प्रयत्न करना चाहिए, धार्मिक कार्यों के प्रति उत्साह दिखाया जाना चाहिए और अपनी वासनाओं को नियन्त्रण में रखना चाहिए।

कुछ आलोचकों का कहना है कि अरस्तू ने निम्न कोटि की शासन व्यवस्थाओं, निरंकुश शासन को भी स्थायी बनाने के जो सुझाव दिये हैं और जिन साधनों का प्रयोग करने को कहा है, वे पूर्ण अनैतिक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अरस्तू सदाचार निष्ठ जीवन की ही प्रतिष्ठा करना चाहता है। यदि उसने निकृष्ट शासन पद्धतियों के स्थायित्व के उपाय बताये हैं, तो केवल वैज्ञानिक होने के नाते, अनैतिक होने के नाते नहीं। इस दृष्टि से अरस्तू राजनीति के प्रसिद्ध भारतीय विद्वान कौटिल्य के समीप आ जाता है।

वस्तुत: अरस्तू का क्रान्तियों का विवेचन इतना सुन्दर, प्रामाणिक और विशद् है कि इसके सम्बन्ध में मैक्सी के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'राजनीति विज्ञान क्रान्ति रूपी विष का प्रतिकार करने के लिए इससे अधिक विश्वसनीय उपायों का निर्देश नहीं कर सकता।'

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. 'प्लेटो' का जन्म कहाँ हुआ था?
(क) रोम (ख) एथेन्स (ग) मकदूनिया (घ) पर्शिया
उत्तर (ख) एथेन्स

प्र.2. 'सुकरात' को मृत्युदण्ड कब दिया गया?
(क) 499 ई०पू० (ख) 399 ई०पू० (ग) 423 ई०पू० (घ) 369 ई०पू०
उत्तर (ख) 399 ई०पू०

प्र.3. सिकन्दर राजगद्दी पर कब बैठा?
(क) 320 ई०पू० (ख) 301 ई०पू० (ग) 335 ई०पू० (घ) 345 ई०पू०
उत्तर (ग) 335 ई०पू०

प्र.4. सिकन्दर किसका शिष्य था?
(क) प्लेटो (ख) अरस्तू
(ग) सुकरात (घ) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर (ख) अरस्तू

प्र.5. 'अरिस्तोक्लीज' किसका वास्तविक नाम था?
(क) प्लेटो (ख) अरस्तू (ग) सुकारत (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) प्लेटो

प्र.6. प्लेटो की सर्वोत्तम कृति का नाम है–
(क) 'एथेन्स का संविधान' (ख) 'विचारों की खान'
(ग) 'रिपब्लिक' (घ) 'डी रेजिमाइन प्रिन्सिपम'
उत्तर (ग) 'रिपब्लिक'

प्र.7. अरस्तू के अनुसार न्याय के कितने भेद हैं?
(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) दो

प्र.8. अरस्तू के अनुसार, न्याय के दो भेद हैं–
(क) पूर्ण न्याय और विशेष न्याय (ख) स्पष्ट न्याय और उच्च न्याय
(ग) सामूहिक न्याय और विशिष्ट न्याय (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) पूर्ण न्याय और विशेष न्याय

प्र.9. अरस्तू की रचना 'पॉलिटिक्स' कितने भागों में विभाजित है?
(क) पाँच (ख) सात (ग) आठ (घ) नौ
उत्तर (ग) आठ

प्र.10. किसने कहा है ''प्लेटो दर्शन है और दर्शन प्लेटो है।''
(क) केटलिन (ख) डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
(ग) एमर्सन (घ) दाँते
उत्तर (ग) एमर्सन

प्र.11. अरस्तू के अनुसार, नगर राज्य में कितने वर्ग होते हैं?
(क) दो (ख) तीन
(ग) चार (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) तीन

TOUCH 'n' PASS

प्र.12. प्लेटो के न्याय सिद्धान्त के अनुसार, राज्य के नागरिकों को क्रमशः तीन वर्गों में विभाजित किया गया है, ये वर्ग हैं–
(क) शासक वर्ग, सैनिक वर्ग, उत्पादक वर्ग
(ख) शासक वर्ग, मजदूर वर्ग, उत्पादक वर्ग
(ग) उच्च वर्ग, सैनिक वर्ग, व्यापारी वर्ग
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
उत्तर (क) शासक वर्ग, सैनिक वर्ग, उत्पादक वर्ग

प्र.13. आधुनिक साम्यवाद का प्रधान लक्ष्य आर्थिक है जबकि प्लेटो के साम्यवाद का लक्ष्य है–
(क) कला (ख) युद्ध कौशल
(ग) राजनीतिक (घ) साम्राज्य
उत्तर (ग) राजनीतिक

प्र.14. प्लेटो के साम्यवाद को 'अर्द्ध-साम्यवाद' (Half-communism) किसने कहा–
(क) बार्कर (ख) नैटार्प
(ग) मैक्सी (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) नैटार्प

प्र.15. निम्न में से कौन-सा दार्शनिक सिकन्दर के समकालीन था?
(क) प्लेटो (ख) मैकियावली (ग) अरस्तू (घ) सुकरात
उत्तर (ग) अरस्तू

प्र.16. 'The Pope of Philosophy' (दर्शन का पोप) की संज्ञा किसे दी जाती है?
(क) अरस्तू (ख) प्लेटो (ग) दाँते (घ) काण्ट
उत्तर (ख) प्लेटो

प्र.17. 'यूटोपिया' किसकी रचना है?
(क) सर थॉमस मूर (ख) सिसरो
(ग) सेण्ट आगस्टाइन (घ) दाँते
उत्तर (क) सर थॉमस मूर

प्र.18. प्लेटो ने राज्य की प्राण वायु किसे बताया है?
(क) कला को (ख) न्याय को
(ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) न्याय को

प्र.19. प्लेटो राज्य के चार गुण बताते हैं, उनके अनुसार निम्नलिखित में से कौन-सा नहीं है–
(क) बुद्धिमत्ता (ख) साहस (ग) संयम (घ) आर्थिक
उत्तर (घ) आर्थिक

प्र.20. 'न्याय वह सम्पूर्ण सद्गुण है जो हम एक-दूसरे के साथ अपने व्यवहार में प्रदर्शित करते हैं।' यह कथन है–
(क) अरस्तू (ख) प्लेटो
(ग) थ्रेसीमेकस (घ) ग्लाउकन
उत्तर (क) अरस्तू

प्र.21. ''सत्य बोलना और दूसरों के ऋण को चुका देना ही न्याय है।'' किसने कहा था?
(क) पोलीमार्कस (ख) ईबन्सटीन
(ग) सिफालस (घ) थ्रेसीमेकस
उत्तर (ग) सिफालस

TOUCH 'n' PASS

प्र.22. ''प्रत्येक व्यक्ति को उसके प्रति उचित व्यवहार देना ही न्याय है।'' यह कथन किसका है?
(क) पोलीमार्कस (ख) मैक्सी (ग) ग्लाउकन (घ) थ्रेसीमेकस

उत्तर (क) पोलीमार्कस

प्र.23. ''न्याय भय का शिशु है'' किसने कहा था?
(क) थ्रेसीमेकस (ख) ग्लाउकन
(ग) केटलिन (घ) बार्कर

उत्तर (ख) ग्लाउकन

प्र.24. प्लेटो की न्याय सम्बन्धी धारणा को साधारण शब्दों में व्यक्त करते हुए किसने कहा था कि, ''मेरा स्थान और उसके कर्त्तव्य यही न्याय है?''
(क) केटलिन (ख) ग्लाउकन
(ग) थ्रेसीमेकस (घ) बार्कर

उत्तर (क) केटलिन

प्र.25. प्लेटो की रचना 'रिपब्लिक' में 'न्याय' शब्द का प्रयोग किसके लिए हुआ है?
(क) कानून के आधार पर (ख) कर्त्तव्यों का पालन
(ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) कर्त्तव्यों का पालन

प्र.26. अरस्तू की प्रसिद्ध उक्ति है–'राज्य जीवन के लिए अस्तित्व में आया और वह अच्छे जीवन के लिए अस्तित्व में बना हुआ है।' यहाँ पर 'अच्छे जीवन' शब्दों का अर्थ है–
(क) स्तरीय जीवन (ख) खुशहाल जीवन
(ग) नैतिक जीवन (घ) विलासी जीवन

उत्तर (ग) नैतिक जीवन

प्र.27. अरस्तू 'न्याय' को क्या मानते हैं?
(क) कर्त्तव्यों का पालन (ख) नियमों का पालन
(ग) सद्गुणों का समूह (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) सद्गुणों का समूह

TOUCH n PASS

UNIT-II

थॉमस एक्विनास और सेण्ट ऑगस्टाइन
Thomas Aquinas and St. Augustine

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. थॉमस एक्विनास का दासता संबंधी विचार लिखिए।
Write the thoughts on slavery of Thomas Aquinas.

उत्तर सेण्ट थॉमस एक्विनास ने भी अपने पूर्ववर्ती विचारकों की तरह दासता को दैवी दण्ड मानकर उसका समर्थन किया है। वह अरस्तू की तरह दास-प्रथा को लाभदायक तो मानता है लेकिन उसके विचार अरस्तू और ऑगस्टाइन से पूरी तरह मेल नहीं खाते हैं। उसका मानना है कि दासता एक प्राकृतिक प्रथा है जो सैनिकों में साहस का संचार करती है। जब सैनिक युद्धक्षेत्र में लड़ते हैं तो उन्हें दासता का भय सताता है। इस भय के कारण वे वीरता और साहस से लड़कर युद्ध में विजयी बनने के प्रयास करते हैं। दासता का भय ही सैनिक विजयों का कारण होता है। एक्विनास ने अपने इस मत की पुष्टि के लिए इतिहास और 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' (Old Testament) की डिद्रानमी नामक पुस्तक से कुछ प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं।

प्र.2. एक्विनास का सम्पत्ति पर विचार बताइए।
Give the thoughts on property of Aquinas.

उत्तर एक्विनास ने भी अरस्तू की तरह ही व्यक्तिगत सम्पत्ति का समर्थन करते हुए उसे मानव जीवन के लिए आवश्यक माना है। उसका कहना है किस सम्पत्ति का प्रयोग स्वार्थसिद्धि के लिए न करके जनहित में किया जाना चाहिए। सम्पत्ति का सार्वजनिक उपयोग सार्वजनिक कार्यों के लिए ही किया जाना चाहिए। उसके सम्पत्ति सम्बन्धी विचार धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव से अछूते नहीं हैं। उसने मध्ययुगीन ईसाई पादरियों के विचारों से सहमत होते हुए कहा है कि सम्पत्ति पर चर्च और पोप का भी अधिकार उपयुक्त है लेकिन वह किसी सांसारिक शासक के सामन्त के रूप में भूमि का स्वामी नहीं बन सकता। पोप अपनी सम्पत्ति का प्रयोग निर्धनों की सहायता के लिए धार्मिक नियमों के अनुसार ही कर सकता है। उसका मानना है कि सम्पत्ति की अधिकता ही सभी पापों का मूल कारण है। सम्पत्ति पर धर्म का लेबल लगाने पर ही सम्पत्ति के सारे दोष मिट जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक्विनास ने अरस्तू तथा ऑगस्टाइन के विचारों से अलग ही अपने सम्पत्ति सम्बन्धी विचार प्रतिपादित किए हैं।

प्र.3. एक्विनास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
Give short introduction of Aquinas.

उत्तर सेण्ट थॉमस एक्विनास को मध्ययुग का सबसे महान् राजनीतिक विचारक माना जाता है। वह एक महान् विद्वतावादी (Scholastic) तथा समन्वयवादी था। प्रो. डनिंग ने उसको सभी विद्वतावादी दार्शनिकों में से सबसे महान् विद्वतावादी माना है। सेण्ट एक्विनास ने न केवल अरस्तू और ऑगस्टाइन के बल्कि अन्य विधिवेत्ताओं, धर्मशास्त्रियों और टीकाकारों के भी परस्पर विरोधी विचारों में समन्वय स्थापित किया है। इसलिए एम. बी. फोस्टर ने उनको विश्व का सबसे महान् क्रमबद्ध (Systematic) विचारक कहा है। वास्तव में सेण्ट थॉमस एक्विनास ने मध्ययुग के समग्र राजनीतिक चिन्तन का प्रतिनिधित्व किया हैं फोस्टर के मतानुसार वह समूचे मध्यकालीन विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं जैसा कि दूसरा कोई अकेले नहीं कर सका।

प्र.4. ऑगस्टाइन पर पूर्ववर्ती विचारकों का क्या प्रभाव पड़ा? बताइए।
What was the influence of earlier thinkers on Augustine? State.

उत्तर किसी भी विचारक पर पूर्ववर्ती लेखकों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। ऑगस्टाइन भी इसके अपवाद नहीं थे। ऑगस्टाइन के दर्शन को प्लेटो, सिसरो, स्टोइको आदि विचारकों ने प्रभावित किया। उन्होंने पूर्ववर्ती लेखकों की विचारधारा का ज्यों का त्यों अपने चिन्तन में प्रयोग नहीं किया। उन्होंने तर्कपूर्ण ढंग से आवश्यकतानुसार अपने पूर्ववर्ती विचारकों के चिन्तन में परिवर्तन किया और अपने चिन्तन के अनुरूप ढाला। उन्होंने प्लेटो से न्याय का सिद्धान्त, सिसरो से राष्ट्रमण्डल की अवधारणा तथा स्टोइको से एक

TOUCH 'n PASS

सार्वत्रिक (Universal) राज्य की नागरिकता की धारणा ग्रहण की। इन धारणाओं में ऑगस्टाइन ने ईसाई धर्म की आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर दिया। इस प्रकार उन्होंने अपने पूर्ववर्ती विचारकों से प्रभावित होकर ईसाई धर्म की सुरक्षा में अपने को लगा दिया।

प्र.5. ऑगस्टाइन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
Give the short introduction of Augustine.

उत्तर ईसाई दर्शन के इतिहास में सेण्ट अम्ब्रोज (St. Ambrose) के महान शिष्य सेण्ट ऑगस्टाइन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। फोक्स जैक्सन के अनुसार चर्च के इतिहास में सेण्ट पाल के बाद सेण्ट ऑगस्टाइन सबसे महत्त्वपूर्ण हस्ती हैं। उसने मध्ययुग में चर्च और राज्य के सम्बन्ध में अपने विचार देते हुए 'चर्च की सर्वोच्चता' के सिद्धान्त की आधारशिला रखी। उन्होंने समकालीन तथा परवर्ती चिन्तन को भी विशेष रूप में प्रभावित किया। सेबाइन का मत है कि उनकी रचना 'The City of God' एक ऐसी 'विचारों की खान' (A mine of Ideas) है, जिसको खोदकर परवर्ती ईसाई विचारकों ने मूल्यवान विचार रत्न निकाले।

प्र.6. एक्विनास के कानून सम्बन्धी विचार लिखिए।
Write the law related thoughts of Aquinas.

उत्तर एक्विनास के कानून सम्बन्धी विचार पर स्टोइकवाद और अरस्तू का प्रभाव है। एक्विनास कानून को स्वयं सिद्ध मानते हुए मानवीय कानून को दैविक कानून के साथ जोड़ने का प्रयास करता है। एक्विनास ने कानूनों को चार श्रेणियों में बाँटा है—(1) शाश्वत कानून, (2) प्राकृतिक कानून, (3) दैवी कानून तथा (4) मानवीय कानून।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सेण्ट ऑगस्टाइन के राजनीतिक विचारों में योगदान एवं प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
Mention the contribution and influences of St. Augustine in political thoughts.

उत्तर

ऑगस्टाइन का राजनीतिक विचारों में योगदान एवं प्रभाव
(Contribution and Influence of St. Augustine in Political Thoughts)

ऑगस्टाइन ने धर्मसत्ता तथा राजसत्ता को अलग-अलग मानते हुए धर्मसत्ता (चर्च) को सर्वोच्च माना है। राजसत्ता के औचित्य तथा अधिकार क्षेत्र को उसने ईश्वरीय इच्छा पर प्रतिष्ठित करके इसके प्रति समुचित दृष्टिकोण अपनाया है। उसने 'ईश्वरीय नगर' के विचार का प्रतिपादन कर ईसाई जगत के सामने एक आदर्श प्रस्तुत कर उसकी प्राप्ति के एकमात्र साधन के रूप में चर्च को प्रतिष्ठित कर एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। उसकी पुस्तक 'The City of God' कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बियों के लिए एक प्रेरणा-स्रोत बन गई और परवर्ती ईसाई चिन्तन को प्रभावित किया। उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धारणा इतिहास के दर्शन पर आधारित ईसाई प्रजाधिपत्य (Christian Commonwealth) की स्थापना थी जो मानव के आध्यात्मिक विकास के चरमोत्कर्ष का प्रतीक है। उसके महत्त्वपूर्ण योगदान निम्नलिखित हैं—

1. पवित्र रोमन साम्राज्य का निर्माण सेण्ट ऑगस्टाइन की पुस्तक 'ईश्वर की नगरी' (The City of God) पर भी आधारित किया है। वास्तव में ऑगस्टाइन ही ईसाई राष्ट्रमण्डल के पिता हैं। यह अवधारणा मध्ययुग में एक विवाद का विषय रही।
2. ऑगस्टाइन का चर्च को सर्वोच्चता का सिद्धान्त मध्ययुग में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा रहा। उसने राज्य से चर्च को श्रेष्ठ बताकर चर्च को ईश्वर का प्रतिनिधि कहा। इससे चर्च के प्रति लोगों की रुचि बढ़ने लगी और चर्च मध्ययुग में सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया। ऑगस्टाइन का चर्च व राज्य की सर्वोच्चता का द्वैधवादी सिद्धान्त मध्ययुगीन विचारधारा का आधार बन गया। यह ऑगस्टाइन की मौलिक देन है।
3. ऑगस्टाइन ने सार्वभौमवाद (Universalism) की अवधारणा का प्रतिपादन किया। उसने सार्वदेशिक समाज की स्थापना के रास्ते में राज्य, जाति, भाषा आदि के अवरोध उत्पन्न नहीं हो सकते। यह अवधारणा मध्ययुगीन चिन्तन का आधार बन गई।
4. ऑगस्टाइन ने दैवीय सिद्धान्त को ठोस आधार प्रदान किया। उसने बताया कि राज्य 'ईश्वर की इच्छा का परिणाम' है। उसने बताया कि चर्च ईश्वर का प्रतिनिधि है। चर्च ही व्यक्ति को आध्यात्मिक मुक्ति प्रदान कर सकता है। इससे मध्ययुग में नए चिन्तन का सूत्रपात हुआ।

TOUCH 'n' PASS

5. उसका द्वैधवाद (राजसत्ता और धर्मसत्ता) का सिद्धान्त मध्ययुग में गेलासियस के दो तलवारों के सिद्धान्त का आधार बना। मध्ययुग का समान्तरवाद (Parallelism) भी ऑगस्टाइन की विचारधारा पर ही आधारित है। इसलिए मध्ययुग में ऑगस्टाइन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन उसका द्वैधवादी सिद्धान्त है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ऑगस्टाइन मध्ययुगीन चिन्तन के एक प्रभावशाली विचारक रहे हैं। उसकी ईश्वरीय नगर (The City of God) की अवधारणा ने अनेक शताब्दियों तक मध्ययुगीन तथा परवर्ती विचारकों को प्रभावित किया। उसने चर्च की सर्वोच्चता के सिद्धान्त का बीजारोपण करके ईसाई विचारकों के चिन्तन को प्रभावित किया। उनके धार्मिक मन्तव्यों, बाइबल के प्रमाणवाद, चर्च की प्रभुता, आदिम पाप आदि ने सैंकड़ों वर्षों तक मध्ययुगीन विचारकों का प्रतिनिधित्व किया। सुप्रसिद्ध पोप, ग्रगरी सप्तम, वोनीफेस अष्टम, थॉमस एक्विनास, दाँते, ग्रोशियस आदि के विचारों को ऑगस्टाइन के दर्शन ने अत्यधिक प्रभावित किया। सेबाइन का मत है—'उसकी रचनाएँ विचारों की खान हैं। परवर्ती रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट इसे खोदकर नए विचार निकालते रहे।' फोक्स जैक्सन ने भी कहा कि—'सेण्ट पॉल के बाद ऑगस्टाइन चर्च के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण हस्ती रहे हैं।' सम्पूर्ण मध्ययुगीन चिन्तन राज्य और चर्च के बीच के वाद-विवाद के चारों ओर ही केन्द्रित रहा। अत: कहा जा सकता है कि ऑगस्टाइन मध्ययुगीन ईसाइत विचारधारा के सबसे अधिक प्रभावशाली विचारक रहे हैं जिन्होंने परवर्ती चिन्तन को अत्यधिक प्रभावित किया है।

प्र.2. ऑगस्टाइन का जीवन परिचय एवं इनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखिए।
Write the life sketch and important works of Augustine.

उत्तर

ऑगस्टाइन का जीवन परिचय
(Life Sketch of Augustine)

सेण्ट ऑगस्टाइन का जन्म उत्तरी अफ्रीका के रोमन प्रान्त न्यू मीडिया (अल्जीरिया) के थिगस्ते नामक स्थान पर 354 ई० में हुआ। उसके पिता एक मूर्तिपूजक (Pagan) थे और एक बड़े जमींदार थे। उसकी माँ ईसाई धर्म में विश्वास रखने वाली महिला थी। वह बचपन से ही एक प्रतिभाशाली बालक था। उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उसके पिता ने उसे अच्छी शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया। सेण्ट ऑगस्टाइन ने अपनी प्रतिभा के बल पर शीघ्र ही वह यूनानी और रोमन साहित्य में निपुण हो गया। 370 ई० में उसने कार्थेज विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ से अपनी पढ़ाई पूरी करके उसने अपनी मातृभूमि की सेवा का निश्चय किया और अपने प्रान्त में पढ़ाने लगा। कुछ समय बाद उसने कार्थेज विश्वविद्यालय में ही अलकारशास्त्र पढ़ाना शुरू कर दिया। उसने यहाँ से नौकरी छोड़ने के बाद 384 ई० में मीलान में अलंकारशास्त्र पढ़ाया। यहाँ पर उनका सम्पर्क सेण्ट अम्ब्रोज से हुआ। सेण्ट अम्ब्रोज की रोमन विरोधी विचारधारा के प्रभाव में आकर उसने उनको अपना गुरु स्वीकार कर लिया और उसने 387 ई० में ईसाई धर्म को ग्रहण कर लिया। ईसाई धर्म के सम्पर्क में आने पर उसने एक क्रियाशील और सच्चा ईसाई बनकर ईसाई धर्म का प्रचार किया। 388 ई० में वह अफ्रीका वापिस लौटकर हिप्पो विशप बन गया। उसने आजीवन इस पद को सुशोभित किया। 430 ई. में वणडाल नामक बर्बर जाति द्वारा हिप्पो नगर पर आक्रमण में उसकी मृत्यु हो गई।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)

ऑगस्टाइन ने ईसाई धर्म को संकट से उभारने के लिए अपनी रचनाओं से प्रयास शुरू किए। उसने ईसाई धर्म का दृढ़ और व्यवस्थित समर्थन किया। उसने बताया कि रोम का पतन दैवीय इच्छा का परिणाम है, न कि ईसाई धर्म के कारण इसका पतन हुआ। उसने अपने इस विचार को प्रबल बनाने के लिए 'ईश्वर की नगरी' (The City of God) नामक पुस्तक की रचना की। इसमें 22 खण्ड हैं। उसने इस ग्रन्थ को 413 ई० में लिखना शुरू किया था और 426 ई० में उसको पूरा किया। शुरू के 10 खण्डों में प्रात्यों के आपेक्षपूर्ण आक्रमणों से ईसाई धर्म की रक्षा की गई और शेष 12 खण्डों में 'ईश्वर की नगरी' के निर्माण की रूप-रेखा का वर्णन किया गया है। अपनी इस पुस्तक में ऑगस्टाइन ने बताया कि यद्यपि ईसाई धर्म रोम के पतन को नहीं रोक सका, परन्तु उसने ही रोम के पतन के दु:खों और परेशानियों से जनता को छुटकारा दिलाया। रोम के पुराने देवता भी रोम को संकट से नहीं बचा पाए थे। यह सिद्ध करने के लिए उसने इतिहास का क्रमबद्ध वर्णन किया। इस तरह ऑगस्टाइन ने अपने इस अमर ग्रन्थ की रचना करके ईसाई धर्म की रक्षा का बीड़ा उठाया। उसका अन्य ग्रन्थ 'Confessions' है जो राजनीतिक चिन्तन की दृष्टि से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. सेण्ट थॉमस एक्विनास के जीवन परिचय एवं रचनाओं का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
Briefly mention the life sketch and works of St. Thomas Aquinas.

उत्तर

थॉमस एक्विनास का जीवन परिचय
(Life Sketch of Thomas Aquinas)

13वीं शताब्दी के महान् दार्शनिक सेण्ट थॉमस एक्विनास का जन्म 1225 ई. में नेपल्स राज्य (इटली) के एक्वीनो नगर में हुआ था। उसका पिता एकवीनी का काऊण्ट था उसकी माता थियोडोरा थी। सेण्ट थॉमस एक्विनास का बचपन सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण था। उसकी जन्मजात प्रतिभा को देखकर उसके माता-पिता उसे एक उच्च राज्याधिकारी बनाना चाहते थे। इसलिए उसे 5 वर्ष की आयु में मौंट कैसिनो की पाठशाला में भेजा गया। इसके बाद उसने नेपल्स में शिक्षा ग्रहण की। लेकिन उसके धार्मिक रुझान ने उसके माता-पिता के स्वप्न को चकनाचूर कर दिया और उसने 1244 ई. में 'डोमिनिकन सम्प्रदाय' की सदस्यता स्वीकार कर ली। उसके माता-पिता ने उसे अनेक प्रलोभन देकर इसकी सदस्यता छोड़ने के लिए विवश किया लेकिन उसके दृढ़ निश्चय ने उनकी बात नहीं मानी। इसलिए वह धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए पेरिस चला गया। वहाँ पर उसने आध्यात्मिक नेता अल्बर्ट महान् के चरणों में बैठकर धार्मिक शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद उसने 1252 ई. में अध्ययन व अध्यापन कार्य में रुचि ली और उसने इटली के अनेक शिक्षण संस्थानों में पढ़ाया। इस दौरान उसने विलियम ऑफ मोरवेक के सम्पर्क में आने पर अरस्तू व उसके तर्कशास्त्र पर अनेक टीकाएँ लिखीं। उस समय भिक्षुओं के लिए पेरिस विश्वविद्यालय में उपाधि देने का प्रावधान नहीं था। इसलिए पोप के हस्तक्षेप पर ही उसे 1256 ई. में 'मास्टर ऑफ थियोलोजी' (Master of Theology) की उपाधि दी गई। इसके उपरान्त उसने ईसाई धर्म के बारे में अनेक ग्रन्थ लिखकर ईसाईयत की बहुत सेवा की। पोप तथा अन्य राजा भी अनेक धार्मिक विषयों पर उसकी सलाह लेने लग गए। इस समय उसकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। अपने समय के महान् प्रकाण्ड विद्वान की अल्पायु में ही 1274 ई. में मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद 16वीं शताब्दी में उसे 'डॉक्टर ऑफ दि चर्च' (Doctor of the Church) की उपाधि देकर सम्मानित किया गया।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)

सेण्ट थॉमस एक्विनास के राज-दर्शन का प्रतिबिम्ब उसकी दो रचनाएँ 'डी रेजिमाइन प्रिन्सिपम' (De Regimine Principum) तथा 'कमेण्ट्री ऑन अरिस्टॉटिल्स पॉलिटिक्स' (Commentary on Aristotle's Politics) है। इन रचनाओं में राज्य व चर्च के सम्बन्धों के साथ-साथ अन्य समस्याओं पर भी चर्चा हुई है। ये रचनाएँ राज्य व चर्च के सम्बन्धों का सार मानी जाती हैं। 'सुम्मा थियोलॉजिका' (Summa Theologica) भी एक्विनास का एक ऐसा महान् ग्रन्थ माना जाता है, जिसमें प्लेटो तथा अरस्तू के दर्शनशास्त्र का रोमन कानून और ईसाई धर्म-दर्शन के साथ समन्वय स्थापित किया गया है। इस ग्रन्थ में कानून की संकुचित रूप से व्याख्या व विश्लेषण किया गया है। 'रूल ऑफ प्रिन्सेस' (Rule of Princess), 'सुम्मा कण्ट्रा जेंटाइल्स' (Summa Contra Gentiles) 'टू दि किंग ऑफ साइप्रस' (To the King of Cyprus) 'ऑन किंगशिप' (On Kingship) भी एक्विनास की अन्य रचनाएँ हैं। 'ऑन किंगशिप' (On Kingship) में एक्विनास राजतन्त्र व नागरिक शासन पर चर्चा की है। उसकी सभी रचनाएँ उसके महान विद्वतावादी होने के दावे की पुष्टि करती हैं।

प्र.4. थॉमस एक्विनास के राज्य के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
Explain Thomas Aquinas' theory of state.

उत्तर

एक्विनास का राज्य का सिद्धान्त
(Aquinas' Theory of State)

जिस प्रकार एक्विनास ने धर्म से पृथक् तर्क का अस्तित्त्व माना है, उसी प्रकार उसने चर्च से पृथक् राज्य का अपना औचित्य भी स्वीकार किया है। आरम्भिक मध्ययुगीन ईसाई विचारकों का मानना था कि राज्य की उत्पत्ति मनुष्य के आरम्भिक पाप (Original Sin) के कारण हुई है। एक्विनास ने मध्ययुगीन तथा उससे पहले से प्रचलित राज्य-उत्पत्ति के सभी सिद्धान्तों को नकारते हुए अपने ग्रन्थ सुम्मा 'थियोलोजिका' में राज्य सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत किया, उसने राज्य की उत्पत्ति की पापमयी धारणा को सरेआम अस्वीकार कर दिया। वह अरस्तू तथा प्लेटो जैसे यूनानी दार्शनिकों की तरह यह मानता था कि मनुष्य राजनीतिक तथा सामाजिक प्राणी है और राज्य की आवश्यकता केवल इसलिए नहीं है कि वह मानव बुराइयों को रोकता है, बल्कि इसलिए भी है कि राज्य के बिना व्यक्ति अपना सम्पूर्ण विकास नहीं कर सकता। एक्विनास एक ऐसा प्रथम ईसाई दार्शनिक था जिसने यह कहने का साहस किया कि राज्य मनुष्य के लिए स्वाभाविक है और जो नियन्त्रण राज्य अपने अपने सदस्यों पर आरोपित करता है, वह उनके लिए बाधा न होकर उनके नैतिक विकास में सहायक होता है। उसका मानना था कि समाज प्राकृतिक है, इसलिए राज्य भी

प्राकृतिक है। इस प्रकार एक्विनास ने राज्य की उत्पत्ति के बारे में एक विशिष्ट मध्ययुगीन धारणा अपनाकर राज्य की उत्पत्ति के ऑगस्टाइन के सिद्धान्त को अरस्तु के तर्क के अनुसार संशोधित करने का प्रयास किया। उसने स्पष्ट किया कि निर्दोषता की अवस्था (State of Innocence) में (पापमयी जीवन से पहले) भी राज्य किसी न किसी रूप में विद्यमान था। उसने ऑगस्टाइन तथा अन्य ईसाई विचारकों की इस अभिधारणा को अस्वीकार किया कि निर्दोषता की अवस्था में राज्य नाम की कोई वस्तु नहीं थी। एक्विनास ने यह स्पष्ट करने के लिए कि राज्य एक कृत्रिम, पापमयी, परम्परागत संस्था न होकर एक प्राकृतिक संस्था है, के पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत किए। उसके प्रमुख तर्क निम्न प्रकार से हैं—

1. 'मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है।' एक्विनास ने अरस्तू के इस तर्क का विस्तार करते हुए कहा कि एक प्रधान (Head) के बिना व्यक्ति एक व्यवस्थित समाज में नहीं रह सकता। प्रधान या मुखिया जनहित की देखभाल करके समाज के निर्देशक तथा दण्डनायकिक शक्ति का केन्द्र बना रहता है। यदि श्रेष्ठ का निम्नतर पर शासन स्वीकार कर लिया जाए तो मनुष्य का मनुष्य के ऊपर शासन की धारणा स्वाभाविक बन जाती है। अतः राज्य मनुष्य के लिए प्राकृतिक है।
2. यदि अधिक सद्गुणी, श्रेष्ठ, प्रज्ञावान व्यक्तियों का निम्न पर शासन प्रकृति के अनुकूल है तो राज्य एक प्राकृतिक संस्था है। यह प्राकृतिक होने के साथ-साथ निम्न लोगों के लिए लाभदायक भी है। इससे उनको अपने व्यक्तित्त्व का विकास करने के अवसर प्राप्त होंगे।
3. एक्विनास का मानना है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर आश्रित होता है। इससे अच्छे जीवन के लिए सेवाओं का स्वाभाविक आदान-प्रदान होता रहता है। इसलिए समाज और राज्य मानव-प्रकृति की पूर्ति पर आधारित हैं। वह मनुष्य के पापमयी जीवन पर आधारित नहीं है। एक्विनास का यह विचार कि राज्य का लक्ष्य सद्गुणों का विकास करना है, सरकार के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में एक रचनात्मक दृष्टिकोण प्रकट करता है। उसके मतानुसार शासक का पद समस्त समाज के लिए होता है। सामाजिक हित में योगदान देने में ही उसकी सार्थकता है। उसका मानना है कि समुदाय को सद्गुणयुक्त जीवन की प्राप्ति में सहयोग देना ही शासक का प्रमुख कर्त्तव्य है। इसमें समाज में शान्ति व न्याय-व्यवस्था कायम रखना भी शामिल है। इसके अतिरिक्त समुदाय को जीवनयापन की वस्तुओं के बारे में आत्मनिर्भर बनाना भी शासक का प्रमुख कर्त्तव्य है। इसके लिए जो भोज्य पदार्थों की पर्याप्त आपूर्ति की व्यवस्था करनी चाहिए। उसे शिक्षालयों, चर्चों व बाजारों का अच्छा प्रबन्ध करना चाहिए। माप-तौल की समुचित प्रणाली का विकास करना, गरीबों के भरण-पोषण की व्यवस्था करना, सड़कों को चोर-डाकुओं के भय से मुक्त रखना, जनसंख्या पर नियन्त्रण रखना, पुरस्कार व दण्ड की व्यवस्था के माध्यम से प्रजा पर नियन्त्रण रखना, उसके प्रमुख कर्त्तव्य हैं। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि राज्य की भौतिक अवस्थाएँ उच्चतर लक्ष्य अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति में सहायक हों। इस प्रकार सेण्ट थॉमस एक्विनास ने शिष्टाचार व रीति-रिवाजों की समानता को राज्य का आचार बताकर आधुनिक राष्ट्रीय राज्य समर्थन किया है।

प्र.5. "एक्विनास मध्ययुग के अरस्तू के रूप में" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
Explain the statement "Aquinas as the Aristotle of the middle age."

उत्तर

एक्विनास मध्ययुग के अरस्तु के रूप में
(Aquinas as the Aristotle of Middle Age)

सेण्ट थॉमस एक्विनास ने अपना सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन अपनी ईसाइयत विचारधारा को अरस्तूवाद के साथ मिलाकर ही खड़ा किया है। इसलिए उसे ईसाई अरस्तू (Christianised Aristotle) भी कहा जाता है। अल्बर्ट महान् के चरणों में बैठकर एक्विनास ने अरस्तू की जो शिक्षाएँ ग्रहण कीं, उनका स्पष्ट प्रभाव उसके चिन्तन पर पड़ा दिखाई देता है। अरस्तू की मृत्यु के पश्चात् अरस्तूवाद की लम्बे समय तक एक्विनास से पहले किसी ने चर्चा नहीं की। एक्विनास ही एक ऐसे प्रथम ईसाई विचारक थे जिन्होंने अरस्तू के दर्शन को पुनर्जीवित किया। उन्होंने अरस्तू के दर्शन को ग्रहण तो किया लेकिन एक नए रूप में। उसने अरस्तू के दर्शन तथा ईसाई धर्म सिद्धान्त में समन्वय स्थापित किया। उसने अरस्तू के विचारों को उसी सीमा तक ग्रहण किया जिस सीमा तक वे ईसाइयत धर्म-सिद्धान्तों के पक्ष में रहे। एक्विनास ने अरस्तू की गलत धारणाओं का सर्वथा त्याग किया। उसने अरस्तू की विवेकवादी विचारधारा के साथ ईसाइयत विश्वास या धर्म को मिलाकर एक मध्यमार्ग निकाल लिया ताकि धर्मसत्ता व राजसत्ता के मध्य चले आ रहे लम्बे संघर्ष को समाप्त किया जा सके। इसलिए उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण को देखकर मैक्सी ने कहा है, 'एक्विनास मध्ययुग का स्वर्गीय अरस्तू है।' फोस्टर ने भी कहा है कि—'ऐसा प्रतीत होता है कि एक्विनास ने अपने राजनीतिक

दर्शन को यूनानी आधार पर ईसाई मुंडेर पर खड़ा किया है।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि एक्विनास पर अरस्तू की विचारधारा का काफी प्रभाव पड़ा जिस कारण से वे मध्ययुग के अरस्तू कहलाए। इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं—

1. अरस्तू के धर्मनिरपेक्ष विचार दर्शन ने एक्विनास को काफी प्रभावित किया है। इस आधार पर एक्विनास ने मध्यकालीन धर्मान्धता के गर्त से राजनीतिक चिन्तन को बाहर निकालने के लिए एक सेतु का निर्माण किया है। उसने अपने चिन्तन में वैज्ञानिकता को प्रवेश कराकर राजनीतिक चिन्तन की महान् सेवा की है। उसके प्रयासों से अराजनीतिक चिन्तन पुन: उसी स्थिति में आ गया जो अरस्तू के समय में था।
2. एक्विनास ने अरस्तू की ही तरह मनुष्य को स्वभावत: तथा अनिवार्यत: एक सामाजिक प्राणी माना है। समाज के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्त्व नहीं है। इस सिद्धान्त के आधार पर एक्विनास ने राज्य को प्राकृतिक संस्था सिद्ध किया। उसने स्पष्ट किया कि राज्य मनुष्य प्रकृति पर ही आधारित है। उसने ईसाइयत विचारधारा को नया रूप दिया। उसने कहा कि राज्य की उत्पत्ति आदिम पाप का फल नहीं है। राज्य को व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है। साथ में राज्य ईश्वर द्वारा स्थापित संस्था भी है जिसका क्रमिक विकास हुआ है। अरस्तू के सिद्धान्तों के आधार पर ही एक्विनास ने कहा है कि राज्य मानव समाज का अनिवार्य संघटक है, फिर भी राजनीतिक सत्ता अन्य सभी की तरह ईश्वर से व्युत्पन्न है। चर्च राज्य का विरोधी न होकर पूरक ही है।
3. एक्विनास ने भी अरस्तू की ही तरह श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति के लिए राज्य को अनिवार्य माना है। एक्विनास का कहना है कि राज्य व्यक्ति की पूर्ण प्राकृतिक आत्म-अभिव्यक्ति की प्राप्ति का साधन है। राज्य के आदेशों का पालन करके ही व्यक्ति श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। दोनों दार्शनिक सरकार को नैतिक उद्देश्य को प्रमुखता देते हैं। अरस्तू और एक्विनास के अनुसार राज्य एक अच्छाई है, बुराई नहीं। एक्विनास ने राज्य के अतिरिक्त चर्च को भी सर्वोपरि संगठन स्वीकार किया है। दोनों विचारक राज्य का उद्देश्य व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति को स्वीकार करते हैं।
4. एक्विनास ने अरस्तू से विवेक या तर्क का सिद्धान्त भी ग्रहण किया है। उसका मानना है कि मानवीय विवेक पर आधारित ज्ञान ईसाई धर्मशास्त्रों के विपरीत नहीं है। उसने लौकिक सत्ता का आधार विवेक को ही माना है।
5. एक्विनास न राज्यों व सरकारों का वर्गीकरण भी अरस्तू की तरह ही किया है। उसने अरस्तू की तरह ही राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और सर्व लोकतन्त्र तथा उनके तीन ही विकृत रूपों का वर्णन किया है। उसने राजतन्त्र को उत्तम तथा लोकतन्त्र को निकृष्ट रूप बताया है।
6. एक्विनास ने अरस्तू की ही तरह यह भी स्वीकार किया है कि कुछ ऐसे भी सत्य हैं जो विवेक से परे हैं। उनका ज्ञान श्रद्धा और विश्वास से ही प्राप्त हो सकता है।
7. उसने अरस्तू की तरह यह भी स्वीकार किया है कि मानव समाज की रचना सभी के हित के लिए हुई है।
8. उसने अरस्तू के कानून सम्बन्धी विचारों को भी ग्रहण किया है। वह कानून को विवेक का परिणाम मानता है। परन्तु एक्विनास ने कानून के विचार को व्यापक आधार प्रदान किया है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. ऑगस्टाइन के प्रमुख राजनीतिक विचारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Describe in detail the main political thoughts of Augustine.

उत्तर

ऑगस्टाइन के रानीतिक विचार
(Thoughts of Augustine)

ऑगस्टाइन के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विचार उसकी प्रमुख रचना 'The City of God' में ही केन्द्रित है। उनके प्रमुख राजनीतिक विचार निम्नलिखित हैं—

1. **इतिहास का दर्शन** (Philosophy of History)—ऑगस्टाइन ने अपने ग्रन्थ 'The City of God' के प्रारम्भिक 10 खण्डों में इतिहास का क्रमबद्ध विवेचन करके ईसाई धर्म की आलोचनाओं का प्रतिवाद किया है। ऑगस्टाइन ने रोम के पतन का कारण दैवीय इच्छा का परिणाम मानते हुए ईसाई धर्म की रक्षा का प्रयास किया है। ऑगस्टाइन के अनुसार—'रोम का पतन एक दैवी न्याय है जिसका प्रयोजन वास्तविक ईश नगर की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त करना

TOUCH 'n PASS

था। जो ईश्वर व्यवस्था, नियमितता और प्रकृति में सौन्दर्य का नियमन करता है, वह सांसारिक घटनाओं का भी संचालन करता है और राष्ट्रों का उत्थान और पतन इसी में सम्मिलित है।'

ऑगस्टाइन ने बताया कि यह मानना मूर्खतापूर्ण है कि रोम के पतन के लिए ईसाई धर्म उत्तरदायी था। उसने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि गैर-ईसाई देवताओं का तिरस्कार करने के कारण रोम का पतन नहीं हुआ था। उसने कहा कि यह तो पूर्व नियोजित ईश्वरीय इच्छा का परिणाम था ताकि पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य कायम किया जा सके। उसने बताया कि मानव का इतिहास अच्छाई और बुराई की शक्तियों के मध्य संघर्ष का इतिहास है। विभिन्न भौतिक साम्राज्यों के रूप में बुराइयों के चरम सीमा पर पहुँचने पर उनका अन्त करना आवश्यक होता है क्योंकि भौतिक साम्राज्य अस्थायी होते हैं। ये साम्राज्य मानव के अकल्याणकारी कार्यों पर आधारित होने के कारण पारस्परिक संघर्ष द्वारा नष्ट हो जाते हैं। उसका कहना है कि इन्हें नष्ट होना ही चाहिए क्योंकि यही दैवीय इच्छा है और इनके स्थान पर स्थापित ईश्वर का साम्राज्य ही वास्तविक साम्राज्य है जो कभी नष्ट नहीं हो सकता। इस प्रकार ऑगस्टाइन ने अपने इतिहास के दर्शन द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की। रोम का पतन ईश्वरीय चेष्टा का परिणाम है ताकि पृथ्वी पर ईश-नगरी की स्थापना की जा सके। उसने मानव इतिहास का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मानव इतिहास की प्रगति पूर्व आयोजित लक्ष्य की तरफ हो रही थी और वह लक्ष्य था ईसाई राष्ट्रमण्डल की स्थापना। इसी लक्ष्य के मार्ग में रोमन साम्राज्य एक बाधा बनकर खड़ा था; इसलिए उसका नाश कर दिया गया। ऑगस्टाइन कहता है कि रोम के पतन में सन्तोषजनक अच्छी बात यह है कि अब यहाँ के शासक और जनता ईसाई धर्म अपनाकर राज्य के रास्ते में आने वाली किसी भी बाधा को रोक पाने में सफल होंगे। ईसाई राष्ट्रमण्डल की स्थापना से रोम आध्यात्मिक मुक्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाएगा।

2. **दो नगरियों का सिद्धान्त** (The Theory of Two Cities)—ऑगस्टाइन ने अपनी पुस्तक 'The City of God' के खण्ड 11 से 22 तक ईश-नगरी का चित्रण किया है। इसमें वह दो नगरों का चित्रण करते हुए कहता है कि भौतिक नगर नष्ट होते रहते हैं लेकिन एक स्थायी नगर भी है, वह ईश्वर का नगर है। पृथ्वी पर इसका नवीनतम् और सर्वांगपूर्ण भौतिक रूप ईसाई चर्च है। ऑगस्टाइन कहता है कि इन दो नगरियों में से एक तो सांसारिक नगरी (The City of Earth) है और दूसरी ईश्वर की नगरी (The City of God) है। ईश-नगर सार्वदेशिक व सार्वकालिक है लेकिन सांसारिक नगरी नश्वर व अस्थायी है। ऑगस्टाइन मानव स्वभाव के दो रूपों शरीर और आत्मा से अपने दो नगरों के सिद्धान्त को जोड़ते हुए कहते हैं कि ईश्वरीय नगर का सम्बन्ध आत्मा से है लेकिन सांसारिक नगर का सम्बन्ध शरीर से है। सांसारिक नगरी का सम्बन्ध मनुष्य की वासनाओं से है, इसलिए यह शैतान की नगरी है। पाप की नगरी होने के कारण इसका पतन होना निश्चित है। इस पाप की शुरुआत देवताओं की अवज्ञाओं से शुरू होती है और बाद में गैर-ईसाइयत के रूप में प्रकट होती है। रोम साम्राज्य का पतन भी इस पापमय जीवन के कारण हुआ है। ईश्वरीय नगरी अविनाशी तथा स्थायी है। इस नगरी में धर्मपरायण लोग ही रहते हैं। इस नगरी के सभी लोग ईश्वर के प्रति अपने सर्वनिष्ठ प्रेम के कारण बँधे हुए हैं। इस नगरी की आधारशिला स्वर्गीय शान्ति और आध्यात्मिक मुक्ति है। जिस प्रकार सांसारिक नगरी बुराई का प्रतीक है, उसी प्रकार ईश्वरीय नगरी अच्छाई का प्रतीक है। ईश्वरीय नगरी का सदस्य बनने के लिए सच्ची योग्यता ईश्वर का अनुग्रह है, न कि जाति, राज्य या वर्ग है। ईश-नगरी के सदस्य प्रेम द्वारा ईश्वर से बँधे रहते हैं और सभी एक समाज के सदस्य होते हैं। ईश्वरीय नगरी की सदस्यता विशाल है क्योंकि इसमें सभी देवदूत, सन्त तथा सद्गुणी व्यक्ति शामिल होते हैं। ऑगस्टाइन का मानना है कि ये दोनों नगरियाँ एक-दूसरे के आस-पास ही रहती हैं। ये आपस में मिलती रहती हैं और एक-दूसरे को अतिछादित (Overlap) करती रहती हैं। इनमें संघर्ष होने पर ईश्वरीय नगरी की ही विजय होती है। चर्च ईश्वरीय नगरी के प्रतिनिधि के रूप में सर्वोच्च व सर्वशक्तिमान है और केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। ईश्वरीय नगरी का सदस्य बनने के लिए ईश्वर की कृपा अनिवार्य है। इस प्रकार ऑगस्टाइन ने स्पष्ट किया है कि सांसारिक नगरी (रोम साम्राज्य) का पतन आवश्यक था क्योंकि यह ईश्वरीय नगरी (चर्च) की विरोधी हो गई थी।

ईश्वरीय नगरी के दो सद्गुण (Two Virtues of the City of God)—ऑगस्टाइन ने ईश्वरीय नगरी के दो सद्गुणों का भी वर्णन किया है। ये दो सद्गुण हैं—न्याय (Justice) और शान्ति (Peace)। ऑगस्टाइन कहता है कि व्यवस्था के अनुकूल आचरण और इस व्यवस्था से उत्पन्न होने वाले कर्त्तव्यों का पालन करना न्याय है। ऑगस्टाइन कहता है कि पूर्ण न्याय न तो परिवार की व्यवस्था में है और न ही राज्य की में। राज्य व परिवार में परस्पर संघर्ष होता रहता है, इसलिए मनुष्य केवल एक के प्रति न्यायपूर्ण हो सकता है। इसलिए राज्य व परिवार में न्याय सापेक्षिक (Relative) होता है, पूर्ण

न्याय नहीं। सम्पूर्ण न्याय तो सार्वत्रिक समाज (सार्वदेशिक व्यवस्था) में पाया जाता है। समाज मनुष्य मात्र का समाज है जिसका शासक ईश्वर है। इसका संचालन सब मनुष्यों के लिए ईश्वर की इच्छा द्वारा निर्धारित एक सार्वदेशिक (राज्य से बाहर) व्यवस्था द्वारा किया जाता है। एक राज्य इस व्यवस्था का उल्लंघन कर सकता है और वह तब अन्यायपूर्ण होगा। उस स्थिति में व्यक्तियों द्वारा अपने राज्य की अवज्ञा करना और सार्वदेशिक व्यवस्था का पालन करना न्यायसंगत होगा। इस प्रकार राज्य के व्यक्ति ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करने में सफल सिद्ध होंगे। ऑगस्टाइन की यह धारणा प्लेटो से अधिक व्यापक है। यह समय और स्थान की सीमा से बँधी नहीं है। अत: यह अधिक पूर्ण धारणा है। ऑगस्टाइन का सार्वदेशिक समाज ईसाई राष्ट्रमण्डल (Christian Commonwealth) के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस धारणा द्वारा ऑगस्टाइन राज्य को गिरजाघर (चर्च) के अधीन कर देते हैं। राज्य चर्च के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। गैर ईसाई राज्यों में न्याय नहीं था क्योंकि वे चर्च के कार्यों में हस्तक्षेप करते थे। अत: सच्चा न्याय ईसाई धर्म के आविर्भाव से ही सम्भव हो सकता है। इस प्रकार ऑगस्टाइन ने इस सद्गुण के द्वारा ईश्वरीय नगरी की प्रशंसा करके ईसाई राष्ट्रमण्डल का समर्थन किया है। ऑगस्टाइन ईश्वरीय नगरी का दूसरा सद्गुण शान्ति (Peace) को मानता है। वह संघर्ष की अनुपस्थिति को ही शान्ति नहीं मानता। उसकी नजर में शान्ति एक सामंजस्यपूर्ण ठोस सम्बन्ध है। भौतिक राज्य और ईश नगर दोनों का लक्ष्य शान्ति स्थापित करना है। राज्य केवल सापेक्षिक (Relative) शान्ति स्थापित करता है। ऐसी शान्ति साध्य न होकर साधन होती है। राज्य की शान्ति का अर्थ एक-दूसरे के साथ व्यवस्थाबद्ध सम्बन्धों का सामंजस्य है जबकि ईश्वरीय नगरी की दृष्टि में सर्वाधिक व्यवस्थित और सामंजस्यपूर्ण तरीके से ईश्वर की प्राप्ति और ईश्वर में लीन होने में एक-दूसरे का हाथ बँटाना ही शान्ति है। भौतिक राज्य (सांसारिक नगरी) द्वारा स्थापित शान्ति नकारात्मक शान्ति है और वह पूर्ण शान्ति नहीं है। यह कानूनों पर आधारित शान्ति है जो बदलते रहते हैं। पूर्ण और सार्वदेशिक शान्ति ईश्वर में लीन होने पर ही प्राप्त हो सकती है।

इस प्रकार ऑगस्टाइन ईश्वरीय नगरी के दो सद्गुणों की व्याख्या करके ईश्वरीय नगरी के महत्त्व को सिद्ध करता है। उसके विचारानुसार ईश्वरीय नगरी में ही न्याय व शान्ति जो मनुष्य व राज्य के ध्येय हैं, प्राप्त किए जा सकते हैं।

3. **राज्य का सिद्धान्त** (Theory of State)—ऑगस्टाइन का कहना है कि न्याय राज्य का आधार नहीं होता। राज्य तो ऐसे भी हो सकते हैं जो ईसाई धर्म को न मानते हों किन्तु न्याय तो केवल ईसाई राज्य में ही हो सकता है। इसलिए न्याय चर्च का लक्षण है, न कि राज्य का। चर्च का अधिकार राज्य के अधिकार से बड़ा होता है। सेण्ट ऑगस्टाइन ने कहा है कि समूह में रहने की मनुष्य की प्रवृत्ति ओर मूल पाप से उत्पन्न मनुष्य के पाप के कारण ही राज्य की उत्पत्ति हुई। उसके मतानुसार राज्य की स्थापना ईश्वर द्वारा मनुष्य को पापमय जीवन से मुक्ति दिलाने के लिए की गई है। यद्यपि राज्य की उत्पत्ति मनुष्य को पापमुक्त करने के लक्ष्य को लेकर हुई है, फिर भी राज्य पाप का प्रतीक नहीं है। राज्य की उत्पत्ति स्वयं ईश्वर ने की है। राज्य स्वयं ईश्वर का प्रतिनिधि है। इसलिए उसकी आज्ञा का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। ऑगस्टाइन का मानना है कि मनुष्य सामाजिक सहज प्रवृत्ति के कारण शान्ति प्राप्त करना चाहता है। राज्य कम सांसारिक शान्ति व व्यवस्था प्रदान करता है। परन्तु सांसारिक शान्ति अपने आप में साध्य नहीं है। वह तो सार्वत्रिक (Universal) शान्ति की उपलब्धि के लिए एक आधार है। सार्वत्रिक शान्ति तो ईश्वरीय नगरी में ही सम्भव है। इस प्रकार वह दैवीय सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है अर्थात् वह राज्य की उत्पत्ति का दैवीय सिद्धान्त पेश करता है। राज्य ईश्वरीय नगरी के लिए न्याय प्रदान करता है। चर्च को सम्पत्ति और इमारत राज्य ही प्रदान कर सकता है। राज्य ही चर्च को इसका अधिकार दे सकता है। राज्य को दैवी मान्यता होती है इसलिए उसके आदेशों का पालन करना चाहिए। यदि राज्य धर्म और नैतिकता का पालन न करे तो उसकी अवज्ञा करनी चाहिए। ऑगस्टाइन ने लौकिक राज्य की अपेक्षा ईश्वरीय राज्य को सम्पूर्ण शान्ति व न्याय पर आधारित राज्य मानकर उसके पालन पर बल दिया है। वह कहता है कि गैर-ईसाई राज्य लौकिक राज्य है तथा उसका ईसाई राज्य ईश्वरीय राज्य है जो अन्य से सर्वोत्तम है। उसने अपने इस सिद्धान्त द्वारा रोम के पतन पर हर्ष व्यक्त करते हुए कहा कि रोम का राज्य लौकिक राज्य था। उसके पतन से ईश्वरीय राज्य (ईसाई राज्य) का मार्ग प्रशस्त हो गया है। ऑगस्टाइन ने अप्रत्यक्ष रूप से चर्च को राज्य से श्रेष्ठ घोषित कर दिया है।

4. **चर्च और राज्य में सम्बन्ध** (Relation Between Church and State)—राज्य की उत्पत्ति के बाद ऑगस्टाइन ने चर्च और राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि चर्च ईश्वर का प्रतिनिधि है। ईश्वर की अधिक ऊँची सत्ता होने के नाते चर्च के आदेशों का पालन करना आवश्यक है। उनका मानना है कि राज्य के कानूनों का

पालन और उसमें सत्ता का सम्मान तभी न्यायसंगत है जब तक वे ईश्वर के प्रति अपने कर्त्तव्य से विपरीत न जाएँ। राज्य को सार्वभौम रोमन कैथोलिक चर्च के अधीन करते हुए भी वे राज्य के कानूनों का पालन करने का प्रचार करते हैं। परन्तु यह कानून निरपेक्ष नहीं है। यदि यह कानून व्यक्ति को सच्ची शान्ति व न्याय प्रदान करने में सक्षम नहीं है तो उसका विरोध किया जा सकता है। वह कहता है कि राज्य की गिरजाघर को धर्मनिरपेक्ष (Secular) अंग के रूप में राज्याधिकार सम्भालना चाहिए। परन्तु ऑगस्टाइन ऐहिक व आध्यात्मिक मामलों में स्पष्ट विभाजन रेखा खींचकर नागरिकों को ऐहिक मामलों में ही राज्य के आदेश का पालन करने की बात कहते हैं। यदि राज्य धर्म या आध्यात्मिक मामलों में हस्तक्षेप करे तो नागरिकों को उस राज्य के आदेशों से मुँह मोड़ लेना चाहिए। चर्च और राज्य एक दूसरे पर आश्रित होते हुए भी चर्च सर्वोच्च संस्था है जो ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में पृथ्वी पर विराजमान है। ऑगस्टाइन का कहना है कि चर्च और राज्य में परस्पर सहायता व सहयोग का सम्बन्ध होना चाहिए। ईसाई सम्राट का चर्च के आध्यात्मिक मार्गदर्शन की जरूरत होती है तथा चर्च को विधि व व्यवस्था के लिए राज्य की आवश्यकता होती है। अत: दोनों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करना चाहिए तभी ईश-नगर की स्थापना सम्भव है। इस प्रकार ऑगस्टाइन चर्च को आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्वोच्च बनाने के साथ-साथ उसे ऐहिक मामलों में भी राज्य को चर्च के अधीन कर देते हैं।

5. **सम्पत्ति और दासता सम्बन्धी विचार** (Views on Property and Slavery)—ऑगस्टाइन ने भी अन्य ईसाई विचारकों की तरह सम्पत्ति रखना वैध माना है। उसका मत है कि सम्पत्ति रखना कोई प्राकृतिक अधिकार न होकर परम्परागत परिपाटी है और यह अधिकार राज्य प्रदान करता है। उसका विचार है कि सम्पत्ति के अभाव में मनुष्य अपने लौकिक और आध्यात्मिक जीवन के उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकता। परन्तु उसका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को उतनी ही सम्पत्ति रखने का अधिकार है जितनी इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति का प्रयोग जनहित के लिए करना चाहिए।

ऑगस्टाइन दास-प्रथा को उचित ठहराता है क्योंकि उसका विचार है कि मूल पाप से उत्पन्न मनुष्य के पाप का दण्ड दासता है। ऑगस्टाइन इस बात से इन्कार करता है कि मनुष्य जन्म से दास होता है। उसका मानना है कि यदि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जाए तो मनुष्य का उत्कर्ष हो सकता है । ऑगस्टाइन का कहना है कि—'दासता एक प्रकार का आदि-मानव के पतन को कारण होने वाले मनुष्यता के पतन के लिए मानव जाति को दिया गया सामूहिक दण्ड है।' उसका मानना है मालिक दास से अच्छा नहीं होता। मालिक पर ईश्वर की कृपा होती है। यदि दास भी ईश्वर की कृपा का पात्र बन जाए तो वह भी दासता से मुक्त हो सकता है। लेकिन ऑगस्टाइन दासता का औचित्य सिद्ध करने में असफल रहे हैं। उन्होंने यह बताया कि यदि कोई मनुष्य पाप करता है तो उसके पाप के बदले में उसे दास बनाया जाना तो उचित है, लेकिन यदि सम्पूर्ण मानवता पाप करे तो उसे ही दास क्यों बनाया जाए जबकि अन्य कोई दास नहीं बनाया जाता। अत: दासता का सिद्धान्त असन्तोषजनक है।

प्र.2. सेण्ट एक्विनास के सरकार के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए तथा चर्च और राज्य के बीच सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
Discuss St. Aquinas' theory of government and explain the relationship between church and state.

उत्तर

एक्विनास का सरकार का सिद्धान्त
(Aquinas' Theory of Government)

सेण्ट एक्विनास ने मनुष्य का मनुष्य के ऊपर शासन दो प्रकार का बताया है। पहला, पाप से उत्पन्न दासता का रूप होता है। दूसरा सहज सामाजिक प्रवृत्ति से उत्पन्न नागरिक सत्कार के रूप में होता है। ऐसी नागरिक सरकार कई प्रकार की होती है—
(i) पुरोहितवादी (Sacerdotal) (ii) राजसी (Royal) (iii) राजनीतिक (Political) (iv) आर्थिक (Economic)। इनमें से पहली पोपतन्त्र के रूप में सर्वोच्च किस्म होती है। सामान्य रूप से राज्य का शासन राजसी अथवा राजनीतिक सरकारों द्वारा चलाया जाता है। राजसी सरकार में शासक के पास निरंकुश शक्तियाँ न होकर विशाल शक्तियाँ होती हैं। राजनीतिक सरकार में शासक की शक्तियाँ कानूनों से सीमित होती हैं। एक्विनास का मानना है कि सरकारों का अच्छा या बुरा होना 'सब की भलाई' के मापदण्ड पर ही निर्भर करता है। एक्विनास ने इस बात पर जोर दिया है कि राज्य या सरकार का प्रमुख लक्ष्य मनुष्यों के बीच सद्गुणों का विकास करना है ताकि वे मोक्ष-प्राप्ति करने में सफल हो सकें। इस उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति में सफल सरकार अच्छी तथा असफल सरकार निकृष्ट होती है। इस प्रकार सरकारों का वर्गीकरण करने में एक्विनास ने अरस्तू का अनुसरण करते हुए राजतन्त्र, अभिजाततन्त्र, सर्वजनतन्त्र, निरंकुशतन्त्र, धनिकतन्त्र तथा जनतन्त्र में बाँटा है। इनमें से राजतन्त्र सरकार का सर्वोत्तम तथा जनतन्त्र निकृष्ट रूप होता है।

राजतन्त्र पर विचार (Views on Monarchy)—एक्विनास ने राज्य के स्थायित्व, एकता व नियमितता के लिए राजतन्त्र का ही समर्थन किया है। उसने इसे सबसे सर्वश्रेष्ठ सरकार मानकर इसकी प्रशंसा की है। उसके समर्थन के आधार निम्नलिखित हैं—

1. समाज में एकता तथा शान्ति राजतन्त्र में ही सम्भव है।
2. अव्यवस्था तथा अराजकता की समाप्ति राजतन्त्र में ही सम्भव है।
3. जिस तरह ईश्वर एक है और उसका पूरे ब्रह्माण्ड पर शासन है, उसी प्रकार समाज में एक राजा ही ठीक है। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अवयवों पर दिल, मधुमक्खियों के छत्ते पर रानी मधुमक्खी का शासन अच्छा रहता है, वैसे ही समाज में एक ही व्यक्ति का शासन सर्वोत्तम होता है।
4. ऐतिहासिक अनुभव भी यह बताता है कि राजतन्त्रात्मक सरकारें ही अन्य सरकारों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ रही हैं। राजतन्त्र में ही शान्ति व समृद्धि का वातावरण रहा है। लोकतन्त्रात्मक सरकारें फूट व अराजकता से भरपूर रही हैं।

इस प्रकार एक्विनास ने राजतन्त्र को सर्वोत्तम सरकार माना है।

निरंकुश सरकार (Tyranny)—एक्विनास का मानना है कि राजतन्त्र पथभ्रष्ट होकर अत्याचारी शासन में बदल सकता है। यही राजतन्त्र का सबसे गम्भीर दोष हैं यह सरकार की सबसे बुरी किस्म है। इसमें शासक प्रजा के हित में शासन न करके अपने हितार्थ शासन करता है। उसने बताया है कि राजतन्त्र को निरंकुश बनने से रोकने के लिए राजतन्त्र को लचीला बनाना आवश्यक होता है। उसका मानना है कि तानाशाही के अन्तिम काल अर्थात् स्वयं लोगों के अन्याय को दूर किया जाना चाहिए ताकि राजतन्त्र को तानाशाही में परिवर्तित होने से रोका जा सके। लेकिन उसने यह नहीं बताया कि राजतन्त्र में लचीलापन कैसे लाया जाए। एक्विनास अत्याचारी शासक के वध का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि यह भी सम्भव है कि निरंकुशतन्त्र जनतन्त्र में बदलने पर और अधिक अत्याचारी शासन कायम हो सकता है। एक्विनास स्वयं राजतन्त्र को निरंकुश नहीं बनाते क्योंकि वे स्पष्ट करते हैं कि राजा को सदैव अपने उत्तरदायित्व निभाने चाहिए। राजा का प्रमुख उत्तरदायित्व ईश्वर के प्रति होता है। पोप ईश्वर का प्रतिनिधि होने के कारण उसको अपने अधीन रख सकता है। जनता को भी शान्तिपूर्वक तरीके से उसे हटाने की शक्ति प्राप्त है। उसको हटाना तो उचित है लेकिन उसके पद का हनन करना अनुचित है। वह तानाशाही की हत्या के सिद्धान्त की निन्दा करते हैं। इस प्रकार एक्विनास राजतन्त्र को सर्वोत्तम सरकार मानते हुए उसको बनाए रखने के पक्षधर हैं। उसके अनुसार राजा को अत्याचारी बनने से रोकने के लिए राजा को संविधान-पालन की शपथ दिलाने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि शपथ का उल्लंघन करने पर राजा को न्यायोचित आधार पर गद्दी से उतारा जा सके।

सरकार के कार्य (Functions of Government)—एक्विनास के मतानुसार शासन का अधिकार एक न्यास (Trust) का पद है जो समूचे समाज के लिए अस्तित्त्व में लाया जाता है। उसके लिए कुछ उत्तरदायित्व या कर्त्तव्य निश्चित किए गए हैं, जिनके पूरा होने पर ही शासक का पद कायम रह सकता है। एक्विनास के अनुसार राज्य या सरकार के निम्न कार्य हैं—

1. सरकार को राज्य में एकता को बढ़ावा देना चाहिए ताकि शान्ति कायम हो सके। फूट और दलबन्दी को समाप्त करना चाहिए।
2. सरकार का यह भी कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रजा पर नाजायज कर न लगाए और न ही उसकी सम्पत्ति का हरण करे।
3. सरकार को मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुओं की पूर्ति बनाए रखनी चाहिए।
4. बाहरी आक्रमणों से बाहरी शत्रुओं से अपनी सीमाओं और नागरिकों की रक्षा करनी चाहिए।
5. शासक का यह कर्त्तव्य है कि वह गरीबों के भरण-पोषण की व्यवस्था करे।
6. सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य के लिए विशेष मुद्रा और नाप-तौल की प्रणाली लागू करे।
7. चोर-डाकुओं के भय से सड़कों को मुक्त रखे।
8. योग्य व्यक्तियों को पुरस्कृत तथा अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था करे।
9. अपने अधिकार क्षेत्र में शान्ति औरा व्यवस्था बनाए रखे। राज्य में अराजकता, अव्यवस्था तथा उपद्रवों से निपटने में सक्षम सरकार का होना जरूरी है।
10. सरकार को अपने नागरिकों में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। उसे प्रजा को सदाचारी बनाने पर जोर देना चाहिए।
11. सरकार को व्यक्तिगत हितों की बजाय लोकहित को बढ़ावा देना चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

इस प्रकार एक्विनास ने सरकार के जो कर्त्तव्य या कार्य निर्धारित किए हैं, वे आधुनिक सरकारों के कार्यों से मिलते-जुलते हैं। लेकिन एक्विनास का शासक आधुनिक राज्य की तरह सम्प्रभु नहीं है। उसके कार्य तो सकारात्मक हैं लेकिन उनको पूरा करने के लिए उसके पास सर्वोच्च सत्ता नहीं है। उस पर पोप या चर्च का पूर्ण नियन्त्रण है। शासक को नियन्त्रण या मर्यादा में रहकर ही अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है।

चर्च और राज्य का सम्बन्ध
(Relationship Between Church and State)

सेण्ट थॉमस एक्विनास ने लौकिक सत्ता (राज्य) तथा पारलौकिक सत्ता (चर्च) में सम्बन्ध स्थापित करके राजसत्ता तथा धर्मसत्ता के मध्य चल रहे लम्बे संघर्ष का समाधान करने का प्रयास किया। एक्विनास ने बताया कि मनुष्य सांसारिक सुख व आत्मिक सुख की प्राप्ति चाहता है। सांसारिक सुख की प्राप्ति राज्य द्वारा तथा आत्मिक सुख की प्राप्ति चर्च द्वारा ही कराई जा सकती है। थॉमस एक्विनास का मत है कि सद्गुणी व्यक्ति भी चर्च की सहायता के बिना अपने परम लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त नहीं कर सकता। यह परम सत्य (मोक्ष) श्रद्धा और विश्वास पर ही आधारित होता है। अत: यह चर्च का मामला होता है। राजा का कर्त्तव्य बनता है कि वह इस प्रकार शासन करे कि ईश्वर की इच्छा पूरी और धर्म की वृद्धि हो। एक्विनास के अनुसार व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य तो मोक्ष प्राप्त करना है। इसे प्राप्त कराने के लिए दोनों (चर्च व राज्य) को संगठित प्रयास करना चाहिए। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह नागरिकों को सद्गुणी बनाने के प्रयास करें और चर्च का कर्त्तव्य है कि वह मनुष्यों को मोक्ष प्राप्ति कराने के लिए उनकी आत्मशुद्धि में वृद्धि करे। एक्विनास का कहना है कि राज्य चर्च के अधीन रहते हुए अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करे ताकि परम लक्ष्य को आसानी से प्राप्त किया जा सके। एक्विनास ने राज्य की तुलना समुद्री जहाज के बढ़ई से तथा चर्च की तुलना जहाज के चालक से करके अपना मत प्रस्तुत किया है कि चालक ही जहाज का दिशा निर्देशन और दिनगमन करता है। इसका अर्थ यह है कि सांसारिक शासक चर्च के सहयोग और उसके मार्गदर्शन के अन्तर्गत ही समुचित रूप से अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन कर सकता है। मोक्ष तर्क के द्वारा नहीं धर्म में विश्वास के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और धर्म के सारे मामलों में चर्च ही सर्वोच्च सत्ता है। चर्च राज्य का नियन्त्रक व मार्गदर्शक है, इसलिए पोप की सत्ता सांसारिक सत्ता (राज्य) से श्रेष्ठ है। आत्मा पर नियन्त्रण रखना भौतिक वस्तुओं पर नियन्त्रण रखने से श्रेष्ठ है। इसलिए सभी व्यक्तियों को चर्च की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करना चाहिए। एक्विनास ने कहा कि शासक ईश्वर की छाया हो सकता है, लेकिन यदि वह चर्च की अवहेलना करे, तो उसे धर्म बहिष्कृत किया जा सकता है। पोप के पास सांसारिक शासकों के कर्त्तव्यों का नियमन करने, उन्हें दण्ड देने और प्रजा को उनके प्रति निष्ठा से मुक्त करने की शक्ति है। एक्विनास ने कहा है—'जिस प्रकार शरीर मस्तिष्क के अधीन है वैसे ही सांसारिक सत्ता आध्यात्मिक सत्ता के अधीन है।' इसलिए यदि चर्च शासक के कार्यों में हस्तक्षेप करता है तो वह अनुचित नहीं है। इसके बावजूद भी चर्च और राज्य एक-दूसरे के विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं जिसमें चर्च राज्य से श्रेष्ठ है। थॉमस एक्विनास ने यह भी स्पष्ट किया है कि पोप की राज्य क्षेत्रीय प्रभुसत्ता न्यायोचित है। चर्च का प्रधान होने के नाते उसकी अपनी भूमि हो सकती है, लेकिन वह उसका स्वामी नहीं हो सकता। उसने राज्य के दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए, राज्य को सांसारिक मामलों में कुछ छूट प्रदान करके मध्यमार्गी होने का परिचय दिया है। एक समन्वयवादी विचारक होने के नाते उसने पोप को राजा के ऊपर कोई प्रत्यक्ष अधिकार नहीं सौंपा है। उसने सांसारिक मामलों में राजा को ही सम्प्रभु माना है। कार्लाइल ने इस बारे में कहा है—'सेण्ट एक्विनास का यह सामान्य और परिपक्व निर्णय था कि सांसारिक मामलों में पोप का प्रत्यक्ष अधिकार न होकर अप्रत्यक्ष अधिकार ही है।' वास्तव में सत्य तो यह है कि उसने नम्र पोपवादी होने के नाते धर्मसत्ता व राजसत्ता के मध्य लम्बे समय से चल रहे संघर्ष को कुछ शान्त करने का प्रयास किया है।

प्र.3. एक्विनास के कानून के संबंध में राजनीतिक विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe the political thoughts regarding the law of Aquinas.

उत्तर

कानून का वर्गीकरण
(Classification of Law)

राजनीतिक चिन्तन के लिए एक्विनास का कानून सम्बन्धी विवेचन उसकी सबसे महान् एवं मूल्यवान देन है। एक्विनास ने कानून के वर्गीकरण का सबसे अधिक मौलिक विचार प्रस्तुत करके आधुनिक युग को ऋणी बना दिया है। कानून के बारे में किसी भी

पूर्ववर्ती विचारक ने इतना तर्कसंगत तथा व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत नहीं किया जितना एक्विनास ने। एक्विनास ने अरस्तू, सिसरो, चर्च के पादरियों, सेण्ट ऑगस्टाइन जैसे विचारकों के कानून पर विचारों को एकत्रित करके उन्हें एक नई दिशा दी। उसने एक तर्क-क्रम के द्वारा कानूनों का वर्गीकरण करके कानूनों को चार भागों – शाश्वत, प्राकृतिक, मानवीय तथा दैवीय में बाँटा है। एक्विनास के कानून सम्बन्धी विचारों को जानने के लिए कानून की आधुनिक व पूर्ववर्ती अवधारणाओं को समझना आवश्यक है।

कानून की परिभाषा (Definition of Law)

आधुनिक विचारकों के अनुसार कानून सम्प्रभु का आदेश है। कानून एक ऐसा सकारात्मक विचार है जो उन कार्यों को बाध्यकारी बना देता है, जो पहले बाध्यकारी नहीं थे। पूर्ववर्ती यूनानी विचारकों के अनुसार कानून विवेक या बुद्धि का परिणाम है। एक्विनास ने कानून की यूनानी व रोमन विचारधाराओं को समन्वित करके अपना कानून का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। एक्विनास ने कानून की मध्ययुगीन विचारधारा को और अधिक व्यापक बना दिया है। एक्विनास के अनुसार कानून पूरे विश्व पर लागू होता है। यह एक ऐसी वस्तु होती है जो मानवीय सम्बन्धों का नियमन करने के साधन की अपेक्षा अपने कार्यक्षेत्र में व्यापक है। एक्विनास ने अपनी धारणा को विश्वव्यापी रूप देने का प्रयास किया है। उसने मानवीय कानून को दैवीय कानून से जोड़कर मानवीय विवेक को दैवी विवेक का अंग माना है। उसने मानवीय कानून और दैवीय कानून के बीच अनश्वर एकता को स्वीकार किया है। उसने कानून को परिभाषित करते हुए कहा है—'कानून लोक-कल्याण के लिए विवेक का अध्यादेश है जो उस व्यक्ति द्वारा बनाया, घोषित और लागू किया जाता है जिसे समाज की चिन्ता है।' अर्थात् कानून बनाने और उसे लागू करने का अधिकार ऐसे व्यक्ति के हाथ में रहता है जिन्हें लोक कल्याण की चिन्ता है। एक्विनास के मतानुसार—'कानून एक विशेष नियम अथवा कार्यों का मापदण्ड है जिसके आधार पर किसी को कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है अथवा कार्य करने से रोक दिया जाता है।' इसका अर्थ यह है कि ऐसा कानून जो विवेकपूर्ण और सामान्य हित के उद्देश्य से प्रेरित नहीं है तो वह सच्चा कानून नहीं है।

कानून के प्रकार (Types of Law)

एक्विनास ने कानून को चार भागों में बाँटा है—

1. शाश्वत कानून (Eternal Law),
2. प्राकृतिक कानून (Natural Law),
3. दैवी कानून (Divine Law),
4. मानवीय कानून (Human Law)

एक्विनास ने वर्गीकरण की इस श्रृंखला में शाश्वत कानून को शीर्ष स्थान पर रखा है। प्राकृतिक कानून तथा दैवीय कानून का मानव के भौतिक जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। मानवीय कानून ही मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन से जुड़ा हुआ है। इन चारों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

1. **शाश्वत कानून** (External Law)—यह कानून ईश्वरीय विवेक पर आधारित होते हैं जिनके द्वारा ईश्वर एक पूर्व निश्चित योजना के आधार पर विश्व पर शासन करता है। शाश्वत कानून ईश्वरीय विवेक से निकली हुई ईश्वरीय इच्छाएँ हैं। इसी कानून के द्वारा सृष्टि का संचालन होता है तथा आकाश और पृथ्वी तथा चेतन और अचेतन सभी पदार्थ शाश्वत कानून से नियन्त्रित व निर्देशित होते हैं। यह कानून बुद्धिगम्य तथा बुद्धिगम्य दोनों प्रकार के जगत् में अलग-अलग तरीके से कार्य करता है। शाश्वत कानून का स्वभाव विश्वव्यापी है। इस धरती पर विद्यमान सभी कानूनों का स्रोत शाश्वत कानून ही है। विवेकशील प्राणी शाश्वत कानून के अनुसार ही आचरण करते हैं। एक्विनास के अनुसार शाश्वत कानून का निर्माण उसी समय हुआ जिस समय ईश्वर के मन का निर्माण हुआ। ईश्वर की समस्त सृष्टि शाश्वत कानून के अधीन है। उस सृष्टि के सभी भाग उसके प्रभाव को ग्रहण करने में समर्थ होने के कारण उसके हिस्सेदार हैं। यह कानून प्राप्ति कर सकने योग्य कार्यों तथा उद्देश्यों को करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। एक विवेकी व्यक्ति अविवेकी व्यक्ति की तुलना में शाश्वत कानून को जल्दी समझ लेता है। सीमित बुद्धि के कारण शाश्वत कानून का आभास करना कठिन होता है। इसका आभास प्राकृतिक कानून के रूप में ईश्वर करा देता है। यह कानून ईश्वर में अनन्तकाल से दैवी विवेक के रूप में विद्यमान रहा हैं यह एक सुनिश्चित कानून नहीं है क्योंकि उसका निर्माण विशिष्ट समय पर नहीं हुआ है। यह स्वयं निर्मित तथा स्वयं प्रवर्तित है। यह ईश्वर का अमर कानून है। ईश्वरीय या दैवीय न्याय शाश्वत कानून पर ही टिका हुआ है। इसी कानून के अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि पर अपना वर्चस्व बनाए हुए है।
2. **प्राकृतिक कानून** (Natural Law)—यह कानून मानवीय जीवनों में ईश्वरीय विवेक का प्रतिबिम्ब है। एक्विनास के मतानुसार विवेकशील प्राणी का शाश्वत कानून के अनुसार आचरण करना ही प्राकृतिक कानून है।' इन कानूनों की

TOUCH 'n PASS

सहायता से व्यक्ति अच्छे-बुरे का भेद जान सकता है। 'यह विवेकपूर्ण जीवधारियों की शाश्वत कानून में सहभागिता है।' ये कानून शाश्वत कानूनों की तुलना में अधिक स्पष्ट व बोधगम्य होते हैं। ये मौलिक रूप से सबके लिए समान होते हैं, परन्तु कुछ विशेष काल और स्थान के लिए अलग-अलग भी हो सकते हैं। ये संसार की सभी जड़ व चेतन वस्तुओं में समान रूप से व्याप्त होते हैं। चेतन पदार्थों में इनकी अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है, जबकि अचेतन पदार्थों में अस्पष्ट होती है। चूँकि मनुष्य की तर्क-बुद्धि अपूर्ण होती है। इसलिए मनुष्य का मार्ग निर्देशन करने व विनियमन करने के लिए यह कानून पर्याप्त नहीं है। इस कानून की भी शाश्वत कानून की तरह प्रमुख विशेषता यह है कि यह कानून सकारात्मक कानून नहीं है तथा इसके नियम भी सर्वांगीण नहीं हैं। प्राकृतिक कानून सभी विवेकपूर्ण प्राणियों में समाज कल्याण की भावना ही भरता है। इसकी अन्त:वस्तु का विस्तार उन वस्तुओं से किया जा सकता है जो केवल मानव-कल्याण में योगदान देती है। यह मनुष्य की अनेक स्वाभाविक इच्छाओं-आत्मरक्षा, यौन-सन्तुष्टि, सन्तानोत्पादन, परोपकार आदि की सन्तुष्टि करता है। यह मनुष्य में सामाजिकता का गुण पैदा करता है। यह मानव प्राणियों में सत्य की खोज करने और तर्कबुद्धि से विकसित करने की इच्छा पैदा करता है। इस प्रकार एक्विनास का प्राकृतिक कानून व्यापक आयाम धारण कर लेता है।

3. **दैवीय कानून** (Divine Law)—एक्विनास का मानना है कि मनुष्य का मार्ग-दर्शन करने के लिए अधिक व्यापक कानून का होना जरूरी है। ऐसा कानून दैवीय कानून ही हो सकता है। यह एक ऐसा सकारात्मक कानून है जो प्राकृतिक कानून की कमी को पूरा करता है। संतों अथवा बाइबल के माध्यम से प्रकट की गई ईश्वर की वाणी ही दैवीय कानून है। दैवी कानून मानव तर्क-बुद्धि की खोज की बजाय ईश्वर के अनुग्रह का उपहार है। यह मनुष्य को परम-सुख (मोक्ष) की प्राप्ति कराता है। प्राकृतिक कानून तो सभी के लिए समान होता है लेकिन दैवीय-कानून का ज्ञान ईश्वर के कृपापात्रों को ही प्राप्त होता है। एक्विनास के मतानुसार—'दैवी कानून ईश्वर की इच्छा के आदेशों की प्रणाली है जिसे प्रकाशन (Revelation) द्वारा मनुष्यों तक पहुँचाया जाता है।' यह सहज विवेक की खोज होने के अतिरिक्त ईश्वरीय कृपा की देन है। एक्विनास के अनुसार विवेक और प्रकाशन में कोई अन्तर नहीं है। प्रकाशना विवेक की वृद्धि ही करती है, विनाश नहीं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। कानून रूपी इमारत का आधार विवेक है तथा शिखर प्रकाशना है। दैवीय कानून ईश्वरीय इच्छा के आदेशों का संसार के सामने प्रकटकरण है जिसका पालन चर्च द्वारा किया जाता है। इनके पालन का आधार मानव की आस्था है, विवेक नहीं। ये बाध्यकारी शक्ति से युक्त नहीं है। ईश्वरीय रचना होने के कारण ये मानवीय कानून से श्रेष्ठ है।

4. **मानवीय कानून** (Human Law)—इसकी उत्पत्ति प्राकृतिक कानून से होती है। यह कानून उसी समय तक वैध है, जब तक यह प्राकृतिक कानून के अनुसार रहे। एक्विनास के मतानुसार—'मानवीय कानून मनुष्यों के आचरण का नियमन करने के लिए नियमों की वह प्रणाली है जिसको प्राकृतिक कानून के सिद्धान्तों से मानव-विवेक द्वारा क्रियान्वित किया जाता है।' उसके अनुसार मानवीय कानून प्राकृतिक कानून का बुद्धिसंगत परिणाम है। यह प्राकृतिक कानून का उप-सिद्धान्त है। 'मानवीय कानून प्राकृतिक कानून ही है जिसके द्वारा मानवीय विवेक की युक्तिपरक व्यवस्था द्वारा इसे सांसारिक मामलों में सक्रिय बनाया जाता है।' यह मानवीय इच्छा पर आधारित होता है। ये मनुष्य द्वारा समाज में शान्तिपूर्ण जीवन बनाए रखने के लिए बनाई गई दण्ड व्यवस्थाएँ हैं जिनके भय से समाज में शान्ति बनी रहती है। ये प्राकृतिक कानून के पूरक होते हैं। प्राकृतिक कानूनों की अस्पष्टता तथा अपरिभाषिता के कारण इसकी आवश्यकता पड़ती है। दण्डात्मक शक्ति के कारण ये कानून प्राकृतिक कानूनों से अधिक प्रभावी रहते हैं। एक्विनास ने मानवीय कानून को दो भागों - राष्ट्रों का कानून (Jus Gentium) और नागरिक कानून (Jus Civile) में बाँटा है। एक्विनास ने नागरिक कानून को परिभाषित करते हुए कहा है—'यह सबके हित के लिए मानव-तर्कबुद्धि का अध्यादेश है, जिसे ऐसे व्यक्ति ने जारी किया है जो समुदाय की देखभाल करता है।' मानवीय कानून के कुछ प्रमुख कारण हैं जिनके आधार पर इसे अच्छी तरह से समझा जा सकता है—

(i) ये विवेक पर आधारित उदघोषणाएँ हैं।

(ii) ये सार्वजनिक कल्याण से सरोकार रखते हैं।

TOUCH 'n PASS

(iii) ये सकारात्मक होते हैं।
(iv) इनके पीछे सार्वजनिक मान्यता तथा सार्वजनिक सहमति होती है।
(v) इनमें दण्डात्मक शक्ति होती है।
(vi) ये प्राकृतिक कानून के अनुकूल होते हैं।
(vii) इनका सम्बन्ध लौकिक संसार से होता है, पारलौकिक से नहीं।

एक्विनास का कहना है कि नागरिक कानून ही मानवीय कानून होता है। इसके ऊपर कुछ सीमाएँ भी हैं—

1. यह कानून प्राकृतिक कानून के अनुरूप होना चाहिए। नागरिक इसका पालन उसी समय तक करेंगे जब तक यह प्राकृतिक कानून के अनुसार रहेगा।
2. इसे मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन से दूर रहना चाहिए। यह मनुष्य के समूचे जीवन से सम्बन्धित नहीं होता। इसलिए यह मनुष्य की पूर्ण निष्ठा का दावा नहीं कर सकता।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. सेण्ट ऑगस्टाइन का जन्म कहाँ हुआ था?
(क) अल्जीरिया (ख) लीबिया
(ग) बोत्सवाना (घ) माली
उत्तर (क) अल्जीरिया

प्र.2. The City of God नामक पुस्तक की रचना किसने की?
(क) सेण्ट थॉमस एक्विनास (ख) ऑगस्टाइन
(ग) थ्रेसीमेकस (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) ऑगस्टाइन

प्र.3. थॉमस एक्विनास किस देश का विचारक था?
(क) इटली (ख) ग्रीस
(ग) ऑस्ट्रिया (घ) स्लोवाकिया
उत्तर (क) इटली

प्र.4. मध्य युग के अरस्तू के रूप में किसे जाना जाता है?
(क) सेण्ट एक्विनास (ख) ऑगस्टाइन
(ग) मैकियावेली (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) सेण्ट एक्विनास

प्र.5. सेबाइन ने किस रचना को 'विचारों की खान' (A mine of Ideas) कहा है?
(क) Summa Theologica (ख) The Rule of Princess
(ग) The City of God (घ) Confessions
उत्तर (ग) The City of God

प्र.6. The City of God (ईश्वर की नगरी) नामक पुस्तक में कितने खंड हैं?
(क) 12 खण्ड (ख) 22 खण्ड
(ग) 20 खण्ड (घ) 24 खण्ड
उत्तर (ख) 22 खण्ड

प्र.7. निम्नलिखित में से 'थॉमस एक्विनास' द्वारा रचित ग्रंथ नहीं है–
(क) 'ऑन किंगशिप' (On Kingship)
(ख) 'रूल ऑफ प्रिन्सेस' (Rule of Princess)

TOUCH 'n' PASS

(ग) 'सुम्मा थियोलोजिका' (Summa Theologica)
(घ) 'ईश्वर की नगरी' (The City of God)

उत्तर (घ) 'ईश्वर की नगरी' (The City of God)

प्र.8. 'ऑगस्टाइन' को किसका सम्मिश्रण माना जाता है?
(क) प्लेटो तथा ईसाइयत विचारधारा का (ख) प्लेटो तथा यहूदी विचारधारा का
(ग) प्लेटो तथा इस्लाम विचारधारा का (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) प्लेटो तथा ईसाइयत विचारधारा का

प्र.9. महान दार्शनिक सेण्ट थॉमस एक्विनास का जन्म कब हुआ था?
(क) 1244 ई० (ख) 1225 ई०
(ग) 1354 ई० (घ) 1274 ई०

उत्तर (ख) 1225 ई०

प्र.10. 16वीं शताब्दी में 'डाक्टर ऑफ द चर्च' (Doctor of the Church) की उपाधि से किसे सम्मानित किया गया?
(क) सेण्ट एक्विनास (ख) ऑगस्टाइन
(ग) हरबर्ट स्पेन्सर (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) सेण्ट एक्विनास

प्र.11. किसने चर्च और राज्य के बीच में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया है?
(क) सेण्ट एक्विनास (ख) ऑगस्टाइन
(ग) प्लेटो (घ) (क) व (ख) दोनों

उत्तर (घ) (क) व (ख) दोनों

प्र.12. एक्विनास ने कानून को कितने भागों में बाँटा है?
(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पाँच

उत्तर (ग) चार

प्र.13. एक्विनास ने मानवीय कानून को कितने भागों में बाँटा है?
(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) सात

उत्तर (क) दो

प्र.14. एक्विनास ने मानवीय कानून को दो भागों में बाँटा है, वे क्रमशः हैं–
(क) राष्ट्रों का कानून और नागरिक कानून (ख) शासकों का कानून और नागरिक कानून
(ग) राज्य का कानून और शासन का कानून (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) राष्ट्रों का कानून और नागरिक कानून

प्र.15. ''दैवी कानून ईश्वरीय इच्छा के आदेशों की व्यवस्था है, जो प्रकटीकरण के माध्यम से मानव तक प्रेषित किया गया है।'' यह कथन किसका है?
(क) मैकियावेली (ख) एक्विनास
(ग) ऑगस्टाइन (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) एक्विनास

प्र.16. किसका मत है कि रचना 'The City of God' 'एक विचारों की खान' है जिसे खोदकर ईसाई विचारकों ने मूल्यवान विचार निकाले।
(क) बिल ड्यूरांट (ख) डनिंग
(ग) सेबाइन (घ) गैटिल

उत्तर (ग) सेबाइन

TOUCH 'n' PASS

प्र.17. थॉमस एक्विनास को 'मास्टर ऑफ थियोलॉजी' (Master of Theology) की उपाधि कब दी गयी?
(क) 1260 ई० (ख) 1256 ई० (ग) 1274 ई० (घ) 1252 ई०
उत्तर (ख) 1256 ई०

प्र.18. किसने कहा, "एक्विनास मध्ययुग का अरस्तू था।"
(क) मैक्सी (ख) फोस्टर (ग) सेबाइन (घ) गैटिल
उत्तर (क) मैक्सी

प्र.19. ऑगस्टाइन ने ईश्वरीय नगरी के दो सद्गुणों का वर्णन किया है। ये दो सद्गुण हैं–
(क) न्याय और शान्ति (ख) राज्य और शान्ति
(ग) ईश्वरीय ज्ञान और न्याय (घ) राज्य और साहस
उत्तर (क) न्याय और शान्ति

प्र.20. ऑगस्टाइन की पुस्तक 'The City of God' में दो नगरों का चित्रण हुआ है, ये दो नगर हैं–
(क) भौतिक नगर और राजा का नगर (ख) भौतिक नगर और स्थायी नगर
(ग) स्थूल नगर और विशेष नगर (घ) मिथ्या नगर और वास्तविक नगर
उत्तर (ख) भौतिक नगर और स्थायी नगर

प्र.21. सांसारिक नगरी को 'शैतान की नगरी' कहा गया क्योंकि इसका सम्बन्ध है–
(क) मनुष्य की इच्छाओं से (ख) मनुष्य का नश्वर होना
(ग) मनुष्य की वासनाओं से (घ) मनुष्य का धर्म-विमुख होने से
उत्तर (ग) मनुष्य की वासनाओं से

प्र.22. सरकारों का वर्गीकरण एक्विनास ने जितने भागों में किया उनमें सरकार का सर्वोत्तम और निकृष्ट रूप क्रमशः है–
(क) राजतन्त्र और जनतन्त्र (ख) अभिजाततन्त्र और सर्वजनतन्त्र
(ग) निरंकुशतन्त्र और धनिकतन्त्र (घ) राजतन्त्र और अभिजाततन्त्र
उत्तर (क) राजतन्त्र और जनतन्त्र

प्र.23. राजतन्त्र का सबसे गम्भीर दोष है–
(क) राजतन्त्र पथभ्रष्ट होकर अत्याचारी शासन में बदल सकता है
(ख) इनमें शासक प्रजा हित में शासन न करके अपने हितार्थ शासन करता है
(ग) अगर इसमें लचीलापन न हो तो यह तानाशाही में परिवर्तित हो जायेगा
(घ) उपरोक्त सभी
उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

प्र.24. राजा को अत्याचारी बनने से रोकने के लिए क्या व्यवस्था होनी चाहिए?
(क) राजा को आवश्यकतानुसार नियम परिवर्तन की स्वतन्त्रता हो।
(ख) प्रत्येक राजा को अपना अलग संविधान बनाने की स्वतन्त्रता हो।
(ग) अपने राज्य अर्थात् देश के संविधान-पालन की शपथ ले।
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
उत्तर (ग) अपने राज्य अर्थात् देश के संविधान-पालन की शपथ ले।

प्र.25. एक्विनास के अनुसार राजा को संविधान-पालन की शपथ दिलाने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि–
(क) संविधान की अवहेलना करने पर राजा को गद्दी से उतारा जा सके
(ख) शपथ लेने के बाद वह शक्ति का दुरुपयोग करेगा
(ग) इससे देश में अराजकता फैलने की सम्भावना कम हो जाती है
(घ) इससे राजा अपने आप को ईश्वर का प्रतिबिम्ब मानकर शासन करता है
उत्तर (क) संविधान की अवहेलना करने पर राजा को गद्दी से उतारा जा सके

TOUCH 'n' PASS

प्र.26. मनुष्य द्वारा समाज में शान्तिपूर्ण जीवन बनाए रखने के लिए बनाई गयी दण्ड व्यवस्थाएँ किस कानून के अन्तर्गत आती हैं?

(क) शाश्वत कानून (ख) प्राकृतिक कानून
(ग) दैवीय कानून (घ) मानवीय कानून

उत्तर (घ) मानवीय कानून

प्र.27. दैवीय कानून क्या है?

(क) राजा द्वारा बनाये गये नियम
(ख) प्रजा द्वारा बनाये गये नियम
(ग) संतों अथवा ग्रंथों के माध्यम से प्रकट की गयी वाणी
(घ) ईश्वर के द्वारा बताये गये नियम

उत्तर (ग) संतों अथवा ग्रंथों के माध्यम से प्रकट की गयी वाणी

प्र.28. कौन-से कानून का आधार 'शाश्वत कानून' पर आधारित है?

(क) प्राकृतिक कानून (ख) दैवीय कानून
(ग) मानवीय कानून (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) दैवीय कानून

प्र.29. निम्न में से किस कानून के माध्यम से मनुष्य अच्छे-बुरे में भेद कर पाता है?

(क) शाश्वत कानून से (ख) प्राकृतिक कानून से
(ग) दैवीय कानून से (घ) मानवीय कानून से

उत्तर (ख) प्राकृतिक कानून से

प्र.30. ईश्वर की समस्त दृष्टि किस कानून के अधीन है?

(क) शाश्वत कानून (ख) प्राकृतिक कानून
(ग) दैवीय कानून (घ) मानवीय कानून

उत्तर (क) शाश्वत कानून

TOUCH 'n' PASS

UNIT-III

मैकियावेली और जीन बोदां

Machiavelli and Jean Bodin

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मैकियावेली के अनुसार विधि का क्या स्रोत है?
What is the source of law according to Machiavelli?
उत्तर मैकियावेली के अनुसार शासन विधि का स्रोत माना गया है।

प्र.2. राजनीति को नैतिकता से प्रथक्करण करने वाले विचारक का नाम बताइए।
Name the thinker who separated politics from ethics?
उत्तर मैकियावेली राजनीति की नैतिकता से प्रथक्करण करने वाला विचारक है।

प्र.3. ''राजा में शेर का साहस और लोमड़ी की चालाकी दोनों ही होने चाहिए।'' यह विचार किसका है?
"A prince should combine the qualities of a fox to recognize the traps and a lion to frighten the wolves." Whose thought is this?
उत्तर ''राजा में शेर का साहस और लोमड़ी की चालाकी दोनों ही होने चाहिए।'' यह मैकियावेली का विचार है।

प्र.4. 'दि प्रिन्स' पुस्तक का लेखक कौन है?
Who is the writer of the book 'the Prince'?
उत्तर 'दि प्रिन्स' पुस्तक का लेखक मैकियावेली है।

प्र.5. मैकियावेली के मानव-स्वभाव सम्बन्धी विचार क्या हैं?
What are Machiavelli's thoughts on human nature?
उत्तर मैकियावेली इस धारणा को लेकर चला है कि मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी, घोर दानवी प्रवृत्तियों वाला और दुष्ट होता है।

प्र.6. मैकियावेली ने किस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना की थी?
What type of political system did Machiavelli envision?
उत्तर मैकियावेली वह प्रथम आधुनिक राजनीतिक विचारक था जिसने एक 'प्रभुतासम्पन्न धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय राज्य की कल्पना की थी।

प्र.7. मैकियावेली की रचनाओं में किस तत्त्व की प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है?
Which element is prominent in the works of Machiavelli?
उत्तर मैकियावेली का जन्म ज्ञान और बुद्धि के पुनरोदय के काल में हुआ था और उसकी रचनाओं में पुनर्जागरण की आत्मा स्पष्ट रूप से झलकती है।

प्र.8. मैकियावेली के मानव स्वभाव सम्बन्धी दो विचार लिखिए।
Write two thoughts of Machiavelli on human nature.
उत्तर मैकियावेली के मानव स्वभाव सम्बन्धी दो विचार निम्नलिखित हैं—

1. मैकियावेली ने माना है कि मनुष्य के सामाजिक सद्गुण केवल स्वार्थ के बदले हुए रूप होते हैं, उसकी प्रेरक शक्तियाँ अहंपूर्ण और स्वार्थपूर्ण होती हैं।
2. मैकियावेली के राजदर्शन में मनुष्य अपनी अन्तर्निहित बुराइयों के कारण युग युगान्तर तक ज्यों-का-त्यों बना रहता है, केवल शक्ति और दमन द्वारा उसके स्वभावजन्य दोषों को नियन्त्रित किया जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.9. मैकियावेली ने राजनीति को धर्म तथा नैतिकता से क्यों पृथक् किया? दो बिन्दु लिखिए।
Why did Machiavelli separate politics from religion and ethics?

उत्तर मैकियावेली द्वारा राजनीति को धर्म तथा नैतिकता से पृथक् करने के दो बिन्दु (कारण) निम्नलिखित हैं—

1. मैकियावेली एक यथार्थवादी था तथा वह आदर्शवाद का पोषक नहीं था। अत: उसने राजनीति को धर्म व नैतिकता से पृथक् मानते हुए कहा कि शासक को राष्ट्रहित में किसी भी प्रकार का निर्णय करने का अधिकार है।
2. समाज का हित और राज्य की सुरक्षा का विचार मैकियावेली के लिए सर्वोपरि था। इसके लिए ही उसने धर्म और नैतिकता के सामान्य दृष्टिकोण को परिवर्तित किया।

प्र.10. नैतिकता के सम्बन्ध में मैकियावेली की क्या धारणा है?
What is Machiavelli's concept of ethics?

उत्तर मैकियावेली ने राजनीति को नैतिकता से पृथक् किया। उसने शासन के लिए नैतिकता का कोई मापदण्ड निर्धारित नहीं किया।

प्र.11. मैकियावेली ने नैतिकता को किन दो रूपों में विभाजित किया है?
Into how many parts Machiavelli divided ethics?

उत्तर मैकियावेली ने नैतिकता को निम्नलिखित दो रूपों में विभाजित किया है—(1) व्यक्तिगत नैतिकता तथा (2) जन नैतिकता।

प्र.12. जीन बोदां की सम्प्रभुता की परिभाषा लिखिए।
Write the definition of sovereignty of Jean Bodin.

उत्तर जीन बोदां के अनुसार, 'सम्प्रभुता नागरिकों और प्रजाजनों के ऊपर सर्वोच्च सत्ता है जो कानून द्वारा मर्यादित नहीं की जा सकती।'

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मैकियावेली की विचारधारा के दोषों का उल्लेख कीजिए।
Mention the demerits of Machiavelli's thoughts.

उत्तर

मैकियावेली की विचारधारा के दोष
(Demerits of Machiavelli's Thoughts)

मैकियावेली की विचारधारा में अव्यवस्था, अस्पष्टता और जटिलता के दोष तो हैं ही, उसके कुछ विचार भी त्रुटिपूर्ण हैं और उनमें असंगतियाँ भी हैं। उसके इन दोषों का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. **अध्ययन पद्धति की त्रुटियाँ**—मैकियावेली की अध्ययन पद्धति त्रुटिपूर्ण है। वह सम्पूर्ण इतिहास का अध्ययन कर उससे सही निष्कर्ष निकालने अथवा सिद्धान्तों को मुखरित करने का प्रयत्न नहीं करता। वह तो अपनी पूर्ण धारणाओं और पर्यवेक्षण के आधार पर सिद्धान्त पहले ही निश्चित कर लेता है और तब उनकी पुष्टि के लिए इतिहास से उदाहरण देता है। अत: उनके द्वारा ऐतिहासिक पद्धति को जिस रूप में अपनाया गया, वह गलत है। उसका पर्यवेक्षण और इतिहास का अध्ययन भी सीमित है, उसने इटली की तत्कालीन दशा का ही अध्ययन किया है।
2. **मानव स्वभाव सम्बन्धी दोष**—मानव स्वभाव के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण एकांगी और असंगतिपूर्ण है। मानव में गुण और दोष दोनों ही विद्यमान है किन्तु उसने मानव के दोषपूर्ण पक्ष को प्रधानता देते हुए उज्ज्वल पक्ष की अवहेलना की है। मानव स्वभाव के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण असंगतिपूर्ण भी है। यह बात कितनी दिलचस्प है कि मैकियावेली एक ओर तो कहता है कि मनुष्य सदा दुष्टता की ओर प्रवृत्त रहते हैं, दूसरी ओर वह कहता है कि राष्ट्रों के रूप में संगठित होकर मनुष्य एक ऐसे अधिकार के साथ बोल सकते हैं, जिसकी तुलना ईश्वरीय वाणी से की जा सकती है।
3. **दोहरे नैतिक मापदण्ड का प्रतिपादन**—मैकियावेली की विचारधारा का एक गम्भीर दोष यह है कि उसके द्वारा दोहरे नैतिक मापदण्ड का प्रतिपादन किया गया है–एक राजनीतिज्ञ के लिए और दूसरा नागरिक के लिए। यद्यपि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि राजनीतिज्ञ लोग साधारणतया अपने कार्यों में मैकियावेली के सिद्धान्तों का ही अनुसरण करते हैं, परन्तु इस सिद्धान्त को तो स्वीकार नहीं किया जा सकता कि 'साध्य साधनों का औचित्य है और आवश्यकता कोई कानून नहीं जानती' राज्य के हित के लिए जो लोग छल-बल से काम लेते हैं, चाहे वह तत्कालीन परिस्थितियों में कितना ही उचित क्यों न हो, लेकिन उसके कार्यों को नैतिक रूप से अनिन्दनीय नहीं कहा जा सकता। फॉक्स की यह उक्ति कि

TOUCH 'n PASS

'नैतिक रूप से जो गलत है, वह राजनीतिक रूप से कभी सही नहीं हो सकता' मैकियावेली के सिद्धान्त की अपेक्षा सत्य के कहीं अधिक निकट है।

4. **राष्ट्रीयता, सम्प्रभुता और विधि सम्बन्धी विचारों में अस्पष्टता**—मैकियावेली के राष्ट्रीयता, सम्प्रभुता और विधि सम्बन्धी विचारों में अस्पष्टता और अव्यवस्था है। वह राष्ट्रीयता या राष्ट्र राज्य की कोई परिभाषा नहीं देता। वह सम्प्रभुता की भी कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं करता। उसका विधियों का विवेचन भी सीमित है। वह केवल नागरिक विधि को ही महत्त्व देता है। ईश्वरीय या प्राकृतिक विधियों का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है।
5. **आदर्शवादिता का नितान्त अभाव**—राजनीति में यथार्थवादिता का अपना महत्त्व है, लेकिन इसके साथ ही राजनीतिक दार्शनिक से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि उसके द्वारा किसी-न-किसी रूप में आदर्श को प्रतिष्ठित किया जायेगा। चिन्तक का सार ही इसमें है कि उसके द्वारा भविष्य की चिन्ता न की जाय, लेकिन मैकियावेली में इसका नितान्त अभाव है। डॉ. मुरे लिखते हैं, 'मैकियावेली की दृष्टि स्पष्ट है, लेकिन उसमें दूरदर्शिता का अभाव है। उसने वस्तुओं को केवल यथार्थ रूप में ही देखा है, उनके आदर्श रूप की कल्पना नहीं की है....उसने छल-कपट को ही राजनीति की कला समझ लिया है।'
6. **राजनीतिशास्त्र के मूल प्रश्नों की उपेक्षा**—मैकियावेली का एक दोष राजनीतिशास्त्र के मूलभूत प्रश्नों की उपेक्षा करना है। उसने अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध दोनों ग्रन्थों प्रिंस' और 'डिस्कोर्सेज' में राज्य के स्वरूप, उद्देश्य व शासन के विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। राजा राज्य को किस प्रकार हस्तगत करे, अपनी सत्ता सुदृढ़ करने के लिए किन उपायों का आश्रय ले तथा अपने प्रदेश की वृद्धि और संरक्षण कैसे करे-शासन और व्यावहारिक राजनीति से सम्बन्धित इन बातों का तो उसने विस्तार से उल्लेख किया है, किन्तु राज्य से सम्बन्धित मूल प्रश्नों पर वह सर्वथा मौन है। इसी प्रकार गैटिल लिखते हैं कि 'मैकियावेली का राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त राज्य का सिद्धान्त होने की अपेक्षा मात्र राज्य की सुरक्षा का ही सिद्धान्त है।''

प्र.2. राजनीतिक विकास के इतिहास में मैकियावेली के स्थान की व्याख्या कीजिए।
Explain the place of Machiavelli in the history of political development.

उत्तर

राजनीतिक विकास के इतिहास में मैकियावेली का स्थान
(Place of Machiavelli in the History of Political Development)

यद्यपि मैकियावेली कोई राजनीतिक सिद्धान्तवादी नहीं था, उसकी रुचि प्रमुखतया व्यावहारिक बातों में थी और उसने राज्य की अपेक्षा शासन तन्त्र के विषय में ही अधिक लिखा है, तथापि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का जनक होने के कारण राजनीतिक विचारों के इतिहास में वह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। राजनीतिक विचार को मैकियावेली की महान् देन यह है कि उसने इस बात को अस्वीकार किया कि मानव जीवन का कोई प्राकृतिक लक्ष्य होता है और उसका जीवन दैवी या प्राकृतिक कानून से नियमित होता है। ऐसा करके उसने राज्य के प्रगतिवादी सिद्धान्त को सम्भव बनाया।

मैकियावेली का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य राजनीति को धर्म के बन्धनों से मुक्त करना है। मैकियावेली ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, उनका समकालीन राजनीतिज्ञों ने बड़ा विरोध किया। पोप सन्त पायस पंचम ने ईसाइयों के अध्ययन के लिए निषिद्ध पुस्तकों की सूची में सर्वोच्च स्थान मैकियावेली की कृतियों को दिया था और जर्मनी के शासक फ्रेडरिक महान् ने तो मैकियावेली की नीतियों का विरोध करते हुए एक पुस्तक ही लिख डाली थी किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि मैकियावेली की जिन नीतियों का उसने विरोध किया, उन्हीं का व्यावहारिक राजनीति में अनुसरण कर उसने सफलता प्राप्त की। समकालीन इटली ने भले ही मैकियावेली की बात न मानी हो, किन्तु 350 वर्ष बाद जब इटली का राष्ट्रीय आधार पर एकीकरण हो गया, तो इटैलियन काउण्ट केबूर ने लक्ष्य सिद्धि के साधनों की चर्चा करते हुए एक बार कहा था, 'हमने इटली के लिए जो कुछ किया, यदि वह अपने लिए करते, तो हम बहुत बड़े दुष्ट होते।' इटली में राष्ट्रीयता की भावना मैकियावेली के विचारों द्वारा ही जाग्रत हुई। उसे इटली का प्रथम राष्ट्रवादी और प्रथम देशभक्त कहा जा सकता है।

राजनीति विज्ञान में मैकियावेली को उसके अनैतिक सिद्धान्तों के कारण धूर्तता, मक्कारी और छल-कपट का प्रतीक माना जाता रहा है, किन्तु वास्तव में उसने अपनी पुस्तक में वे ही बातें लिखी हैं जो शासक लोग हमेशा करते रहे हैं। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने तत्कालीन राजनीतिक जीवन का यथार्थवादी दृष्टिकोण से सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए शासकों के उन कुकृत्यों को खोलकर रख दिया, जिन पर अब तक पर्दा पड़ा हुआ था। गैटिल ने उसे पहला यथार्थवादी विचारक कहा है। इस सम्बन्ध में अमेरिकन लेखक मैक्सी ने सत्य ही लिखा है, 'उसने राजनीति की नैतिकता को भ्रष्ट नहीं किया, वह तो सदियों पहले ही हो चुकी थी। किन्तु उसने जिस निर्दयी स्पष्टवादिता के साथ उच्च पदों पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों में पाये जाने वाले पवित्र कपटों के

दम्भपूर्ण ढोंग का पर्दाफाश किया, उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। उसे इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि वह सच्चा उत्साही देशभक्त तथा आधुनिक राष्ट्रीयता का एक अग्रदूत था।'

प्र.3. राज्य की उत्पत्ति तथा उसके विस्तार की आवश्यकता का उल्लेख कीजिए।
Mention the origin of the state and the need for its expansion.

उत्तर

राज्य की उत्पत्ति तथा उसके विस्तार की आवश्यकता
(Origin of State and Need for its Expansion)

यद्यपि मैकियावेली ने राज्य की उत्पत्ति पर स्पष्ट रूप से अपने विचार व्यक्त नहीं किये हैं, परन्तु फिर भी यत्र-तत्र इस विषय में उसके कुछ विचार पढ़ने को मिलते हैं। मैकियावेली राज्य को एक अस्वाभाविक संस्था मानता है और उसका विचार है कि मानव जाति के इतिहास में एक समय ऐसा भी था, जबकि न तो किसी प्रकार का समाज था और न ही राज्य और मनुष्य स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करते थे, लेकिन मानव स्वभाव मूल रूप से दुष्ट, स्वार्थी और अहंकारी होने के कारण राज्यविहीन अवस्था में व्यक्ति परस्पर संघर्ष करने और एक-दूसरे की सम्पत्ति को जीतने की चेष्टा करने लगे। ऐसी अवस्था से परेशान होकर लोगों ने एक ऐसे व्यक्ति को अपना शासक बनाना निश्चित किया, जो उनके धन-जन की रक्षा कर सके तथा समाज को सुख और सुविधा प्रदान कर सके। इस प्रकार मैकियावेली राज्य की उत्पत्ति में संविदा सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, लेकिन इसके साथ ही राज्य के उदय में शक्ति को महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानता है। वस्तुत: राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मैकियावेली के विचार हॉब्स से साम्यता रखते हैं।

राज्य के विस्तार की आवश्यकता—राज्य के निरन्तर विस्तृत होते रहने की आवश्यकता बताते हुए मैकियावेली ने एक बार पुन: मानव स्वभाव की चर्चा की है। वह कहता है कि मनुष्य का स्वभाव पारे की भाँति होता है, वह निरन्तर बढ़ते रहना चाहता है। उसी प्रकार वैभव और व्यवस्था है, तो राज्य को भी बढ़ना चाहिए। जो राज्य इस सिद्धान्त का पालन नहीं करता, वह स्थिर नहीं रह सकता है। इस सम्बन्ध में वह रोमन साम्राज्य के पतन का उदाहरण देते हुए बताता है कि उसके पतन का एक कारण उसका सदैव एक-समान बने रहना था, रोमन साम्राज्य के शासकों ने उसके विस्तार की चेष्टा नहीं की। अत: 'प्रिंस' तथा अपने दूसरे ग्रन्थ 'डिस्कोर्सेज' में वह इस बात पर बल देता है कि राज्य अधिकृत प्रदेश को निरन्तर बढ़ाते रहने की आवश्यकता है, विशेष रूप से उस समय तो अवश्य ही ऐसा होना चाहिए, जब केन्द्रीय राजसत्ता को अपने ही राज्य के किसी भाग को अपने अन्तर्गत लाना हो। वस्तुत: मैकियावेली का इटली के एकीकरण का जो लक्ष्य था उसे दृष्टि में रखते हुए ही उसके द्वारा इस प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं।

प्र.4. राज्यों का वर्गीकरण और विभिन्न राज्य व्यवस्थाओं को संक्षेप में लिखिए।
Write briefly the classification of states and the various state systems.

उत्तर

राज्यों का वर्गीकरण और विभिन्न राज्य व्यवस्थाएँ
(Classification of States and theVarious State Systems)

मैकियावेली ने अपनी पुस्तक 'प्रिंस' में यत्र-तत्र फ्रांस, स्पेन तथा इंग्लैण्ड के सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राजतन्त्रों की प्रशंसा की है और यह इच्छा व्यक्त की है कि इटली में भी सुदृढ़ राजतन्त्र स्थापित हो, जिसके द्वारा सभी नैतिक बन्धनों से ऊपर उठकर इटली की एकता स्थापित करने और उसे शक्तिशाली बनाने का कार्य किया जा सके। उक्त पुस्तक के आधार पर यह नहीं सोचा जाना चाहिए कि मैकियावेली राजतन्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ शासन व्यवस्था मानता था। उसने इटली के लिए राजतन्त्र को आदर्श के कारण नहीं, वरन् तत्कालीन परिस्थितियों के कारण अपनाने का पक्ष ग्रहण किया है। गणतन्त्र की अपेक्षा राजतन्त्र को ही इटली के लिए उपयुक्त मानने के उसने तीन कारण दिये हैं। ये इस प्रकार हैं—(1) लोगों का भ्रष्ट चरित्र, (2) राज्य में सम्पत्ति की असमानता, और (3) इटली की तत्कालीन व्यवस्था।

वास्तव में, वह राजतन्त्र को सर्वश्रेष्ठ शासन व्यवस्था नहीं मानता, यह बात 'डिस्कोर्सेज' में उसके द्वारा किये गये राज्यों के वर्गीकरण तथा उसके गुण-दोषों के विवेचन से स्पष्ट हो जाती है। राज्यों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में वह अरस्तू का अनुकरण करता है और राज्यों के नाम पर शासन प्रणालियों का वर्गीकरण प्रस्तुत करता है। उसके मतानुसार शासन प्रणालियों के तीन मुख्य भेद हैं—(1) राजतन्त्र (Monarchy), (2) कुलीनतन्त्र (Aristocracy), (3) संवैधानिक प्रजातन्त्र (Constitutional Democracy)।

इसके तीन विकृत रूप क्रमश: ये हैं—(1) तानाशाही (Tyranny), (2) धनिकतन्त्र या वर्गतन्त्र (Oligarchy), (3) प्रजातन्त्र (Democracy)।

TOUCH 'n PASS

मैकियावेली मानता है कि राजतन्त्र या गणतन्त्र, इनमें से कोई भी शासन व्यवस्था सभी परिस्थितियों के लिए ठीक नहीं है। वह आदर्श शासन व्यवस्था गणतन्त्र को मानता है, किन्तु चूँकि मानव स्वभाव के कारण सभी परिस्थितियों में इसे अपनाना सम्भव नहीं है, इसलिए वह कुछ विशेष परिस्थितियों में राजतन्त्र की ओर झुक जाता है।

प्र.5. जीन बोदां के द्वारा सम्प्रभुता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the characteristics of sovereignty given by Jean Bodin.

उत्तर

बोदां के अनुसार सम्प्रभुता की विशेषताएँ
(Characteristics of Sovereignty According to Bodin)

बोदां के द्वारा सम्प्रभुता की जो विवेचना की गयी है, उसके अनुसार सम्प्रभुता के प्रमुख रूप से तीन लक्षण बताये जा सकते हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

1. **सम्प्रभुता सर्वोच्च एवं निरपेक्ष शक्ति** (Supreme and Absolute Power)—बोदां के द्वारा सर्वप्रथम सम्प्रभुता की सर्वोच्चता और सम्प्रभुता पर बल दिया गया है। यह सर्वोच्च शक्ति सभी के लिए कानूनों का निर्माण करती है, पर स्वयं किसी से आदेश प्राप्त नहीं करती। स्वयं बोदां के शब्दों में, 'सम्प्रभुता का सबसे बड़ा विशेषाधिकार तो इस बात में है कि यह न केवल व्यक्तियों के लिए वरन् समस्त जनता के लिए बिना उनकी सम्मति के ही कानून प्रदान करती है।' वह इन कानूनों के निर्माण में न तो अपने से श्रेष्ठ लोगों से और न ही बराबर वाले या छोटों से ही अनुमति प्राप्त करती है। अगर सम्प्रभु अपने से श्रेष्ठ लोगों से समर्थन प्राप्त करता है, तो राजा स्वयं प्रजा बन जाता है, अगर वह बराबरी के लोगों से समर्थन प्राप्त करता है तो अन्य लोग उसकी सत्ता के भागीदार बन जाते हैं और अगर वह सीनेट के सदस्यों जैसे अपने से निम्न लोगों का समर्थन प्राप्त करता है, तब तो वह सम्प्रभु शक्ति से ही वंचित हो जाता है।
   सम्प्रभुता की सर्वोच्चता और निरपेक्षता को स्पष्ट करने के लिए वह सम्प्रभु द्वारा किये जाने वाले कुछ कार्यों का भी उल्लेख करता है। सम्प्रभु युद्ध की घोषणा करता है, शान्ति की स्थापना करता है और जो चीज कानून की परिधि से बाहर मालूम होती है, उसे भी अपने कानून द्वारा नियन्त्रित और पूर्ण करता है। उसे ऊँचे-से-ऊँचे प्रशासक की अपील सुनने का परमाधिकार प्राप्त है। प्रशासकों को अधिकार प्रदान करने और जब चाहे तब उनसे इस अधिकार को छीनने, करों से मुक्त करने, अन्य प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करने, विधियों की मर्यादा से उन्मुक्त करने, जीवन और मरण पर शक्ति का संचालन करने, सिक्के के नाम, स्वरूप और मूल्य निर्धारित करने, आदि से सम्बन्धित सभी कार्य सम्प्रभु के ही हैं।
2. **सम्प्रभुता, एक सतत् या स्थायी शक्ति** (Perpetual Power)—बोदां के अनुसार सम्प्रभुता का दूसरा लक्षण उसकी सतत्ता या निरन्तरता है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य की प्रभुत्व शक्ति के ऊपर समय की कोई मर्यादा नहीं है। शक्ति चाहे किसी एक को प्रदान की जाये और चाहे बहुतों को एक साथ प्रदान की जाये, वह समूचे रूप में सदा के लिए प्रदान की जानी चाहिए, अन्यथा वह सम्प्रभुता नहीं रह जाती। यदि राज्य में किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह को किसी निश्चित काल के लिए सम्प्रभु शक्ति प्रदान की जाती है, तो उसे सम्प्रभु नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए, एक रीजेण्ट या वायसराय कितनी भी शक्ति का प्रयोग करें, उन्हें सम्प्रभू नहीं, वरन् सत्ता के अभिरक्षक (Custodian) ही कहा जा सकता है।
3. **सम्प्रभुता, वैधानिक मर्यादाओं से परे** (Unresrained by Laws)—बोदां के अनुसार सम्प्रभुता का एक प्रमुख लक्षण विधि द्वारा अनियन्त्रित होना है। राज्य में कानून का एकमात्र स्रोत सम्प्रभु ही है और इसलिए वह कानून से ऊपर है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि बोदां के अनुसार सम्प्रभु उन कानूनों से ऊपर नहीं है, जिनका निर्माण वह स्वयं नहीं करता यथा प्राकृतिक कानून, दैवी कानून और राष्ट्रों के कानून।

सम्प्रभु केवल उन नागरिक अथवा विधेयात्मक कानूनों के ऊपर है, जिनका निर्माण स्वयं उसने ही किया है। इस दृष्टि से सम्प्रभु अपने पूर्ववर्ती सम्प्रभु के द्वारा निर्मित कानूनों से भी नियन्त्रित नहीं है, वह उनमें परिवर्तन कर सकता है या उनकी उपेक्षा कर सकता है। यहाँ तक कि वह जनता के परम्परागत कानूनों से भी बाध्य नहीं है। उसे यह भी शक्ति प्राप्त है कि वह विविध परम्पराओं को स्वीकृति प्रदान करे अथवा नहीं। बोदां के अनुसार, 'सम्प्रभुता द्वारा अधिनियमित कानून जन-परम्परा को परिवर्तित कर सकते हैं, न कि जन परम्पराएं अधिनियमों को।'

सम्प्रभु नागरिकों और प्रजाजनों दोनों पर शासन करता है और उसकी शक्ति पर पार्लियामेण्ट या जनता द्वारा भी कोई मर्यादा नहीं लगायी जा सकती है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. बोदां के अनुसार सम्प्रभुता की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the limitations of sovereignty according to Bodin.

उत्तर

बोदां के अनुसार सम्प्रभुता की सीमाएँ
(Limitations of Sovereignty According to Bodin)

बोदां के द्वारा सम्प्रभुता को 'कानून द्वारा अबाधित सर्वोच्च शक्ति कहा गया है और उससे ऐसा आभास होता है कि बोदां की सम्प्रभुता की कोई सीमा नहीं है, किन्तु वस्तुत: ऐसा नहीं है। बोदां ने जहाँ एक ओर सम्प्रभु की शक्ति को सर्वोच्च एवं निरपेक्ष बनाने का प्रयत्न किया है, वहाँ दूसरी ओर उसकी सम्प्रभुता पर अंकुश लगाने की भी चेष्टा की है। बोदां की सम्प्रभुता की कुछ सीमाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **प्राकृतिक और दैवीय विधि**—सम्प्रभु की शक्ति पर प्रथम और सर्वप्रमुख प्रतिबन्ध दैवी तथा प्राकृतिक नियमों का है और राजा सर्वशक्तिमान होते हुए भी इनका उल्लंघन नहीं कर सकता। स्वयं बोदां के शब्दों में, 'कानून की बाध्यकारी शक्ति से प्रभुसत्ता के स्वतन्त्र होने के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, उसका ईश्वरीय या प्राकृतिक कानून से कोई सम्बन्ध नहीं है।' उसके अनुसार यद्यपि सम्प्रभु शासक सर्वोच्च एवं निरंकुश होता है और उसकी इच्छा ही कानून होती है, फिर भी वह ईश्वर और प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। यदि वह ऐसा करे तो उसके राज्य में और चोर-डाकुओं के गिरोह में कोई भी अन्तर नहीं रह जाएगा। दैवी तथा प्राकृतिक कानून से बोदां का अभिप्राय न्याय, सत्य, ईमानदारी, आदि नैतिकता के नियमों से था जो ईश्वर के विवेक की उपज हैं और जो मानव को मानव बनाते हैं। बोदां के द्वारा सम्प्रभु की शक्ति पर यह मर्यादा इस मान्यता के आधार पर लगायी गयी है कि दैवी तथा प्राकृतिक कानून का पालन करने में ही राष्ट्र का कल्याण निहित है।
2. **संवैधानिक कानून**—बोदां का विचार है कि सम्प्रभु राज्य के संवैधानिक कानून के विरुद्ध भी आचरण नहीं कर सकता है। इस दृष्टि से सम्प्रभु राज्य के किसी भाग को हस्तान्तरित नहीं कर सकता और न ही वह सम्प्रभु के उत्तराधिकार सम्बन्धी कानूनों को बदल सकता है, क्योंकि इन कानूनों को स्वयं उसने नहीं बनाया है। उदाहरण के लिए, फ्रांस का कोई भी राजा फ्रांस के राजसिंहासन पर उत्तराधिकार के नियम में परिवर्तन नहीं कर सकता, जो सैनिक कानून (Salic Law) के अनुसार निर्धारित होता है। इस कानून के अनुसार, ज्येष्ठतम पुत्र ही राजसिंहासन का उत्तराधिकारी होता था और स्त्रियां भू-सम्पत्ति के अधिकार से वंचित थीं।
3. **राष्ट्रों के कानून** (Law of Nations)—राष्ट्रों के कानून से अभिप्राय उन कानूनों से है जो सम्प्रभु शासकों के पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन करते हैं। सम्प्रभु अन्य राज्यों के साथ अपने व्यवहार में इन नियमों का पालन करने के लिए बाध्य है। एक सम्प्रभु दूसरे सम्प्रभु के साथ जो सन्धियां और समझौते करता है और राज्यों के आपसी सम्बन्धों का संचालन करने के लिए जो अन्तर्राष्ट्रीय नियम हैं, सम्प्रभु के लिए उनका पालन करना आवश्यक है।
4. **नागरिकों का निजी सम्पत्ति का अधिकार**—सम्प्रभु की शक्ति की एक अन्य मर्यादा है—नागरिकों का निजी सम्पत्ति का अधिकार। निजी सम्पत्ति परिवार की पवित्र तथा नैतिक संस्था है और बोदां उसे व्यक्तियों के प्राकृतिक अधिकार के रूप में स्वीकार करता है। बोदां का कथन है कि राज्य का निर्माण परिवारों तथा उनके सामूहिक स्वामित्व के आधार पर होता है और यदि सम्प्रभु निजी सम्पत्ति पर प्रहार करता है तो यह राज्य के ही मूल आधार परिवार पर आघात होगा। अत: सम्प्रभु पर्याप्त न्यायोचित आधार के बिना न तो किसी की सम्पत्ति छीन सकता है और न अन्य किसी को हस्तान्तरित कर सकता है। बोदां के अनुसार सामान्य परिस्थितियों में सम्प्रभु प्रजाजन की सहमति के बिना उन पर प्रत्यक्ष कर भी नहीं लगा सकता है। यह जनता के तीन वर्गों के प्रतिनिधियों की सभा (Estates General) के परामर्श और स्वीकृति से ही कोई कर लगा सकता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी सम्प्रभु अपने प्रजाजन के नैतिक और धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। उसे कानूनों में बार-बार परिवर्तन भी नहीं करना चाहिए, यद्यपि उसे ऐसा करने का कानूनी अधिकार प्राप्त है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. ''यह प्रतिभाशाली फ्लोरेंसवासी पूरे अर्थ में अपने युग का शिशु था।'' (डनिंग) इस कथन का परीक्षण कीजिए।
"The brilliant florentive was in the fullest sense, the child of his times." (Dunning) Justify this statement.

उत्तर साधारणतया प्रत्येक दार्शनिक और राजनीतिज्ञ के दर्शन और नीतियों पर उसके देशकाल की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता ही है, परन्तु मैकियावेली पर अपने समकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक वातावरण की छाप सबसे अधिक

सुस्पष्ट रूप से अंकित है। उस पर प्रो. डनिंग का यह कथन अक्षरश: लागू होता है कि 'यह प्रतिभासम्पन्न फ्लोरेंसवासी वास्तविक अर्थों में अपने युग का शिशु था।' मैकियावेली का युग पुनर्जागरण का युग था और इसी कारण इसे पुनर्जागरण का प्रतिनिधि भी कहा जाता है। मैकियावेली अपने युग से जितना प्रभावित हुआ, उतना बहुत ही कम लेखक अपने युग से प्रभावित होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वह भिन्न परिस्थितियों में रहता, तो उसके विचार भी भिन्न होते और यह भी सच है कि यदि मैकियावेली इटली में 15वीं शताब्दी में पैदा न होता, तो उसे राजदर्शन के इतिहास में वह स्थान प्राप्त न होता, जो उसे आज प्राप्त है। मैकियावेली ही अपने युग का ऐसा व्यक्ति, दार्शनिक और पर्यवेक्षक है, जिसने समकालीन परिस्थितियों को सही और यथार्थ रूप से देखा, उस समय की सामाजिक और राजनीतिक बुराइयों का अनुभव किया और अपनी रचनाओं में उनके समाधान प्रस्तुत किये। उसकी सभी प्रमुख रचनाएँ—प्रिंस (Prince), डिस्कोर्सेज (Discourses) और युद्ध कला (The Art of War) समकालीन परिस्थितियों के विश्लेषण से परिपूर्ण हैं। सेबाइन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'उसके युग का कोई भी अन्य व्यक्ति यूरोप के राजनीतिक विकास की दिशा को इतनी स्पष्टता के साथ नहीं देख सका, जितनी स्पष्टता के साथ इसे मैकियावेली ने देखा था.....कोई भी अन्य इटली को उतने अच्छे रूप में नहीं जानता था, जितना कि मैकियावेली।''

पुनर्जागरण युग की जिन बातों ने मैकियावेली पर सबसे गहरा प्रभाव डाला और उसके राजनीतिक दर्शन की रूपरेखा निर्धारित की, उनका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

1. **शक्तिशाली राजतन्त्रों की स्थापना**—16वीं सदी तक चर्च तथा राज्य की सीमित सत्ता का आन्दोलन पूर्णतया समाप्त होकर इन दोनों ही क्षेत्रों में केन्द्रीकरण प्रारम्भ हो गया था। राजतन्त्र ने सामन्तों की शक्ति एवं पोप ने कौंसिल आन्दोलन की प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं का अन्त कर दिया था। इंग्लैण्ड में हेनरी सप्तम, फ्रांस में लुई एकादश, चार्ल्स अष्टम व लुई द्वादश ने और स्पेन में फर्डिनेण्ड ने निरंकुश राजतन्त्रों की स्थापना कर ली थी। ये राज्य सबल शासकों के नेतृत्व में दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली और समृद्धशाली हो रहे थे। वास्तव में यह युग सबल राजतन्त्र का युग था। मैकियावेली की रचनाओं में इस आदर्श का पर्याप्त प्रमाण मिलता है। उसने इटली के लिए एक ऐसे शासन की कल्पना की थी, जिसमें इटली की समस्त राजनीतिक शक्ति का केन्द्रीकरण हो तथा जो इटली में एकता स्थापित कर सबल राजतन्त्र की स्थापना कर सके। उसने अपने 'प्रिंस' और 'डिस्कोर्सेज' (Discourses) में इसी विचार को निरन्तर अभिव्यक्ति प्रदान की है।
2. **राष्ट्रीयता की भावना**—इस समय तक इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा स्पेन में राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी। इन राष्ट्रों के निवासियों ने स्वयं में एकता की भावना अपना ली थी और वे अपने आपको दूसरे राष्ट्रों के निवासियों से पृथक समझने लगे थे। इन शक्तिशाली राज्यों की तुलना में इटली पाँच राज्यों में बँटा हुआ था दक्षिण में नेपल्स का राज्य था, मध्य इटली में रोमन चर्च प्रदेश, मीलान की डची, वेनिस और फ्लोरेंस के गणराज्य थे। ये राज्य परस्पर युद्ध लड़ते रहते थे। पोप उनके संघर्ष से लाभ उठाने का प्रयत्न करते थे और वे कभी फ्रांस और कभी स्पेन को, इटालियन राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। इस प्रकार इटली में फूट, गृहयुद्ध और विदेशी व्यक्तियों का शासन चल रहा था। मैकियावेली एक उच्च देशभक्त था और इस सम्बन्ध में उसे फ्रांस का प्रत्यक्ष अनुभव था। अत: वह फ्रांस की भाँति शक्तिशाली राष्ट्रीय राजा की अध्यक्षता में इन राज्यों का एकीकरण करना चाहता था। मैकियावेली की सभी रचनाएँ इटली की फूट, गृहयुद्ध और विदेशी शासकों के हस्तक्षेप की परिस्थितियों तथा इटली के एकीकरण की इच्छा से ओत-प्रोत हैं।
3. **पुनर्जागरण** (Renaissance)—मैकियावेली का जन्म ज्ञान और बुद्धि के पुनरोदय के काल में हुआ था और उसकी रचनाओं में पुनर्जागरण की आत्मा स्पष्ट रूप से झलकती है। पुनर्जागरण के काल में साहित्य, कला दर्शन, राजनीति एवं विज्ञान के क्षेत्र में मध्य युग के आदर्शों का अन्त हो रहा था एवं यूनान तथा रोम के प्राचीन आदर्शों में लोगों की आस्था बढ़ रही थी। राजनीतिक क्षेत्र में सामन्तवाद का अन्त होकर राष्ट्रीय राज्य की स्थापना हो रही थी तथा राजनीतिक क्षेत्र में धर्म और नैतिकता, चर्च और बाइबिलवाद के प्रभाव को समाप्त किया जा रहा था। पोप की मध्यकालीन निरंकुश धार्मिक सत्ता तथा नैतिकता में लोगों का विश्वास उठ गया था और उसका स्थान बुद्धि, विवेक तथा तार्किकता ने ग्रहण कर लिया था। इस काल में व्यापार और छापाखाने की कला तथा यातायात के साधनों के विकास ने नये जीवन, नयी चेतना, नये दृष्टिकोण, स्वतन्त्रता की नयी भावना और जीवन के नवीन मूल्यों को जन्म दिया था। सभी सीमाओं और प्रतिबन्धों से मुक्त स्वच्छन्द बौद्धिक भ्रमण इस युग की विशेषता थी।

   फ्लोरेंस इस नवीन संस्कृति का केन्द्र था और मैकियावेली पूर्ण रूप से फ्लोरेंस का एक निवासी। अत: उसने अपने चिन्तन में सामन्तवाद के स्थान पर राष्ट्रवाद, राजनीति को धर्म और नैतिकता से अलग करके और राज्य के सिद्धान्तों के स्थान पर

शासन-कला का प्रतिपादन किया। पुनर्जागरण की यह धारणा मैकियावेली में घर कर गयी थी कि मानव स्वयं ही अपने जीवन का निर्माता है, 'यह विश्व विकासशील है और इसमें उन्हीं का अस्तित्त्व रहता है जो अस्तित्त्व के लिए संघर्ष करते हैं।' मैकियावेली ने राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए जो सुझाव दिये, उनमें पुनर्जागरण की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है।

4. **धर्म और नैतिकता**—15वीं सदी में पोप के विश्व साम्राज्य का स्वप्न नष्ट हो चुका था। पोप के विलासमय जीवन एवं कुकर्मों ने लोगों के हृदय में धर्म के प्रति विश्वास एवं श्रद्धा समाप्त कर दी। पोप एलेक्जेण्डर षष्ठ का उदाहरण देते हुए मैकियावेली ने लिखा है कि 'उसने जीवनभर धोखा देने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं किया है। उसी स्थिति में सेवानोराला जैसे सन्त ने चर्च के सुधार की माँग की तथा नैतिक बल से आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन का प्रयत्न किया। उसकी शिक्षाओं का लोगों पर प्रभाव भी पड़ा, किन्तु जब फ्रांस ने फ्लोरेंस पर अधिकार कर लिया, तो पोप को प्रसन्न करने के लिए सेवानोराला को बन्दी बना लिया तथा उसे जीवित जला दिया गया। राजाओं ने नैतिक आदर्शों को तिलांजलि दे दी थी और साधारण नागरिक भी नैतिकता के नियमों के अनुसार आचरण नहीं करते थे। मैकियावेली पर अपने समय की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा और तत्त्कालीन परिस्थितियों के अनुसार ही उसने नरेश को सलाह दी कि राज्य के अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए आचार तथा धर्म के सिद्धान्तों की चिन्ता नहीं की जानी चाहिए और लोक-कल्याण के लिए इन सिद्धान्तों की अवहेलना करने को तत्पर रहना चाहिए। मैकियावेली ने नरेश को छल-बल से राज्य तथा अपने शासन की रक्षा करने की खुलकर सलाह दी है। धर्म और नैतिकता विरोधी मैकियावेली की यह विचारधारा अपने युग के नितान्त अनुरूप थी, क्योंकि यूरोप के राष्ट्रीय राज्य-फ्रांस, इंग्लैण्ड और स्पेन-धर्म और नैतिकता से उदासीन होकर अपने स्वार्थों की सिद्धि कर रहे थे। अत: मैकियावेली भी इटली को पोप के प्रभाव तथा नैतिक बन्धनों से मुक्त कर एक राज्य के रूप में देखना चाहता था। उसने अपने समय में चर्च को जिस भ्रष्ट रूप में देखा था, उसके अनुरूप वह लिखता है, 'हम इटैलियन रोम के चर्च और उसके पुजारियों के कारण ही अधार्मिक और बुरे हो गये हैं। चर्च के हम एक और बात के लिए ऋणी हैं और यही बात हमारे लिए विध्वंस का कारण है कि चर्च ने हमारे देश को विभाजित रखा है और वह अब भी ऐसा कर रहा है।'
5. **मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा**—मैकियावेली ने अपने समय में विशेषत: इटली में शासक, धर्माधिकारी, सरकारी कर्मचारी और साधारण नागरिक सभी को भ्रष्ट आचरण में लिप्त देखा था। शासक और पोप के संघर्षों, पोप के षड्यन्त्रों और साधारण नागरिकों के पतित तथा स्वार्थी आचरण ने उस पर मानव स्वभाव की बहुत बुरी छाप छोड़ी और उसने यह विचार व्यक्त किया कि न तो मनुष्य में ईश्वरीय गुण हैं और न वह नैतिक प्राणी है। वह एक जानवर है और जानवरों की चालाकी तथा खूँखार प्रवृत्ति ही उसमें दिखायी देती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डनिंग का यह कथन अक्षरश: सत्य है कि 'यह प्रतिभासम्पन्न फ्लोरेंसी वास्तव में अपने युग का शिशु था।'' इसी प्रकार डब्ल्यू. टी. जोन्स ने भी लिखा है 'मैकियावेली अपने युग का श्रेष्ठ निचोड़ है।

प्र.2. राजनीतिक चिन्तन में मैकियावेली की देन की विवेचना कीजिए।

उत्तर

राजनीतिक चिन्तन में मैकियावेली की देन
(Contribution of Machiavelli in Political Thought)

राजनीतिक दर्शन में मैकियावेली को युग का शिशु कहने के साथ-साथ आधुनिक युग का जनक भी कहा जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि मैकियावेली पुनर्जागरण के शिशु हैं और पुनर्जागरण आधुनिकता का प्रारम्भ है। मैकियावेली को आधुनिक युग का जनक कहने का तात्पर्य यही है कि आधुनिक युग मैकियावेली से प्रारम्भ होता है और इस युग के प्रारम्भ होने के साथ-साथ मध्य युग का अन्त हो जाता है। राजनीतिक दृष्टि से मध्य युग की तीन विशेषताएँ थीं—सामन्तवाद, पोपतन्त्र और पवित्र रोमन साम्राज्य। मैकियावेली धार्मिक आधार पर राजनीतिक साम्राज्य का विरोधी था और दांते की भाँति उसने विश्व साम्राज्य की कल्पना नहीं की। वह तो राष्ट्रीय राज्य को ही मानव मस्तिष्क की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति मानता था, इसलिए वह इटली को एक राष्ट्रीय राज्य के रूप में विकसित होते हुए देखना चाहता था। मध्य युग के दैवी कानून में उसकी कोई आस्था नहीं थी तथा विधि-निर्माता या शासक द्वारा निर्मित कानूनों को ही वह सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोच्च मानता था। इस प्रकार मैकियावेली के विचार मध्य युग के विचारकों से अनेक विषय में भिन्न थे।

अब हम आधुनिक युग की उन विशेषताओं का अध्ययन करेंगे, जिनकी हमें सर्वप्रथम झलक मैकियावेली की विचारधारा में देखने को मिलती है और जिसके आधार पर उसे आधुनिक युग का जनक कहा जा सकता है।

1. **राष्ट्रीय राज्य का सन्देशवाहक**—आधुनिक युग के प्रारम्भ में एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन हुआ । पवित्र रोमन साम्राज्य तथा पोपतन्त्र दोनों की शक्ति तथा सम्मान कम हो गया और यूरोप में शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ। इन राजाओं ने निरंकुश राजनीतिक शक्ति अपने हाथ में ले ली तथा धर्म की सत्ता को समाप्त कर दिया। आधुनिक युग के प्रत्येक विचारक ने इस राष्ट्रीय राज्य की कल्पना का प्रतिपादन किया है और मैकियावेली उसमें सर्वप्रथम था। डॉयल (Doyle) के शब्दों में, 'मैकियावेली प्रथम विचारक था जिसने राष्ट्रीय राज्य के लक्षणों की विवेचना और विश्लेषण किया और इस राजनीतिक सावयव की धारणा को जन्म देने की चेष्टा की।' उसकी श्रेष्ठ कृति 'प्रिंस' इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है। वह अपने समय के राष्ट्रीय राज्यों–जर्मनी, स्पेन, फ्रांस और इंग्लैण्ड को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता था और उसकी समस्त राजनीतिक कृतियों का यदि कोई उद्देश्य बताया जा सकता है, तो वह इटली को राष्ट्रीय राज्य के रूप में परिणत करना ही था।
2. **राज्य की आधुनिक स्थिति का निरूपण**—आधुनिक युग का एक प्रमुख लक्षण राज्य को प्राप्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थिति है और अरस्तू के बाद मैकियावेली सबसे पहले राजनीतिक विचारक हैं, जिन्होंने राज्य की महत्त्वपूर्ण स्थिति का निरूपण किया है। मैकियावेली ने राज्य की महत्ता का इस सीमा तक प्रतिपादन किया है कि उसे एक प्रकार से साध्य ही बना दिया है। मैकियावेली ने ही सबसे पहले यह बताया कि राज्य एक ऐसी सर्वोपरि सत्ता है जिसकी अधीनता से ही अन्य सारी संस्थाएँ और संगठन फल–फूल सकते हैं। समाज की अन्य सभी छोटी–बड़ी संस्थाएँ राज्य की अधीनता में रहकर ही अपना कार्य सुरक्षित ढंग से कर सकती हैं और राज्य के हित में ही अपना हित समन्वित करके आगे बढ़ सकती हैं। वर्तमान समय में स्थिति यही है और सेबाइन मैकियावेली को इस बात का श्रेय देते हैं कि उसने 'राजनीतिक विकास की दिशा में होने वाले इस परिवर्तन को पहले से ही भाँप लिया था।'
3. **राज्य की प्रभुसत्ता का पोषक**—सम्प्रभुता के विचार को आधुनिक युग की प्रतीक धारणा कहा जा सकता है और यद्यपि मैकियावेली ने कहीं भी बोदां, ग्रोशियस, हॉब्स या ऑस्टिन की भाँति राज्य की सम्प्रभुता पर विचार नहीं किया है और न उसकी कोई परिभाषा दी है पर राज्य को उन्होंने सर्वोपरि संस्था माना है जिसकी अधीनता में सभी व्यक्ति और संस्थाएँ रहती हैं। सेबाइन के मतानुसार, 'सर्वोच्च राजनीतिक संस्था के रूप में 'राज्य' शब्द का प्रयोग आधुनिक भाषाओं में उसी की रचनाओं से शुरू हुआ। मैकियावेली के समय से ही राज्य सम्प्रभु कहा जाने लगा और बाद में सम्प्रभुता का सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिया गया।'' भले ही मैकियावेली ने 'सम्प्रभुता' शब्द का प्रयोग न किया हो, पर उन्होंने व्यवहार में राज्य की सम्प्रभुता को पूर्ण अर्थ प्रदान किये हैं। इस प्रकार मैकियावेली सिद्धान्त में न सही लेकिन व्यवहार में अवश्य ही राज्य की संप्रभुता के पोषक थे।
4. **राजनीति का धर्म और नैतिकता से पृथकत्व**—मैकियावेली को आधुनिक युग का जनक कहने का सबसे प्रमुख कारण उसके द्वारा राजनीति का धर्म और नैतिकता से किया गया पृथक्करण ही है। मध्य युग के समस्त राजनीतिक दर्शन में धर्म राजनीति पर हावी रहा और नैतिकता तथा धर्म की दुहाई देते हुए राजनीतिक संस्थाओं का विकास रोके रखा गया। मध्य युग के अन्त में राजनीति को धर्म से पृथक् करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, लेकिन किसी ने भी इस सम्बन्ध में आवश्यक साहस का परिचय नहीं दिया। मैकियावेली ने ही सर्वप्रथम निर्भीकता और स्पष्टवादिता के साथ घोषणा की कि राजनीति का धर्म और नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है और राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यकतानुसार उचित–अनुचित सभी प्रकार के साधन अपनाये जा सकते हैं। उसने इस बात का प्रतिपादन किया कि धर्म और नैतिकता व्यक्तिगत क्षेत्र में आराम से रह सकते हैं, सार्वजनिक क्षेत्र में तो उन्हें राजनीति की चेरी बनकर रहना होगा और उनका प्रयोग राजनीतिक साधन के रूप में ही किया जायेगा। इस प्रकार मैकियावेली धर्म और नैतिकता से मुक्त राजनीति का प्रणेता है और कोकर के शब्दों में, ''मैकियावेली को प्रथम आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तवेत्ता कहने का सर्वप्रमुख कारण धर्म और नैतिकता के प्रति उसकी उदासीनता और उसके द्वारा केवल लौकिक अनुभव और मानवीय विवेक को की गयी अपील है।''
5. **शक्तिवादी राजनीति के प्रणेता**—आधुनिक युग की एक विशेषता शक्तिवादी राजनीति (Power Politics) है और इस शक्तिवादी राजनीति को मैकियावेली ने ही प्रारम्भ किया है। मैकियावेली ने एक केन्द्रीय सत्ता की स्थापना पर जोर दिया है और शक्ति की सर्वोच्चता की पूजा की है। उसके अनुसार शक्ति का औचित्य स्वयं शक्ति ही है। मैक्सी के अनुसार इस सम्बन्ध में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने वाला वह प्रथम विचारक था। इसी प्रकार डोनाल्ड इटबैलजोल ने लिखा है कि 'यदि एक शब्द में मैकियावेली के चिन्तन के केन्द्रीय तत्त्व को संक्षिप्त करना सम्भव हो तो वह तत्त्व है शक्ति। उसका कैसे

निर्माण किया जाय, उसे कैसे बनाये रखा जाय और उसका विस्तार कैसे किया जाय।' आधुनिक राजनीति में जिन राजनीतिक एवं कूटनीतिक दाँव-पेच तथा छल-कपट का प्रयोग किया जाता है, औपचारिक एवं स्पष्ट रूप से इन साधनों के प्रयोग का समर्थन मैकियावेली ने ही किया।

6. **व्यक्तिवाद के समर्थक**—आधुनिक युग की एक विशेष प्रवृत्ति व्यक्तिवादी विचारधारा है। आधुनिक युग के प्रारम्भ में व्यापार, वाणिज्य और उद्योग का प्रसार हो रहा था और यह विचारधारा बल ग्रहण कर रही थी कि राज्य के द्वारा आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। मैकियावेली ने इस विचारधारा के अनुसार ही शासन को यह परामर्श दिया कि प्रजाजन के धन का किसी भी दशा में अपहरण नहीं किया जाना चाहिए तथा व्यापार और वाणिज्य के विकास के लिए सभी आवश्यक प्रयत्न किये जाने चाहिए। उसने इस प्रवृत्ति के अनुरूप ही शासक को यह परामर्श दिया कि उसे स्वयं व्यापार-वाणिज्य के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। मैकियावेली इस दृष्टि से भी व्यक्तिवाद का सन्देशवाहक है कि उसने मानवीय व्यक्तित्व को रोमन चर्च के प्रभाव से मुक्त कर उसे पुनप्रतिष्ठित करने की चेष्टा की है।
7. **भौतिकता और उपयोगिता के प्रवर्तक**—आधुनिक युग में भौतिकवाद और उपयोगितावाद का भी एक विशिष्ट स्थान है और मैकियावेली इस सम्बन्ध में भी अग्रणी है। उसने इस बात का प्रतिपादन किया है कि मानव को इहलौकिक सुख की ही कामना करनी चाहिए और उसके लिए सारा प्रयत्न किया जाना चाहिए। राज्य और प्रभुता, कला और सौन्दर्य, नारी और मदिरा-ये ही भोग के योग्य वस्तुएँ हैं। मैकियावेली का यह सुखवादी सन्देश आधुनिक मानव के लिए अत्यधिक प्रीतिकर है और इस आधार पर उसे उपयोगितावाद का प्रवर्तक कहा जा सकता है।
8. **संघ राज्य के प्रथम विचारक**—मैकियावेली ने इटली के लिए एक 'कामनवैल्थ' के निर्माण का विचार भी रखा है। उसका कहना था कि एक बार प्रिंस इकाई राज्यों को विभाजित कर उन्हें अपनी अधीनता में कर लेगा, फिर एक ऐसा संघ राज्य बनायेगा, जिसमें शासन की शक्ति कुछ सीमा तक इकाइयों में विभाजित होगी। आधुनिक युग में विशाल राज्यों के लिए संघीय व्यवस्था ही अधिक व्यावहारिक है और मैकियावेली ने चाहे संघ राज्य के सारे तत्त्वों पर विचार न किया हो, लेकिन उसने इस कल्पना को अवश्य ही लिया था।
9. **आधुनिक अध्ययन पद्धति के अनुयायी**—इन सबके अतिरिक्त मैकियावेली पद्धति की दृष्टि से भी आधुनिक युग के जनक हैं। आधुनिक अध्ययन पद्धति के प्रमुख लक्षण बताये जा सकते हैं—पर्यवेक्षण, यथार्थवादी दृष्टिकोण, वैज्ञानिक तटस्थता, विश्लेषण और ऐतिहासिक आधार। मैकियावेली ने अपनी अध्ययन पद्धति में मध्य युग के अति धार्मिकतावादी दृष्टिकोण का बहिष्कार किया था और बहुत कुछ सीमा तक उसकी अध्ययन पद्धति में आधुनिक युग की अध्ययन पद्धति के उपयुक्त सभी लक्षण विद्यमान हैं। उसने अपनी सूक्ष्म और स्पष्ट दृष्टि के आधार पर तत्कालीन परिस्थितियों का पर्यवेक्षण किया और ऐतिहासिक आधार पर विभिन्न परिणाम निकाले। यद्यपि मैकियावेली में दूरदर्शिता का अभाव है और उसकी अध्ययन पद्धति में कुछ त्रुटियाँ भी हैं, लेकिन उसकी अध्ययन पद्धति है आधुनिक ही।

यद्यपि कहीं-कहीं मैकियावेली की विचारधारा में मध्य युग के विचारों का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव दिखायी पड़ता है, किन्तु उसके राजनीतिक दर्शन में आधुनिक युग की प्रवृत्तियाँ ही प्रबल हैं और उसे बहुत कुछ सीमा तक सत्य रूप में 'आधुनिक युग का जनक' कहा जा सकता है। डब्ल्यू. टी. जोन्स लिखते हैं कि 'मैकियावेली किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा और इस तथ्य के बावजूद कि वह कठिनाई से ही राजनीतिक सिद्धान्तवादी है, आधुनिक राजनीतिक दर्शन का जनक है।'' इटली में राष्ट्रीयता की भावना मैकियावेली के विचारों द्वारा ही जाग्रत हुई। उसे इटली का प्रथम राष्ट्रवादी और प्रथम देशभक्त कहा जा सकता है।

प्र.3. मैकियावेली के मानव स्वभाव सम्बन्धी विचारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

Describe in detail the thoughts of Machiavelli on human nature.

उत्तर

मैकियावेली के मानव स्वभाव सम्बन्धी विचार
(Thoughts of Machiavelli on Nature)

मैकियावेली की नैतिकता, धर्म तथा राजनीति की पारस्परिक सम्बन्ध विषयक धारणाएँ और शासन के स्वरूप का उसका समस्त ढाँचा मानव स्वभाव सम्बन्धी विचार पर ही आधारित है। इस प्रकार मानव स्वभाव सम्बन्धी उसकी धारणा उसके समस्त राजनीतिक दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। मानव स्वभाव सम्बन्धी उसके विचार तत्कालीन इटली के स्वभाव, चरित्र और कार्यों पर ही आधारित हैं।

मैकियावेली इस धारणा को लेकर चला है कि मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी और घोर दानवी प्रवृत्तियों वाला दुष्ट होता है। उसके मतानुसार मनुष्य की सभी सामाजिक और राजनीतिक क्रियाओं का मूल स्रोत उसका यह घोर स्वार्थवाद ही होता है। 'प्रिंस' के

17वें अध्याय में उसने लिखा है, 'सामान्य रूप से मनुष्यों के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे कृतघ्न, चंचल, झूठे, कायर और लोभी होते हैं। जब तक आप से सफलता मिलती है, वे पूर्ण रूप से आपके बने रहेंगे। वे आपके लिए उस समय तक अपने जीवन, रक्त, सम्पत्ति और बच्चों का बलिदान करने के लिए तैयार रहेंगे। लेकिन जैसे ही उनके लिए आपकी आवश्यकता समाप्त हो जाती है, तो वह आपके विरुद्ध हो जाते हैं....मनुष्य किसी से तभी तक प्रेम करते हैं, जब तक कि उनका स्वार्थ सिद्ध होता है।'
डिस्कोर्सेज (Discourses) में भी उसने मानवीय स्वभाव की भर्त्सना ही की है। वह लिखता है, 'व्यक्ति स्वभाव से ईर्ष्यालु और महत्त्वाकांक्षी होता है। व्यक्ति अपने व्यवहार में प्रेम, भय और धनोपार्जन की प्रवृत्ति से परिचालित होता है।'
मैकियावेली के अनुसार मानव जीवन में धनोपार्जन की प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है। उसका कहना था कि 'अपनी सम्पत्ति छीनने वाले की अपेक्षा एक व्यक्ति अपने पिता के हत्यारे को अधिक सुगमता से क्षमा कर देता है।'
इस प्रकार हॉब्स के समान ही मैकियावेली यह मानता है कि मनुष्य में इच्छा तत्त्व की प्रधानता होती है, ये इच्छाएँ असीम और अनन्त होती हैं और मनुष्य अपने सभी कार्य इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही करता है। उसकी एक बड़ी इच्छा सम्पत्ति की होती है। स्वार्थ के अतिरिक्त मानव स्वभाव का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व भय है। मैकियावेली का विचार है कि मानव जीवन को भय प्रेम से अधिक प्रभावित करता है।
मनुष्य में वह सद्भावना, सामाजिकता और अच्छे गुण भी देखता है, क्योंकि वह लिखता है कि जर्मनी और स्विट्जरलैण्ड के नागरिकों में समाज के प्रति निष्ठा है और इसलिए वहाँ गणतन्त्र स्थापित हो सके हैं, किन्तु मनुष्य की सामाजिकता और सद्भावना की चर्चा केवल प्रसंगवश ही की है। अधिकतर उसने मनुष्य के बुरे स्वभाव पर ही बल दिया है।
राज्य और शासन सम्बन्धी विचारधारा मानव स्वभाव पर आधारित—मैकियावेली की राज्य और शासन सम्बन्धी विचारधारा उसकी मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा पर ही आधारित है। मानव स्वभाव से दुष्ट और धोखेबाज होता है, इसलिए उसका साथ निभाने के लिए सरकार भी उतनी ही निरंकुश और शक्तिशाली होनी चाहिए। मानव जीवन में भय के तत्त्व की प्रधानता को दृष्टि में रखते हुए वह नरेश को सुझाव देता है कि उसे प्रजावत्सल ही नहीं वरन् ऐसा होना चाहिए कि लोग उससे डरते रहें। एक कुशल शासक मानवीय प्रकृति की दुर्बलताओं को दृष्टि में रखकर, छल-बल का प्रयोग करके एक अच्छे शासक की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार व्यक्ति के स्वभाव में सम्पत्ति के अर्जन की प्रबल इच्छा को दृष्टि में रखते हुए वह कहता है कि 'बुद्धिमान शासक व्यक्ति की हत्या भले ही कर दे, पर उसकी सम्पत्ति को न लूटे।' मानवीय स्वभाव की दुर्बलताओं को दृष्टि में रखते हुए ही वह इस बात का प्रतिपादन करता है कि 'राजा में शेर का साहस और लोमड़ी की चालाकी दोनों ही होने चाहिए।'
शासन के प्रकार के सम्बन्ध में मैकियावेली की विचारधारा मानवीय जीवन के तत्त्वों पर आधारित है। मैकियावेली का विचार है कि जिस राज्य के नागरिकों में मानवीय सद्गुण हों, वहाँ पर गणतन्त्रीय व्यवस्था ठीक प्रकार से कार्य कर सकती है, लेकिन जिन देशों के नागरिकों में मानवीय सद्गुणों का अभाव है, उन देशों के लिए निरंकुश राजतन्त्र ही उपयुक्त हो सकता है। इटली के तत्त्कालीन नागरिकों में मानवीय सद्गुणों का नितान्त अभाव होने के कारण ही उसके द्वारा इटली के लिए निरंकुश राजतन्त्र को अपनाने का सुझाव दिया गया है।

मानव स्वभाव सम्बन्धी विचारधारा की आलोचना
(Criticism of Human Nature Theory)

मैकियावेली की मानव स्वभाव सम्बन्धी विचारधारा निश्चित रूप से अत्यधिक त्रुटिपूर्ण है। प्रथमत:, मैकियावेली की मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा एकांगी है। वह केवल मानवीय कमजोरियों को ही देखता है, उसकी अच्छाइयों को नहीं, किन्तु वस्तुत: मानवीय स्वभाव में ये दोनों ही पहलू पाये जाते हैं। उसमें प्रबल व्यक्तिगत स्वार्थ भी होता है और परोपकार की भावना भी। द्वितीयत: मानव स्वभाव सम्बन्धी मैकियावेली की धारणा इटली निवासियों तथा राजनीतिज्ञों के व्यवहारों के पर्यवेक्षण पर आधारित है, सार्वभौम सत्य नहीं हो सकता। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि क्योंकि इटली निवासी स्वभाव से बुरे हैं, इसलिए विश्व के समस्त नागरिक बुरे हैं। मैकियावेली की मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा पूर्ण रूप से देश और काल पर आधारित तथा अत्यन्त सीमित और संकुचित है। वह इटली को भ्रष्ट समाज का सजीव उदाहरण मानता है, किन्तु इटली के दायरे से बाहर निकलकर मानव स्वभाव का अध्ययन नहीं करता।
मैकियावेली की मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा न केवल एकांगी, वरन् अतार्किक और अवैज्ञानिक भी है। वह मानव स्वभाव सम्बन्धी अपने निष्कर्षों पर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर नहीं पहुँचता और न ही वह हॉब्स के समान मानव स्वभाव सम्बन्धी दोषों को तर्क के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास करता है। वस्तुत: यह मानव स्वभाव का कोई क्रमबद्ध सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं करता है। मनुष्य के स्वभाव और चरित्र का क्रमबद्ध अध्ययन न होने के कारण मैकियावेली यह नहीं बताता कि पतित मनुष्य कैसे अच्छा बन सकता है और अच्छा मनुष्य पतित क्यों हो जाता है?

प्र.4. मैकियावेली के धर्म एवं नैतिकता सम्बन्धी विचारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Describe in detail the thoughts of Machiavelli on religion and ethics.

उत्तर नैतिकता और धर्म सम्बन्धी विचार (राजनीति का नैतिकता और धर्म से पृथक्करण)
[Thoughts of Machiavelli Related to Religion and Ethics (Separation of Politics from Ethics and Religion)]

मैकियावेली के विचार की सबसे प्रमुख विशेषता, जिसके साथ उसका नाम जुड़ा हुआ है, राजनीति को धर्म और नीति के प्रभाव से सर्वथा मुक्त और स्वतन्त्र करना है। मैकियावेली की यही विशेषता उसे प्राचीन और मध्यकालीन विचारकों से अलग कर देती है। सोफिस्ट वर्ग के विचारकों के अतिरिक्त सभी यूनानी विचारक–सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू–नैतिक जीवन को बहुत महत्त्व देते हैं और चर्च के विचारकों का तो सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन ही धर्म से अनुप्राणित था, किन्तु मैकियावेली पहला ऐसा विचारक था जिसने राजनीति को नैतिकता से जानबूझकर तथा औपचारिक रूप से अलग कर दिया।

मैकियावेली इस बात से इंकार करता है कि भावी जीवन में आनन्द प्राप्त करने के लिए मनुष्य को ईश्वरीय कानून के निर्देश की आवश्यकता है। मैकियावेली की धारणा है कि मनुष्य का केवल एक ही लक्ष्य हो सकता है वह है इस जीवन में सुख की प्राप्ति । इस प्रकार मैकियावेली मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य के सम्बन्ध में सन्त थॉमस एक्वीनास और ईसाई धर्म के अन्य विचारकों की धारणाओं का खण्डन करता है।

मैकियावेली के अनुसार राज्य के द्वारा अपने को एकीकृत करने और शक्तिशाली बनाने के लिए आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के साधन अपनाये जा सकते हैं। वह कहता है, 'राजा को राज्य की सुरक्षा की चिन्ता करनी चाहिए, साधन तो सदैव आदरणीय ही समझे जायेंगे और उनकी सामान्य रूप से प्रशंसा ही की जायेगी।'' मैकियावेली की धारणा है कि राज्य की सुरक्षा और कल्याण के मार्ग में नैतिक विचारों को बाधित नहीं होने दिया जाना चाहिए और शासक को नैतिकता के चक्कर में न पड़कर आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के साधन अपना लेने चाहिए। वह लिखता है, 'प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि राजा के लिए अपने वचन का पालन करना और नीतिपूर्वक आचरण करना कितना प्रशंसनीय है तथापि हमारी आँखों के समक्ष जो कुछ घटा है, उसमें हम देखते हैं कि केवल उन्हीं राजाओं ने महान् कार्य किये हैं जिन्होंने चालाकी में दूसरों को पीछे छोड़ दिया और अन्त में उसमें अधिक सफल सिद्ध हुए हैं जो कि ईमानदारी से आचरण में विश्वास करते थे।.... इसलिए एक बुद्धिमान शासक अपने वचन का पालन नहीं कर सकता और न ही उसे ऐसा करना चाहिए, यदि ऐसा करना उसके हित में न हो।'

एक अन्य स्थान पर मैकियावेली लिखता है, 'न तो कोई प्राकृतिक कानून है और न ही सार्वभौम रूप में स्वीकृत कोई अधिकार। राजनीति को नैतिकता से पूर्णतया स्वतन्त्र करना चाहिए। साध्य ही साधनों का औचित्य है।'

उपर्युक्त दृष्टिकोण के आधार पर मैकियावेली लिखता है कि राजा को ऊपर से दयालु, विश्वासी, धार्मिक और सच्चा होने का ढोंग करते हुए आवश्यकता पड़ने पर निर्दयी, विश्वासघाती और अधार्मिक बनने को तत्पर रहना चाहिए। वह धोखा और ढोंग राजा के लिए जरूरी समझता है और उसका विचार है कि राजा को ''छल–कपट को जानने के लिए लोमड़ी और भेड़िए को डराने के लिए शेर होना चाहिए।'' इस प्रकार मैकियावेली राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सभी साधनों को अपनाना उचित ठहराता है और अपने नरेश को आवश्यकतानुसार नैतिक–अनैतिक सभी साधन अपनाने का परामर्श देता है।

मैकियावेली के द्वारा राजनीति का नीति से जो सम्बन्ध विच्छेद किया गया है, उसके प्रमुख रूप से निम्नलिखित चार कारण दिये जा सकते हैं—

1. यूनानी दार्शनिकों की भाँति वह राज्य को सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च संगठन मानता है और उसका विचार है कि राज्य के हित व्यक्तिगत हितों से उच्च और महत्वपूर्ण होते हैं। इसी आधार पर वह कहता है कि 'जब राज्य की सुरक्षा संकट में हो तो इस बात का कोई विचार नहीं करना चाहिए कि क्या न्यायपूर्ण है और क्या अन्यायपूर्ण, क्या दयालुतापूर्ण है और क्या निर्दयतापूर्ण, क्या गौरवपूर्ण है और क्या निर्लज्जतापूर्ण।'
2. दूसरा कारण उसका यथार्थवादी दृष्टिकोण है। शासन कार्य से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित होने के कारण उसने स्वयं यह देखा था कि शासकगण आन्तरिक प्रशासन और वैदेशिक सम्बन्धों के संचालन में सदैव ही नैतिक–अनैतिक, सभी साधनों को अपनाते रहे हैं। अत: उसने राजनीति में नैतिकता का उपदेश देना व्यर्थ समझा।
3. तीसरा कारण उसकी मानव प्रकृति के सम्बन्ध में विशिष्ट धारणा है। वह मनुष्यों को घोर स्वार्थी मानता है और उसका विचार है कि मनुष्यों पर प्रेम के स्थान पर भय से ही शासन किया जा सकता है। अत: वह 'नरेश' को आतंकपूर्ण मार्ग अपनाने का परामर्श देता है।

4. चौथा कारण उसके द्वारा शक्ति को और वीर पुरुषों को अत्यधिक महत्त्व देना है। मैकियावेली शक्तिशाली व्यक्ति को वन्दनीय समझता है और शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उपाय का प्रयोग करना उचित। उसके दृष्टिकोण के कारण धार्मिक और नैतिक प्रभाव से पूर्णतया मुक्त राजनीति का जन्म हुआ।

राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनैतिक और अधार्मिक कार्यों का समर्थक होने पर भी वह राजनीतिक क्षेत्र में धर्म की उपयोगिता को स्वीकार करता है। उसकी दृष्टि में राज्य में धर्म की महत्ता इसलिए है कि धर्म सभ्य जीवन का आधार है। व्यक्ति अनेक बार राज्य के कानूनों की तो अवज्ञा कर देते हैं, किन्तु धार्मिक नियमों को ईश्वरीय आदेश मानकर उसका पालन करते हैं। मैकियावेली का सुझाव है कि राजा को ऐसे गुणों से विभूषित प्रकट होना चाहिए, जो कि अच्छे मनुष्य के लक्षण माने जाते हैं। उसके द्वारा धर्म को धारण करने का प्रपंच अवश्य ही रचा जाना चाहिए। अपने ग्रन्थ 'डिस्कोर्सेज' में वह लिखता है, "धार्मिक संस्थाओं का पालन, गणतन्त्रों की महत्ता का कारण है और इन संस्थाओं की अवहेलना राज्य के विनाश को जन्म देती है।"

इस प्रकार मैकियावेली शक्ति के साथ-साथ धर्म को साम्राज्य के आधार के रूप में स्वीकार करता है, किन्तु धर्म के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण पूर्णतया उपयोगितावादी है। नैतिक तथा धार्मिक भावनाओं का आदर मैकियावेली वहीं तक करता है, जहाँ तक वे राज्य की शक्ति और हित के महत्वपूर्ण साधन हों।

आलोचना (Critism)

मैकियावेली ने अपने राजनीतिक दर्शन में धर्म और नीति की घोर उपेक्षा की है। इटली की तत्कालीन परिस्थितियों में उसकी दृष्टि इतनी सीमित और मर्यादित हो चुकी है कि वह मानव समाज में इनका सही महत्व आँकने में सर्वथा असमर्थ था। डॉ. मुरे के शब्दों में, 'मैकियावेली स्पष्टदर्शी थे पर दूरदर्शी नहीं थे। उन्होंने इस दृष्टिकोण से कभी भी चीजों को देखने का प्रयत्न नहीं किया कि उन्हें कैसी होनी चाहिए, उन्होंने हमेशा उन्हें उनके यथार्थ रूप में देखा....उन्होंने चालाकी को राजनीतिज्ञ की कला मान लेने की भूल की है।"

प्र.5. राज्य हितों की सुरक्षा हेतु सुझाए गए उपायों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Describe in detail the measures suggested to protect the interests of the state.

उत्तर

राज्य हितों की सुरक्षा हेतु सुझाए गए उपाय
(Measures Suggested to Protect the Interests of the State)

'प्रिंस' के अठारहवें अध्याय में मैकियावेली ने उन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, जिनके आधार पर राजा को अपना आचरण करना चाहिए। इस विषय में उसकी शिक्षाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **अधिकाधिक शक्ति का अर्जन**—मैकियावेली 'शक्ति ही सत्य' (Might is Right) में विश्वास करता है और शक्ति मैकियावेली की समस्त राजनीतिक विचारधारा का केन्द्रीय तत्त्व है। अत: मैकियावेली अपने शासक को अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करने, उसे बनाये रखने और उसका विस्तार करने के लिए निर्देश देता है। इस सम्बन्ध में मैकियावेली का विचार है कि शासक का मूल कर्त्तव्य बाहरी आक्रमण से सुरक्षा और आन्तरिक क्षेत्र में शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखना है और यह कार्य शक्ति के आधार पर ही सम्भव है।
2. **साम, दाम, दण्ड और भेद को अपनाना**—मैकियावेली के द्वारा अपने नरेश को साम, दाम, दण्ड और भेद का आवश्यकतानुसार प्रयोग करने का निर्देश दिया गया है। राजा को जनता के सामने मानवोचित गुणों का प्रदर्शन करना चाहिए जिससे लोग समझें कि राजा बहुत सद्गुणी है, परन्तु उसे सद्गुणों का दास नहीं हो जाना चाहिए। राजा के द्वारा अपने राज्य के नागरिकों और अन्य राज्यों के शासकों को जो वचन दिये गये हैं, उनका महत्त्व है, लेकिन उनका पालन तभी तक किया जाना चाहिए, जब तक कि ऐसा करना राज्य के हित में हो।
3. **सिंह और लोमड़ी के गुणों को धारण करना**—मैकियावेली के अनुसार, 'छल-कपट को जानने के लिए राजा को लोमड़ी और भेड़ियों को डराने के लिए उसे शेर होना चाहिए।" शासन के विरुद्ध किये जा रहे विभिन्न प्रकार के षड्यन्त्रों और उपद्रवों को जानने और उनसे बचने के लिए उसमें लोमड़ी की चालाकी और मक्कारी एवं भेड़ियों अर्थात् विदेशी आक्रमणकारियों को डराने के लिए उसमें सिंह जैसी शक्ति होनी चाहिए। मनुष्य मानवीयता और पशुता के विरोधी तत्त्वों से मिलकर बना है, अत: राजा को इन दोनों तत्त्वों के साथ व्यवहार करने के उपायों का ज्ञान होना चाहिए।
4. **कानूनों का कठोरतापूर्वक पालन**—कानूनों का पालन नितान्त आवश्यक है अत: राजा के द्वारा सामाजिक मामलों में किसी प्रकार की निर्बलता नहीं दिखायी जानी चाहिए। कठोरतम दण्ड की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे कानून की अवहेलना करने वालों को सदैव ही भय बना रहे।

TOUCH 'n PASS

5. **सैनिक शक्ति का विस्तार और युद्ध की स्थिति बनाये रखना**—मैकियावेली की मान्यता है कि सैनिक शक्ति का विस्तार किया जाना चाहिए और युद्ध की स्थिति को बनाये रखा जाना चाहिए। युद्ध की स्थिति से न केवल सैनिकों में वरन् साधारण नागरिकों में भी अनुशासन, देशभक्ति, एकता और कठोर जीवन की आदत का विकास होता है। मैकियावेली के अनुसार शासक के लिए युद्ध में वीरता और शौर्य का प्रदर्शन करने से अधिक सम्मानजनक बात और कुछ भी नहीं है।
6. **राष्ट्रीय सेना का गठन**—नरेश को राज्य की रक्षा के लिए एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सेना का गठन करना चाहिए। उसे किराये की सेना पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि मैकियावेली के अनुसार ये 'असंगठित, महत्त्वाकांक्षी, अनुशासनहीन, अकृतज्ञ, मित्रों में बहादुर, परन्तु शत्रुओं में कायर होते हैं। उन्हें ईश्वर से कोई भय नहीं होता और मनुष्य में कोई विश्वास नहीं होता।'' एक अन्य स्थान पर वह लिखता है, 'दूसरों के अस्त्र या तो असफल हो जाते हैं या अतिभार डालते हैं या बाधा प्रस्तुत करते हैं।'
7. **आचरण भययुक्त हो, लेकिन घृणित नहीं**—मैकियावेली के अनुसार प्रेम की अपेक्षा भय मानव जीवन का अधिक स्थायी तत्त्व है, अत: प्रजाजन के हृदय में प्रेम की अपेक्षा भय उत्पन्न किया जाना चाहिए, परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रेम घृणा में न बदलने पाये, अन्यथा राज्य और राजा दोनों का नाश अवश्यम्भावी है।
8. **सम्मानपूर्ण आचरण**—राजा के द्वारा अपने सम्मान और अपने प्रति भय को बनाये रखने के लिए सम्मानपूर्ण आचरण को अपनाया जाना चाहिए और इस दृष्टि से उसके द्वारा दो कार्य नहीं किये जाने चाहिए। प्रथम, प्रजा वर्ग की स्त्रियों पर कुदृष्टि नहीं डालनी चाहिए। द्वितीय, प्रजा की सम्पत्ति छीनने की कोई चेष्टा नहीं की जानी चाहिए, अन्यथा लोग निश्चय ही उससे घृणा करने लगेंगे।
   इस सम्बन्ध में मैकियावेली यह भी कहता है कि राजा के द्वारा प्रजा की सामाजिक रूढ़ियों और रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।
9. **योग्य मन्त्रियों का चयन और परामर्श**—मन्त्रियों के चयन में राजा के द्वारा बहुत अधिक सावधानी बरती जानी चाहिए, क्योंकि मन्त्रियों की योग्यता और वफादारी पर ही शासन की कुशलता निर्भर करती है। मैकियावेली के अनुसार राजा के द्वारा मन्त्रियों से परामर्श लिया जाना चाहिए।
10. **चापलूसों से दूर रहना**—मैकियावेली के अनुसार आत्मस्तुति मानव की स्वाभाविक कमजोरी है, अत: शासक को चापलूसों से बचकर रहना चाहिए। चापलूस लोग राज्य और राजा के लिए कोई भी संकट उत्पन्न कर सकते हैं अत: राजा के द्वारा चापलूसों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।
11. **मितव्ययता लेकिन साथ ही उदारता**—राजा को अपने खर्च में कमी करनी चाहिए, जिससे राजकोष में हानि न हो। परन्तु लड़ाई में लूट का जो भी माल आये, उसे चुपचाप खजाने में नहीं रखना चाहिए, वरन् उसे उदारतापूर्वक प्रजाजनों और सैनिकों में बाँट दिया जाना चाहिए, जिससे वे सन्तुष्ट रहें।
12. **व्यापार और वाणिज्य का विकास**—राजा को व्यापार और वाणिज्य की उन्नति की ओर सदैव ध्यान देना चाहिए, अन्यथा राज्य निर्धन हो जायेगा और इसका कुफल उसे ही भोगना पड़ेगा, लेकिन ऐसा करते हुए उसे स्वयं व्यापार तथा वाणिज्य के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए।
13. **कला और साहित्य में रुचि**—राजा को कला एवं साहित्य में रुचि लेनी चाहिए, जिससे जनता यह समझे कि राजा इनके विकास और उन्नति के लिए सदैव उत्सुक है।
   इसके साथ ही प्रजा का दिमाग बड़ी-बड़ी योजनाओं में लगाये रखना चाहिए, जिससे जनता उसके विरोध की बात न सोच सके।
14. **निपुणता और योग्यता को प्रोत्साहन**—निपुणता और योग्यता को प्रोत्साहित करने के लिए राजा के द्वारा पुरस्कार, उपाधियाँ और पद प्रदान किये जाने चाहिए। पुरस्कार, उपाधियाँ और पद प्रदान करने के कार्य राजा के द्वारा स्वयं किये जाने चाहिए, क्योंकि इससे ख्याति बढ़ती है। लेकिन दमन करने और दण्ड देने जैसे अप्रिय कार्य राजा के द्वारा अपने अधिकारियों से कराये जाने चाहिए जिससे जनता के हृदय में राजा के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न न हो।
15. **अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शक्ति सन्तुलन**—अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नरेश को शक्ति सन्तुलन बनाये रखना चाहिए, जिससे कोई भी पड़ोसी राज्य इतना शक्तिशाली न हो पाये जिसके सामने इसे नतमस्तक होना पड़े। उसे पड़ोसी राज्य में सदैव ही हस्तक्षेप

करते रहना चाहिए जिससे वे अपने झगड़ों का निबटारा करने के लिए उसका मुँह ताका करें। मैकियावेली यह भी कहता है कि पड़ोसी राज्य को जीतने की अपेक्षा उसे मित्र बनाया जाना चाहिए।

16. **विजित राज्य की जनता से मैत्री**—दूसरे राज्य पर अधिकार करने के बाद उसके संविधान में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए। वहाँ की प्रजा को प्रलोभन देकर और अच्छे व्यवहार से अपना मित्र बना लेना चाहिए तथा पहले शासक की भूलों को सुधारने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

मैकियावेली ने राज्य के उदय, विस्तार और राजा के आचरण के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनसे यह नितान्त स्पष्ट है कि मैकियावेली ने राज्य का कोई दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया है। न तो उसने राज्य की परिभाषा की है, न उसकी उत्पत्ति या विकास का विधिवत् रूप में कोई सिद्धान्त प्रतिपादित किया है और न ही राज्य के तत्त्वों, आदि का विश्लेषण अथवा उस पर विचार ही किया है। वस्तुत: मैकियावेली की विचारधारा राज्य की सुरक्षा का सिद्धान्त है, न कि राज्य सम्बन्धी कोई दर्शन। राज्य सम्बन्धी दार्शनिक प्रश्नों की अपेक्षा उसकी दृष्टि यथार्थवादी राजनीति के प्रश्नों पर ही अधिक रही है और उसने राज्य की अपेक्षा शासन, आन्तरिक प्रशासन और वैदेशिक विषयों के संचालन पर अधिक ध्यान दिया है। उसने अपने ग्रन्थ 'प्रिंस' में 'नरेश' के लिए निर्देशों का विशद् विवेचन किया है, उससे यह नितान्त स्पष्ट है कि उसके विचार प्रशासक के लिए हैं और उसने शासन की कला का ही विस्तृत अध्ययन किया है।

प्र.6. जीन बोदां के द्वारा सम्प्रभुता की धारणा में असंगतताओं और अस्पष्टताओं का विवरण दीजिए।
Explain the contradictions and ambiguities in Jean Bodin's concept of sovereignty.

उत्तर

जीन बोदां द्वारा सम्प्रभुता की धारणा में असंगतताएँ और अस्पष्टताएँ
(Contradictions and Ambiguities in Jean Bodin's of Sovereignty)

बोदां की सम्प्रभुता विषयक धारणा अनेक अस्पष्टताओं, असंगतताओं और विरोधों से परिपूर्ण है। एक ओर तो वह सम्प्रभुता को कानून से अबाधित सर्वोच्च शक्ति मानता है और दूसरी तरफ वह सम्प्रभुता पर अनेक मर्यादाएँ अपरोपित करता है। यह निश्चित रूप से एक असंगतिपूर्ण स्थिति ही है। यदि सम्प्रभु कानून से अबाधित सर्वोच्च शक्ति है, तो फिर उस पर मर्यादाएँ कैसे आरोपित की जा सकती हैं और यदि उस पर मर्यादाएँ हैं तो फिर उसे कानून से अबाधित सर्वोच्च शक्ति कैसे कहा जा सकता है? उसने एक ओर तो सम्प्रभु को कानून का स्रोत माना है, लेकिन दूसरी ओर वह उसे दैवी कानून, प्राकृतिक कानून, संवैधानिक कानून और राष्ट्रों के कानून के अधीन मानता है। इसके अतिरिक्त बोदां ने अपने सम्प्रभु को ईश्वरीय कानून तथा प्राकृतिक कानून के अधीन कहा है, लेकिन ईश्वरीय कानून है क्या? इस बारे में कहीं कुछ भी नहीं बताया गया है। बोदां इस बात का भी उत्तर नहीं देता कि यदि सम्प्रभु प्राकृतिक विधियों का पालन नहीं करता, तो उसके विरुद्ध कौन कार्यवाही करेगा और क्या दण्ड देगा? और वह प्राकृतिक विधि का पालन करता है या नहीं इस बात का निर्णय कौन करेगा? सम्प्रभु प्रजाजनों पर सर्वोच्च शक्ति है, दूसरी ओर वह नागरिकों की निजी सम्पत्ति के सामने नितान्त असहाय है। इस प्रकार उसके सारे सिद्धान्त में इतने विरोधाभास और अस्पष्टताएँ हैं कि किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचा जा सकता।

बोदां की सम्प्रभुता विषयक धारणा में इस प्रकार की असंगति का एक मूल कारण है। बोदां ने तत्त्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए राजतन्त्र को आवश्यक मानते हुए राजतन्त्र के समर्थन में सम्प्रभुता की धारणा का प्रतिपादन किया, लेकिन दूसरी ओर वह मानवीय नैतिकता का प्रेमी था और अमर्यादित राजतन्त्र उसकी अपनी इस धारणा के अनुकूल नहीं था कि 'शक्ति औचित्य का आधार नहीं होती' (Might does not make right)। उसके द्वारा तात्कालिक आवश्यकता और अपनी मूल धारणा में समन्वय स्थापित करने की जो चेष्टा की गयी, उसी के कारण उसकी धारणा में इस प्रकार की असंगतियाँ उत्पन्न हो गयीं। वस्तुत: न तो उसने सम्प्रभुता की धारणा का पूर्ण विश्लेषण किया और न ही सम्भवतया यह उसका उद्देश्य था। कारण चाहे जो भी रहे हों, उसकी सम्प्रभुता विषयक धारणा में अनेक असंगतियाँ विद्यमान हैं, जिन्हें आगे चलकर हॉब्स ने दूर किया।

किन्तु इन असंगतियों तथा विरोधों के होते हुए भी बोदां का सम्प्रभुता का विचार राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में बहुत महत्त्व रखता है। आज की परिस्थितियों में भले ही, हमें उसकी सम्प्रभुता विषयक धारणा साधारण मालूम हो, किन्तु 16वीं सदी के लिए यह निश्चित रूप से नवीन और क्रान्तिकारी विचार था और यही आगे चलकर राष्ट्रीय राज्य के विकास का आधार बना। मैक्सी के शब्दों में, 'बोदां पहला व्यक्ति था, जिसने सम्प्रभुता के सिद्धान्त की सुस्पष्ट विवेचना की और इसे राजनीतिशास्त्र का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बताया।''

बोदां तथा मैकियावेली की तुलना
(Comparision of Bodin and Machiavelli)

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में यह प्रश्न बहुत अधिक विवादपूर्ण है कि राजनीतिशास्त्र में आधुनिक प्रवृत्तियों को प्रारम्भ करने का वास्तविक श्रेय बोदां को है या मैकियावेली को। इस दृष्टि से इन दोनों विचारकों की तुलना निश्चित रूप से रोचक और ज्ञानवर्धक हो जाती है। डनिंग, सेबाइन, मुरे और डब्ल्यू. टी. जोन्स, आदि कुछ महत्त्वपूर्ण लेखकों का मत है कि मैकियावेली ने कुछ आधुनिक प्रवृत्तियों का श्रीगणेश अवश्य ही किया, किन्तु इन्हें विकसित करने और पूर्ण बनाने का श्रेय बोदां को ही है, इसलिए बोदां को ही आधुनिकता का अग्रदूत समझा जाना चाहिए। डॉ. फास्टर ने संकेत किया है कि मैकियावेली में आधुनिकता का निर्माण करने वाली दो शक्तियों (पुनर्जागरण और सुधारवाद) में केवल एक ही शक्ति (पुनर्जागरण) का प्रतिनिधित्व था, जबकि बोदां में इन दोनों शक्तियों का प्रतिनिधित्व मिलता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित आधारों पर बोदां और मैकियावेली की तुलना करते हुए बोदां के पक्ष का समर्थन किया गया है।

1. **एक वैज्ञानिक विचारक**—यद्यपि मैकियावेली ने मध्य युग के अन्धविश्वासों और मान्यताओं को राजनीति से पृथक् करते हुए एक नवीन युग का सूत्रपात किया है, परन्तु मैकियावेली को एक विचारक की अपेक्षा राजनीतिज्ञ कहना ही अधिक उचित होगा। उसने अपना सारा ध्यान सामाजिक समस्याओं को सुलझाने पर ही केन्द्रित किया है, विधिवत रूप में किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। बोदां ने सही रूप में एक विचारक की भाँति अपने विचारों को तर्क की कसौटी पर कसने की चेष्टा की है। प्रो. डनिंग के शब्दों में, 'बोदां राजनीतिक सिद्धान्त को उस स्वरूप और प्रणाली में पुन: लौटा लाये, जिससे यह अरस्तू के बाद विपथगामी हो चुकी थी तथा उसे उन्होंने वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। वास्तव में उन्होंने उस कार्य को, जिसे मैकियावेली ने प्रारम्भ किया था, पूरा किया।''
2. **अध्ययन पद्धति**—बोदां तथा मैकियावेली, दोनों ने ही मध्य युग की निगमनात्मक (Deductive) पद्धति को छोड़कर, आधुनिक युग की आगमनात्मक (Inductive) विशेषतया ऐतिहासिक पद्धति को अपनाया, लेकिन इन दोनों की स्थिति में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। मैकियावेली की अध्ययन पद्धति का एक प्रमुख दोष यह है कि उसने इतिहास का निष्पक्ष आलोचनात्मक अध्ययन नहीं किया, वरन् पहले से निश्चित किये गये अपने विचारों की पुष्टि हेतु ही उसने इतिहास का अनुशीलन कर अपने पक्ष का समर्थन करने वाले प्रमाण ढूँढ़े। मैकियावेली की इस अपूर्णता को बोदां ने दूर किया। उसने ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर यह दिखाने की चेष्टा की कि विश्व और मानवता विकास की ओर जा रही है और उसने विकास के सूत्रों को इतिहास से सम्बद्ध किया। बोदां ने अपनी एक अन्य पुस्तक 'A Method for Easy Understanding of History' में इस पद्धति का बड़ी स्पष्टता और विस्तार के साथ प्रतिपादन किया तथा विधिशास्त्र के तुलनात्मक ऐतिहासिक अध्ययन की आधुनिक पद्धति को प्रारम्भ किया। डनिंग के अनुसार, 'बोदां की रचना वैज्ञानिक राजनीति के इतिहास में एक युग का निर्माण करती है।' उसके द्वारा बोदां को 'आधुनिक अर्थ में इतिहास के दर्शन का प्रतिपादन करने वाला सबसे बड़ा लेखक' कहा गया है। मैक्सी डनिंग के इस कथन की पूर्ति करते हुए यह मानता है कि 'बोदां की रचना 'Six Books Concerning the State' (De Republic) राजनीति विज्ञान की सच्चे अर्थ में सर्वप्रथम आधुनिक रचना है।'
3. **राज्य की धारणा**—मैकियावेली ने राज्य का कोई दर्शन प्रस्तुत नहीं किया, अपितु वह तो राज्य के संचालन और विस्तार अर्थात् शासन की ही कला प्रस्तावित करता है। उसके द्वारा राज्य के मौलिक तत्त्वों व सिद्धान्तों की उपेक्षा ही की गयी है और एलन को तो इस बात में भी सन्देह है कि 'वह राज्य के स्वरूप को ठीक प्रकार से समझता था।' यद्यपि उसने इटली के एकीकरण पर बल दिया और राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का निर्देश किया, लेकिन ऐसा सोचने के पर्याप्त कारण है कि वह राष्ट्रीय राज्य के स्वरूप को नहीं समझ सका था। राज्य का दर्शन तो बोदां ने ही दिया और प्राचीन एवं मध्यकाल से चली आने वाली विश्वव्यापी साम्राज्य की कल्पना का अन्त करके उसके स्थान पर राष्ट्रीय राज्य को प्रतिष्ठित करने का श्रेय बोदां को ही है।
4. **सम्प्रभुता का सिद्धान्त**—यदि किसी एक धारणा को आधुनिकता का प्रतीक बताया जा सकता है, तो वह निश्चित रूप से सम्प्रभुता की धारणा ही है। यद्यपि मैकियावेली जिस राज्य का वर्णन करता है, वह पूर्ण सम्प्रभुतासम्पन्न है और उसे अपने प्रदेश में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है, लेकिन उसने 'सम्प्रभुता के सिद्धान्त का कोई विस्तृत उल्लेख या प्रतिपादन नहीं किया है।'' बाउल ने सत्य ही लिखा है कि, 'सम्प्रभुता का वर्णन करने वाला प्रथम लेखक बोदां ही है।' जार्ज केटलिन ने लिखा है

कि 'सम्प्रभुता' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम उसके ग्रन्थ 'De Republic' में मिलता है। उसने सम्प्रभुता को राज्य का आवश्यक सार तत्त्व माना है और उसका स्पष्ट कथन है कि सम्प्रभुता का तत्व ही राज्य को आवश्यक एकता तथा शक्ति प्रदान कर सकता है। उसने सम्प्रभुता का जो विशद् प्रतिपादन किया है, उस दृष्टि से उसे ही आधुनिकता का अग्रदूत समझा जाना चाहिए।

5. **नागरिकता का सिद्धान्त**—अरस्तू द्वारा दी गयी नागरिकता की व्याख्या को बोदां ने समयानुकूल आधुनिक बनाया। बोदां के अनुसार वे सभी लोग नागरिक हैं जो एक ही सम्प्रभुता के अधीन रहकर कानूनों का पालन करते हैं और स्वयं किसी के दास नहीं होते। मैकियावेली ने इस आधुनिक तत्व के बारे में कहीं कोई विचार व्यक्त नहीं किया है।
6. **दासता की भर्त्सना**—बोदां ने दासता को न तो प्राकृतिक माना है और न ही उपयोगी। उसने इसकी आलोचना करते हुए इसे स्वामी और दास, दोनों के लिए अहितकर कहा है। बोदां की यह धारणा आधुनिकता के नितान्त अनुकूल है। मैकियावेली ने न तो दासता का समर्थन किया है और न ही उसका विरोध, परन्तु अत्याचारी एवं निरंकुश प्रिंस की अधीनता में मैकियावेली के स्वतन्त्र नागरिक दासों के भी दास ही होते।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बोदां ने मैकियावेली के अधूरे कार्य को पूरा किया और राजनीतिशास्त्र में आधुनिक प्रवृत्तियों को सुप्रतिष्ठित किया। प्रो. टी. जोन्स के सुन्दर शब्दों में, 'बोदां आधुनिक राजनीतिक विचारों के प्रारम्भ का मैकियावेली की अपेक्षा अधिक सही प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि नवीन युग के प्रवेश द्वार पर खड़े हैं जबकि मैकियावेली बैठक तक पहुँच चुके हैं और अंगीठी तापने वालों के बीच प्रमुख स्थान ग्रहण किये हुए हैं।''

लेकिन इस विवाद का एक अन्य पक्ष भी है। बोदां की अपेक्षा मैकियावेली को आधुनिकता का प्रतिपादन करने वाला न समझा जाना भी मैकियावेली के साथ अन्याय करना होगा। वास्तव में, मैकियावेली बोदां से लगभग 60 वर्ष पूर्व राजनीतिक विचारधारा में कई दृष्टियों से आधुनिकता का समावेश कर चुका था। मैकियावेली सबसे पहला राजनीतिक चिन्तक है, जिसने राजनीतिक समस्याओं के सम्बन्ध में मध्ययुगीन कैथोलिक चिन्तन का निश्चयात्मक रूप से परित्याग किया। बोदां के सम्बन्ध में एक बात यह है कि यदि एक ओर बोदां में, आधुनिकता के अनेक तत्व हैं तो दूसरी ओर उसमें आधुनिकता के प्रतिकूल भी कुछ तत्व देखे जा सकते हैं, यथा मध्ययुगीन रूढ़ियों और विशेषाधिकारों का समर्थन, धार्मिक मान्यताओं का प्रभाव और संवैधानिक परम्पराओं की मान्यता, आदि। सम्भवतया इन्हें ही लक्ष्य करते हुए सेबाइन ने कहा है कि 'बोदां का राजनीतिक दर्शन प्राचीन तथा अर्वाचीन का विचित्र सम्मिश्रण है। वह बिना आधुनिक हुए ही मध्ययुगीन भी नहीं रह पाया था।' इस दृष्टि से भी यह मानना उचित है कि बोदां की अपेक्षा आधुनिकता की प्रवृत्ति मैकियावेली में अधिक थी, लेकिन इसके साथ ही यह भी तथ्य है कि मैकियावेली विशुद्ध राज्य दर्शन का प्रतिपादन नहीं कर सका और क्रमबद्ध राजनीतिक दर्शन के प्रतिपादन तथा उसे आधुनिक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय बोदां को ही है। निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि व्यावहारिक राजनीतिक चिन्तन तथा ऐतिहासिक काल की दृष्टि से बोदां की अपेक्षा मैकियावेली आधुनिक चिन्तन का प्रतिपादक है, परन्तु एक क्रमबद्ध सैद्धान्तिक विचारधारा का प्रतिपादन करके राजनीतिक चिन्तन को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने के नाते बोदां को सर्वप्रथम आधुनिक राजनीतिक चिन्तक माना जाना चाहिए। मैकियावेली की दृष्टि क्रियात्मक राजनीति तक सीमित थी, बोदां ने इसे दर्शन का स्पर्श देकर विशाल और पूर्ण बनाया तथा इसे आधुनिक राजनीतिशास्त्र का रूप प्रदान किया।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. ''द प्रिन्स'' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

(क) ऑगस्टाइन (ख) प्लेटो (ग) हरबर्ट स्पेन्सर (घ) मैकियावेली

उत्तर (घ) मैकियावेली

प्र.2. 'सम्प्रभुता नागरिकों और प्रजाजनों के ऊपर सर्वोच्च सत्ता है जो कानून द्वारा मर्यादित नहीं की जा सकती।'' यह किसका कथन है?

(क) मैकियावेली (ख) जीन बोदां (ग) ग्रेसीमेकस (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) जीन बोदां

प्र.3. किसने कहा कि ''मैकियावेली का सिद्धान्त राज्य के संरक्षण का सिद्धांत है, न कि राज्य का सिद्धांत।''

(क) डब्ल्यू बुश (ख) प्लेटो (ग) गैटिल (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) गैटिल

प्र.4. मैकियावेली की रचनाओं में सुमेलित नहीं है–
(क) द डिस्कोर्सेज (1513) (ख) द प्रिंस (1532)
(ग) द आर्ट ऑफ वार (1519-1520) (घ) द हिस्ट्री ऑफ फ्लोरेंस (1520-1524)
उत्तर (घ) द हिस्ट्री ऑफ फ्लोरेंस (1520-1524)

प्र.5. जिस राजनीतिक दार्शनिक ने सर्वप्रथम राजनीतिक शास्त्र में आधुनिक राज्य की अवधारणा को प्रस्तुत किया, वह था?
(क) प्लेटो (ख) अरस्तू (ग) मैकियावेली (घ) हॉब्स
उत्तर (ग) मैकियावेली

प्र.6. निम्नलिखित में से किस प्राचीन ग्रंथ में इटली की स्थिति का वर्णन मिलता है?
(क) लॉज (ख) लेवियाथन (ग) द प्रिन्स (घ) दास कैपिटल
उत्तर (ग) द प्रिन्स

प्र.7. किस विचारक के अनुसार, ''मैकियावेली पुनर्जागरण का प्रतिनिधि था''?
(क) डनिंग (ख) फॉस्टर (ग) जोंस (घ) सेबाइन
उत्तर (ख) फॉस्टर

प्र.8. किस विचारक का यह कथन है कि ''मैकियावेली प्रतिभा सम्पन्न और वास्तविक अर्थ में अपने युग का शिशु था''?
(क) डनिंग (ख) सेबाइन (ग) फॉस्टर (घ) जोंस
उत्तर (क) डनिंग

प्र.9. डनिंग के अनुसार, ''मैकियावेली अपने युग का शिशु था'' क्योंकि–
(क) उसने नैतिकता को राजनीति से अलग किया।
(ख) उसने 'द प्रिंस' कृति की रचना की।
(ग) वह पिता की मृत्यु को भूल जाता है किन्तु पितृ धन की हानि को नहीं भूलता है।
(घ) उससे पूर्व अन्य कोई व्यक्ति इटली को न पहचान सका।
उत्तर (घ) उससे पूर्व अन्य कोई व्यक्ति इटली को न पहचान सका।

प्र.10. किस विचारक के अनुसार, ''मैकियावेली ने राजनीति की नैतिकता को भ्रष्ट नहीं किया अपितु शताब्दियों पहले से इस नाम पर हो रहे दम्भपूर्ण ढोंग का पर्दाफाश किया।''?
(क) कोकर (ख) मैक्सी (ग) फॉस्टर (घ) डनिंग
उत्तर (ख) मैक्सी

प्र.11. अपनी कृति 'द प्रिन्स' में मैकियावेली ने वर्णन किया है–
(क) राजतन्त्र का (ख) गणतन्त्र का
(ग) सम्प्रभुता का (घ) देशभक्ति का
उत्तर (क) राजतन्त्र का

प्र.12. निम्नलिखित में से बोदां का प्रमुख ग्रन्थ हैं–
(क) लेवियाथन (ख) द रिपब्लिका
(ग) द प्रिन्स (घ) डिस्कोर्सेज
उत्तर (ख) द रिपब्लिका

प्र.13. बोदां की प्रमुख कृति 'द रिपब्लिका' में वर्णित है–
(क) शासन का सिद्धान्त (ख) कानूनों का वर्णन
(ग) सम्प्रभुता सिद्धान्त की व्याख्या (घ) सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का विवेचन
उत्तर (ग) सम्प्रभुता सिद्धान्त की व्याख्या

TOUCH 'n' PASS

प्र.14. ''मैकियावेली राजा की शक्ति की अविभाज्यता में राष्ट्रीय राज्यों के आगम की पूर्व सूचना देता है।'' यह कथन किस विचारक का था?
(क) हार्नशा (ख) सेबाइन (ग) मैक्सी (घ) गैटिल
उत्तर (क) हार्नशा

प्र.15. मैकियावेली ने अपनी कृति 'डिस्कोर्सेज' में वर्णन किया है–
(क) राजतन्त्र का (ख) गणतन्त्र का (ग) (क) व (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) गणतन्त्र का

प्र.16. 'पुनर्जागरण' का अर्थ है–
(क) फिर से जागना (ख) सचेत रहना (ग) पुनः विचार करना (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) फिर से जागना

प्र.17. इटली का राजनयिक एवं राजनैतिक दार्शनिक कहा जाता है–
(क) मैकियावेली (ख) रूसो (ग) माण्टेस्क्यू (घ) वाल्टियर
उत्तर (क) मैकियावेली

प्र.18. ''बोदां का मुख्य उद्देश्य राज्य की व्याख्या करना नहीं अपितु राजसत्ता के लिए सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है।'' यह कथन है–
(क) मैकगबर्न (ख) हॉब्स (ग) मैक्सी (घ) सेबाइन
उत्तर (ग) मैक्सी

प्र.19. मैकगबर्न के कथनानुसार, ''बिना किसी कारण के यह न तो किसी की सम्पत्ति छीन सकता है और न किसी को सौंप सकता है।'' उक्त कथन किस तथ्य से संबंधित है?
(क) राजतन्त्र (ख) लोकतन्त्र (ग) सम्प्रभु (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) सम्प्रभु

प्र.20. कुलीनतन्त्र की सरकार में सम्प्रभुता का निवास कुलीन वर्ग में होगा। इसी प्रकार लोकतन्त्र शासन में सम्प्रभुता का निवास होता है–
(क) जनता में (ख) प्रतिनिधि सभा में (ग) नियुक्त अधिकारी में (घ) राज्य में
उत्तर (क) जनता में

प्र.21. पुनर्जागरण का आरम्भ कहाँ से हुआ?
(क) फ्रांस (ख) जर्मनी (ग) इटली (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) इटली

प्र.22. निम्न में से कौन-सा कथन सम्प्रभुता के लिए सही है?
(क) यह समस्त जनता के लिए बिना उनकी सम्पत्ति के ही कानून प्रदान करती है, अर्थात् सम्प्रभुता सर्वोच्च एवं निरपेक्ष शक्ति है।
(ख) सम्प्रभुता, एक सतत् या स्थायी शक्ति है।
(ग) यह विधि द्वारा अनियन्त्रित है अर्थात् वैधानिक मर्यादाओं से परे है।
(घ) उपरोक्त सभी
उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

प्र.23. निम्नलिखित में से मध्य युग की विशेषता थी–
(क) पोपतन्त्र (ख) पवित्र रोमन साम्राज्य
(ग) सामन्तवाद (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

TOUCH 'n' PASS

प्र.24. मैकियावेली का राजनीति के परिपेक्ष में क्या योगदान है?

(क) राजनीति का धर्म और नीति से सम्बन्ध स्थापित करना है।
(ख) राजनीति को धर्म और नीति के प्रभाव से सर्वथा मुक्त और स्वतन्त्र करना है।
(ग) राजनीति द्वारा जनता और जनता का राजा से सम्बन्ध स्थापित करना है।
(घ) राजनीति लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु धर्म के पतन का रास्ता बताते हैं।

उत्तर (ख) राजनीति को धर्म और नीति के प्रभाव से सर्वथा मुक्त और स्वतन्त्र करना है।

प्र.25. मैकियावेली के अनुसार, राजा में शासन योग्य किस गुण का होना आवश्यक है?

(क) शेर जैसा तेज शिकार और लोमड़ी जैसा घुमक्कड़पन
(ख) शेर जैसी दहाड़ और लोमड़ी जैसी तेज नजर
(ग) शेर की तरह बहादुर और लोमड़ी जैसा चालाक
(घ) बाज जैसे अकेले उड़ना और हाथी जैसा शरीर रखना

उत्तर (ग) शेर की तरह बहादुर और लोमड़ी जैसा चालाक

प्र.26. राज्य हितों की सुरक्षा हेतु मैकियावेली द्वारा सुझाये गये उपायों में निम्नलिखित में से कौन-सा सही नहीं है?

(क) साम, दाम, दण्ड और भेद को अपनाना
(ख) कानूनों का कठोरतापूर्वक पालन करना
(ग) योग्यों मन्त्रियों का चयन और परामर्श
(घ) अगर बाह्य आक्रमण का खतरा न हो तो भोग-विलास व मनोरंजन में समय बिताये

उत्तर (घ) अगर बाह्य आक्रमण का खतरा न हो तो भोग-विलास व मनोरंजन में समय बिताये

प्र.27. मैक्सी डनिंग ने बोदां की किस रचना को राजनीतिक विज्ञान की सच्चे अर्थ में सर्वप्रथम आधुनिक रचना कहा है ?

(क) A Method for Easy understanding of History
(ख) Six Books Concerning the State (De Republic)
(ग) The Prince
(घ) The Art of War

उत्तर (ग) The Prince

प्र.28. 'पुनर्जागरण' शब्द किस भाषा का है?

(क) फ्रांसीसी (ख) आयरिश (ग) यूनानी (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) फ्रांसीसी

प्र.29. 'आधुनिक राजदर्शन का पिता' कहा जाता है–

(क) टॉमस मूर (ख) मैकियावेली (ग) बोदां (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) मैकियावेली

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-IV

हॉब्स, लॉक और रूसो
Hobbes, Locke and Rousseau

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लॉक तथा हॉब्स की मानव स्वभाव की अवधारणा की तुलना कीजिए।
Compare the concept of human nature of Locke and Hobbes.

उत्तर हॉब्स तथा लॉक के मानव स्वभाव की अवधारणा के अध्ययन के बाद निम्नलिखित अन्तर देखने को मिलते हैं—हॉब्स ने मनुष्य को स्वार्थी तथा आत्मकेन्द्रित बताया है, लेकिन लॉक ने उसे परोपकारी तथा सदाचारी बताया है। हॉब्स मनुष्य को असामाजिक तथा बुद्धिहीन प्राणी कहता है, लेकिन लॉक उसे सामाजिक तथा विवेकशील प्राणी बताता है।

प्र.2. लॉक की मानव स्वभाव की अवधारणा के निहितार्थ लिखिए।
Write the implications of Locke's concept of human nature.

उत्तर लॉक की मानव प्रकृति अवधारणा की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं—

1. मनुष्य एक सामाजिक तथा विवेकशील प्राणी है (Man is a Social and Rational Human Being)।
2. मनुष्य शांति एवं भाई-चारे की भावना से रहना चाहता है (Man wants to live in Piece and Harmony)।
3. मनुष्य के स्वार्थी होते हुए भी उसमें दूसरों के प्रति सहानुभूति तथा परोपकार की भावना है।

प्र.3. निजी सम्पत्ति के पक्ष में लॉक के तर्क बताइए।
State Locke's arguments in favour of private property.

उत्तर लॉक ने निजी सम्पत्ति को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए हैं—

1. आरम्भ में भूमि तथा इसके सारे फल प्रकृति द्वारा सारी मानव जाति को दिये गए थे।
2. मानव को इनका प्रयोग करने से पहले इन्हें अपना बनाना है।
3. हर व्यक्ति का व्यक्तित्त्व, उसकी शारीरिक मेहनत तथा उसके हाथों का कार्य उनकी अपनी सम्पत्ति है।

प्र.4. हॉब्स की प्रमुख पुस्तकों के नाम लिखिए।
Name the main books of hobbes.

उत्तर हॉब्स की रचनाओं में निम्नलिखित प्रमुख हैं—

1. डी सिवे (De Cive)
2. लेवायथन (Leviathan)
3. डी कार पोरे पॉलिटिको (De Car Pore Politico)
4. डी होमाइन (De Homine)
5. कानून के तत्त्व (Elements of Law)
6. गृह युद्ध पर एक वार्ता (A Dialogue on the Civil Wars)

राजनीतिक विचार दर्शन की दृष्टि से इनमें 'लेवायथन' को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है, जिसकी रचना 1651 ई. में हुई।

प्र.5. लॉक की अध्ययन पद्धति किस प्रकार की है?
What is the study method of Locke?

उत्तर लॉक की अध्ययन पद्धति अनुभववादी एवं विवेकवादी है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. लॉक का मानव स्वभाव सम्बन्धी विचार क्या है?
What is Locke's thought of human nature.

उत्तर लॉक मानव को एक नैतिक प्राणी के रूप में स्वीकार करता है।

प्र.7. लॉक का 'सामाजिक समझौता' क्या है?
What is 'Social Contract' of Locke?

उत्तर लॉक 'सामाजिक समझौता' सिद्धान्त का वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन करने वाला प्रमुख दार्शनिक है। उसके सामाजिक समझौते का प्रमुख सार यह है कि वह निरंकुश राजतन्त्र के स्थान पर वैधानिक राजतन्त्र की स्थापना करता है।

प्र.8. लॉक के सामाजिक समझौते की चार विशेषताओं को बताइए।
State the four features of Locke's social contract.

उत्तर लॉक के सामाजिक समझौते की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. इस समझौते में व्यक्तियों ने अपने कुछ ही अधिकारों का त्याग किया है।
2. इस समझौते में अधिकारों का समर्पण सम्पूर्ण समुदाय को किया है।
3. इस समझौते में सरकार सीमित रूप से शासन में भाग लेती है।
4. यह समझौता अनेक नई पीढ़ियों को जन्म देता है।

प्र.9. लॉक के व्यक्तिवाद की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
Briefly explain Locke's individualism.

उत्तर लॉक के सम्पूर्ण राजनीति दर्शन से यह बात प्रतीत होती है कि व्यक्ति ही उसके विचारों का केन्द्र-बिन्दु है। जॉन ने लॉक के व्यक्तिवाद पर गौर करके विचार दिया-'लॉक के दर्शन में प्रत्येक चीज व्यक्ति के चारों ओर चक्कर काटती है। प्रत्येक चीज को इस क्रम में रखा गया कि व्यक्ति की सम्प्रभुता अक्षुण्ण रहे।'

मानसिक शक्तियों के दृष्टिकोण से प्रकृति ने सब मनुष्यों को समान बनाया है यद्यपि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा शारीरिक रूप से अधिक बलिष्ठ और बौद्धिक रूप से अधिक तीक्ष्ण हो सकता है किन्तु यदि सब बातों को ध्यान में रखा जाए तो मनुष्य-मनुष्य में अन्तर अधिक नहीं है।'

प्र.10. सम्प्रभुता के सम्बन्ध में हॉब्स के विचारों की दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Mention two features of Hobbes' thoughts on sovereignty.

उत्तर सम्प्रभुता के सम्बन्ध में हॉब्स के विचारों की दो विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **सर्वशक्तिमान**—सम्प्रभुता सर्वशक्ति का दूसरा नाम है। उसमें राज्य के शासन की विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका से सम्बन्धित सारी शक्तियाँ केन्द्रीभूत होती हैं।
2. **सम्प्रभुता का स्वरूप कानूनी**—हॉब्स ने सम्प्रभुता को कानूनी स्वरूप प्रदान किया हैं। उसके मत में कानूनी स्वरूप उस व्यक्ति अथवा संस्था को प्राप्त माना जाना चाहिए जिसमें अपने आदेशों का पालन कराने की क्षमता हो। सम्प्रभु आदेश रूपों में कानूनों का निर्माण करता है तथा उन्हें बलपूर्वक लागू करता है।

प्र.11. प्राकृतिक अवस्था के सम्बन्ध में लॉक की क्या धारणा है?

उत्तर प्राकृतिक अवस्था में मानव पारस्परिक सहयोग की अवस्था में रहते हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हॉब्स के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की विशेषताएँ बताइए।
State the features of Hobbes' social contract.

उत्तर

हॉब्स के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की विशेषताएँ
(Features of Hobbes' Social Contract)

हॉब्स के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **निरंकुश सम्प्रभु** (Absolute Sovereign)—निरंकुश सम्प्रभु समझौते में शामिल नहीं है तथा उसे समझौते द्वारा सभी मनुष्यों के समस्त अधिकार प्राप्त हैं। सम्प्रभु अपनी सत्ता का प्रयोग अपनी इच्छानुसार करेगा। उसकी सत्ता पर कोई

TOUCH 'n' PASS

प्रतिबन्ध नहीं है। अत: वह व्यक्ति असीम शक्ति प्राप्त कर निरंकुश सम्प्रभु बन बैठा है। सम्प्रभु के समझौते में शामिल न होने के कारण उसे बदला नहीं जा सकता। वह अपने कार्यों के लिए किसी व्यक्ति या संस्था के प्रति उत्तरदायी नहीं है। उसकी शक्तियाँ असीमित हैं।

2. **समझौता सामाजिक व राजनीतिक दोनों** (Social as well as Political Contract)—प्राकृतिक अवस्था में न तो समाज था और न राज्य। मनुष्य ने अपनी प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त अधिकारों का परित्याग कर सामाजिक समझौते के बन्धन को स्वीकार किया है जिसके कारण समाज की उत्पत्ति हुई तथा उस समाज में शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने के लिए राज्य जैसी संस्था का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार इस समझौते की प्रकृति सामाजिक व राजनीतिक दोनों थी।
3. **अल्पमत को विद्रोह का अधिकार नहीं** (Minority has no right to Revolt)—सामाजिक समझौते के सिद्धान्त में अल्पमत को बहुमत के आदेशों का पालन करना पड़ता है। बहुमत के सम्प्रभु के चुनाव में उन्हें कोई भी आपत्ति उठाने का अधिकार नहीं है। यदि वह इस चुनाव में राजधर्म विरोध की स्थिति बनाये रखेंगे तो उन्हें नागरिक समाज से बाहर ही रहना पड़ेगा और बहुमत द्वारा उनका सर्वनाश भी किया जा सकता है। यदि वे राज्य का अंग बने रहना पसन्द करते हैं तब भी उन्हें मौन रूप से बहुमत की इच्छा स्वीकार करनी होगी। अत: हॉब्स के समझौते में अल्पमत की इच्छाओं का कोई स्थान नहीं। अल्पमत के हित बहुमत से जुड़े हुए हैं। अल्पमत को विद्रोह करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।
4. **समझौते का उल्लंघन नहीं** (No Violation of the Contract)—मनुष्य समझौते में शामिल होकर तथा सम्प्रभु को सारे अधिकार सौंपकर बँध जाता है। वह समझौते का उल्लंघन नहीं कर सकता। उसे समझौता भंग करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यदि वह समझौता तोड़ेगा तो वह पुन: प्राकृतिक अवस्था में पहुँच जाएगा। दु:खदायी प्राकृतिक अवस्था में वह कभी वापिस लौटना नहीं चाहेगा। अत: मनुष्य इस समझौते का विरोध करने से डरता है।
5. **सम्प्रभु समझौते का भागीदार नहीं** (The Sovereign was not party to the Contract)—यह समझौता प्राकृतिक अवस्था में मनुष्यों के बीच हुआ है। सम्प्रभु इसमें शामिल नहीं है। जैसा कि एवेन्स्टीन का कहना है—'हॉब्स का सामाजिक समझौता प्रजाजनों के बीच हुआ है। सम्प्रभु समझौते का भागीदार नहीं है, वह तो उसकी उत्पत्ति है।'
6. **समझौता चिरस्थायी है** (Contract is Perpetual)—हॉब्स के अनुसार, समझौता सदा के लिए हुआ है तथा चिरस्थायी है। किसी भी व्यक्ति को इसके उल्लंघन का अधिकार नहीं है। जो व्यक्ति अपने साथ दूसरों की आत्मरक्षा को संकट में डालने का प्रयत्न करते हैं अर्थात् समझौते की शर्तों को तोड़ते हैं, उन्हें मृत्यु-दण्ड देने का अधिकार शासक को प्राप्त है। अत: दण्ड के भय से कोई भी समझौते का उल्लंघन करना नहीं चाहता। इसलिए समझौता चिरस्थायी बन जाता है।
7. **समझौते का उद्देश्य** (Aim of the Contract)—मनुष्यों के जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा कर, उन्हें आन्तरिक तथा बाह्य रक्षा प्रदान कर, शांति स्थापित करना ही समझौते के सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य है। सामाजिक समझौता लोगों के जान-माल की रक्षा की गारण्टी देता है।
8. **सामाजिक समझौता, शासनात्मक नहीं** (Social Contract not Governmental)—हॉब्स के पूर्व, प्रतिपादित समझौता राजा और प्रजा तथा शासक और शासित के बीच होने के कारण शासनात्मक समझौता था। हॉब्स के समझौते ने प्राकृतिक अवस्था में सभी व्यक्तियों के बीच होने के कारण सामाजिक समझौते का रूप धारण किया है।
9. **कानून सम्प्रभु का आदेश** (Law is the Command of Sovereign)—कानून सम्प्रभु का आदेश है। न्याय करने, राष्ट्रों और शक्तियों से युद्ध अथवा सन्धि करने का अधिकार पूर्णत: सम्प्रभु को प्राप्त है। सम्प्रभु के आदेशों को अनियमित नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि वह विवेक तथा नैतिक आचरण का सार है।
10. **व्यक्तिगत समझौता** (Individual Contract)—हॉब्स के अनुसार यह समझौता व्यक्तिगत रूप से हुआ है, सामूहिक रूप से नहीं।

प्र.2. सम्प्रभु के अधिकार व कर्त्तव्य का उल्लेख कीजिए।
Mention the rights and duties of the sovereign.

उत्तर

सम्प्रभु के अधिकार व कर्त्तव्य
(Rights and Duties of Sovereign)

सम्प्रभु के अधिकार वे अधिकार हैं जो उसे करार द्वारा प्राकृतिक मनुष्य में समर्पित किए हैं। सम्प्रभु के अधिकारों की सीमा का निर्णय मनुष्य स्वयं नहीं कर सकता बल्कि प्रकृति ही करती है। सम्प्रभु के कुछ अधिकार उसके कर्त्तव्य भी हैं। उसके प्रथम तीन अधिकार उसके कर्त्तव्य भी हैं। वे अग्रलिखित हैं—

1. **कानून बनाने का अधिकार** (Right to make Law)—यह अधिकार सम्प्रभु का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार है। राजा को कानून बनाते समय उनको समान क्रियान्वित करने का कर्त्तव्य भी होता है। कानून बनाते समय सम्प्रभु का कर्त्तव्य बनता है कि वह ऐसे कानून बनाए जिनसे अधिक से अधिक या लगभग सभी जनता के हितों की पूर्ति होती हो।
2. **कानून की व्याख्या व उसको क्रियान्वित करना** (Right to interpret and implement Law)—सम्प्रभु का यह अधिकार उसका कर्त्तव्य भी है कानून की व्याख्या तथा व्यवस्था है। इसके द्वारा निर्णय करने तथा उस निर्णय को उचित रूप से दण्ड द्वारा क्रियान्वित करने का अधिकार तथा कर्त्तव्य भी सम्प्रभु का है। कानून को लागू करने की बाध्यकारी शक्ति सम्प्रभु के पास ही होती है। कानून को क्रियान्वित करवाने का कर्त्तव्य सम्प्रभु का होता है।
3. **नीति निर्माण का अधिकार** (Right to make Policies)—इस अधिकार द्वारा सम्प्रभु को शासन करने और शासित लोगों की जीवन सुरक्षा के लिए नीति निर्धारित करने का अधिकार प्राप्त है। जन-कल्याण के लिए नीति निर्माण करना उसका कर्त्तव्य भी है। शासक को ऐसी नीतियाँ बनानी चाहिए जिनसे अधिकतम का कल्याण हो।
4. प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए वह मन्त्रियों, सेनापतियों, परामर्शदाताओं, न्यायाधीशों तथा दूसरे सार्वजनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है तथा उनके कार्यों की निगरानी करता है। अत: सम्प्रभु राज्य में प्रशासन का सर्वेसर्वा होता है।
5. सम्प्रभु को राज्य में न्याय की स्थापना हेतु अपराधियों को दण्ड देने का अधिकार है। चोरी, डकैती, हत्या तथा कानून की अवहेलना करने वाला दण्ड का भागीदार होता है।
6. राज्य का सर्वेसर्वा होने के कारण सम्प्रभु को युद्ध या शांति सन्धि करने का अधिकार है।
7. सम्प्रभु का राज्यहित में जनता की सम्पत्ति छीनने व इस विषय में कोई भी कानून बनाने का अधिकार है।
8. उसे प्रजा पर कर लगाने का अधिकार है।
9. सम्प्रभु को अपनी सम्प्रभुता शक्ति को अविच्छिन्न रूप से प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है।
10. राज्य में शान्ति बनाए रखने के लिए सम्प्रभु को भाषण व लेखन पर नियन्त्रण का अधिकार है। सम्प्रभु की स्वीकृति के बिना कोई व्यक्ति अपने सिद्धान्त का प्रसार नहीं कर सकता है।
11. राज्य के नागरिकों को पुरस्कार देने तथा सम्मान देने का अधिकार भी सम्प्रभु को है।
12. नागरिकों के झगड़े सुलझाना व न्याय करना सम्प्रभु का मुख्य कर्त्तव्य है।
13. नागरिकों के जान-माल की सुरक्षा करना भी सम्प्रभु का कर्त्तव्य है।
14. अपराधी को क्षमा करने का अधिकार सम्प्रभु के पास है।
15. अच्छा प्रशासन देना व राज्य में शांति कायम रखना भी सम्प्रभु का प्रमुख कर्त्तव्य है।
16. प्रजा को सन्तुष्ट जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उपलब्ध कराना भी सम्प्रभु का कर्त्तव्य है।
17. राज्य की उन्नति के प्रयास करना, कानून की समानता, न्याय का समान रूप से क्रियान्वित तथा समानतापूर्वक कर की सुविधा प्रदान करना सम्प्रभु के प्रमुख कर्त्तव्य हैं।

प्र.3. हॉब्स के चिन्तन पर किन परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ा?
What circumstances influenced Hobbes' thoughts?

उत्तर

हॉब्स के चिन्तन पर परिस्थितियों का प्रभाव
(Influence of Circumstances on the Thoughts of Hobbes)

हॉब्स के चिन्तन पर जिन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा वे निम्नलिखित हैं—

1. **इंग्लैण्ड में गृह-युद्ध** (Civil War in England)—हॉब्स के युग में इंग्लैण्ड में गृह युद्ध के कारण अराजकता का माहौल था। सर्वोच्चता को लेकर राजा और संसद में संघर्ष छिड़ा हुआ था। इस अशांत वातावरण ने हॉब्स के चिन्तन पर गहरा प्रभाव डाला। वह स्थायी शांति की स्थापना का मार्ग तलाश करना चाहता था। इस अशांत वातावरण और अराजकता की स्थिति से निपटने के लिए हॉब्स ने मानव स्वभाव का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि शांति की स्थापना शक्तिशाली राजतन्त्र की स्थापना द्वारा ही संभव है। उसने निष्कर्ष निकाला कि प्रभुसत्ता को राजा और संसद में बाँटने से इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसका समाधान तो पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न राजतन्त्र में ही सम्भव है। गृहयुद्ध के कारणों पर विचार करते हुए हॉब्स ने प्यूरिटन मत (ईसाई धर्म की एक शाखा) की धार्मिक मान्यताओं एवं मांगों को

TOUCH 'n PASS

गृहयुद्ध का प्रमुख कारण बताया है। उन्होंने सुझाव दिया कि धर्मनिरपेक्ष राजनीति की अवधारणा ही गृहयुद्ध का सच्चा और स्थायी समाधान है। इसलिए उन्होंने धर्म को राजनीति से जोड़ते हुए, धर्म को राजनीति के अधीन रखने का सुझाव दिया है।

2. **विज्ञान का विकास** (Development of Science)—हॉब्स का युग विज्ञान का युग था। इस युग में वैज्ञानिक क्रांति का सूत्रपात व विकास हो रहा था। हॉब्स विज्ञान की अनदेखी नहीं कर सकता था। वह वही युग था, जब कैप्लर, गैलिलियो, यूक्लिड तथा डेकार्टे की खोजों ने यन्त्र विज्ञान की स्थापना करके मानव विकास को प्रभावित किया था। हार्वे तथा गिलबर्ट ने शरीर विज्ञान तथा चुम्बकत्व के बारे में खोजें प्रस्तुत की। हॉब्स ने इस वैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित होकर राजनीतिशास्त्र में इनके प्रयोग की स्वीकृति प्रदान कर दी। उसे ऑक्सफोर्ड के मध्ययुगीन दर्शन से घृणा हो गई और स्वाभाविक रूप से उसका चिन्तन विज्ञान की ओर मुड़ा। हॉब्स ने वैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित होकर अपने चिन्तन का आधार गैलिलियो के गति के नियमों को बनाया। उसने महसूस किया कि विज्ञान व गणित के नियमों को अन्य शास्त्रों के अध्ययन के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए वैज्ञानिक क्रान्ति ने हॉब्स का चिन्तन ही बदल डाला और हॉब्स के चिन्तन को नई दिशा प्रदान की।
3. **सामन्तवाद का पतन** (Decline of Feudalism)—विज्ञान के आविष्कारों के कारण समाज के परम्परागत ढाँचे का पतन होने लग गया और एक शक्तिशाली नए सामाजिक वर्ग (व्यापारी वर्ग) का उदय हुआ। इस नए सामाजिक वर्ग ने सामंतवादी व्यवस्था को चुनौती दी। हॉब्स ने इस वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। हॉब्स ने अपने चिन्तन के अन्तर्गत राज्य को एक कृत्रिम संस्था और मात्र एक साधन का रूप माना। उसने व्यक्तियों की पूर्ण समानता के अधिकार को स्वीकारा। उसने एक ऐसे निरंकुश राजतन्त्र का समर्थन किया जिसमें नवीन बुर्जुआ वर्ग के विकास की पूर्ण सम्भावनाएँ हो।

प्र.4. लॉक के सामाजिक समझौते में सरकार के कार्यों तथा उसकी सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the functions and limitations of government in Locke's social contract.

उत्तर

लॉक के सामाजिक समझौते में सरकार के कार्य तथा उसकी सीमाएँ
(Functions and Limitations of Government in Locke's Social Contract)

लॉक के सामाजिक समझौते की एक विशेष बात यह है कि जिस यन्त्र द्वारा सरकार अपनी शक्ति और अधिकार प्राप्त करती है, उसे लॉक संविदा कहकर नहीं पुकारता, वरन् वह उसे 'ट्रस्ट' (Trust) या धरोहर कहता है। समाज तथा सरकार के पारस्परिक सम्बन्ध को सूचित करने के लिए लॉक ने संविदा के स्थान पर ट्रस्ट शब्द का प्रयोग इसलिए किया कि वह सरकार को समाज के अधीन रखना और इस बात पर जोर देना चाहता था कि सरकार जनहित के लिए स्थापित है और ट्रस्ट की अवहेलना करने पर उसे हटाया जा सकता है। इस प्रसंग में संविदा शब्द के प्रयोग का अर्थ यह होता है कि सरकार और जनता में समानता का सम्बन्ध है और यह बात उसे मान्य न थी। हारमोन के शब्दों में लॉक की इस ट्रस्ट की धारणा के अनुसार, 'सरकार को जनता के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं, सरकार के तो जनता के प्रति कर्त्तव्य ही हैं।'' इस सम्बन्ध में वाहन ने लिखा है, 'संविदा के स्थान पर ट्रस्ट की धारणा को अपनाकर लॉक न केवल सरकार के ऊपर जन नियन्त्रण की व्यवस्था करता है, वरन् एक उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात का प्रतिपादन करता है, वह है अनुभव के आधार पर उस नियन्त्रण का दिन-प्रतिदिन प्रसरण।'

ट्रस्ट की स्थापना समाज के द्वारा अपने हित के लिए की गयी है, अत: सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह ट्रस्ट के अनुसार कार्य करे। यदि सरकार ट्रस्ट की मर्यादाओं का उल्लंघन करती है, तो समाज को अधिकार प्राप्त है कि वह सरकार को भंग कर दे।

जहाँ तक सरकार के कार्यों और ट्रस्ट द्वारा सरकार पर लगायी गयी सीमाओं का सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में लॉक का कथन है, 'मनुष्यों के राज्य में संगठित होने तथा अपने आप को सरकार के अधीन रखने का महान् एवं मुख्य उद्देश्य अपनी सम्पत्ति की रक्षा करना है। यहाँ पर लॉक के द्वारा सम्पत्ति शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया गया है और उसकी सम्पत्ति की धारणा के अन्तर्गत सम्पत्ति के अतिरिक्त जीवन तथा स्वतन्त्रता भी सम्मिलित है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन, सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए सरकार को तीन कार्य करने होते हैं। उनका प्रथम कार्य मानव जीवन को व्यवस्थित रखने और समस्त विवादों का निर्णय करने के लिए उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय का मापदण्ड निर्धारित करना है अर्थात् प्राकृतिक कानून की सर्वमान्य व्याख्याएँ प्रस्तुत करना है। यह कार्य सरकार के व्यवस्थापक अंग का है। सरकार का दूसरा कार्य एक ऐसी निष्पक्ष शक्ति की स्थापना करना है जो कि स्थापित कानूनों के अनुसार व्यक्तियों के पारस्परिक विवादों पर निर्णय दे सके। इसे हम सरकार का न्यायिक कार्य कह सकते

हैं। सरकार का तीसरा कार्य है दूसरे समाजों तथा दूसरे नागरिकों से समाज तथा उसके नागरिकों के हितों की रक्षा करना। युद्ध की घोषणा, शान्ति स्थापित करना, दूसरे राज्यों से सन्धि करना व न्यायपालिका के निर्णयों को क्रियान्वित करना इसके अन्तर्गत आते हैं। इन्हें सरकार के कार्यपालिका कार्य कहा जा सकता है।

लॉक का कथन है कि इन तीनों कार्यों के सम्पादन के लिए पृथक्-पृथक् गुणों तथा शक्तियों की आवश्यकता होती है। इसलिए इन शक्तियों तथा कार्यों में पृथक्करण होना चाहिए। जो लोग कानून बनाते हैं, उन्हीं को उनकी व्याख्या का अधिकार दे देना बुद्धिहीनता है। इसलिए न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को तो एक-दूसरे से पृथक् ही रखा जाना चाहिए। यद्यपि न्यायिक तथा कार्यपालिका कार्यों में स्पष्ट भेद है तथा लॉक ये दोनों ही कार्य एक अंग को सौंपने के लिए तैयार हैं क्योंकि ये दोनों अंग समाज की सशक्त शक्ति के आधार पर ही अपना कार्य कर सकते हैं। हारमोन इस सम्बन्ध में लिखते हैं, 'लॉक के युग में न्याय का कार्य भी कार्यपालिका के अधीन माना जाता था। अत: लॉक इसके लिए पृथक न्यायपालिका की व्यवस्था नहीं बताता। निस्सन्देह वह पृथक तथा निष्पक्ष न्याय व्यवस्था का समर्थन करता है, परन्तु न्यायपालिका के पृथक्करण तथा स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को नहीं मानता। इस प्रकार लॉक शक्ति विभाजन की प्रस्थापना करता है, परन्तु उसने इस सिद्धान्त की रचना उतनी सुनिश्चित रूप से नहीं की है, जितनी कि माण्टेस्क्यू ने।

प्र.5. लॉक के राज्य की विशेषताओं को लिखिए।
Write the features of Locke's state.

उत्तर

लॉक के राज्य की विशेषताएँ
(Features of Locke's State)

लॉक ने सामाजिक समझौते के आधार पर जिस राज्य की स्थापना की है और उसके द्वारा अपने ग्रन्थों में राज्य पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं, उनके आधार पर लॉक के राज्य की विशेषताओं का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. **राज्य मानव कल्याण का एक साधन मात्र है**—लॉक की विचारधारा के अन्तर्गत व्यक्ति को साध्य और राज्य को मात्र एक साधन की स्थिति प्रदान की गयी है। राज्य व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति राज्य के लिए नहीं। लॉक के अनुसार, 'शासन का उद्देश्य समुदाय का कल्याण है।' आदर्शवादी विचारकों के समान लॉक राज्य को किसी प्रकार की रहस्यात्मक श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता, वह तो व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की रक्षा का एक साधन मात्र है। राज्य का महत्त्व उसी सीमा तक है, जिस सीमा तक वह उस लक्ष्य की प्राप्ति करता है।
2. **राज्य का आधार है जन सहमति**—लॉक की राज्य सम्बन्धी विचारधारा का प्रथम और अन्तिम स्वर जन सहमति है। लॉक ने राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में समझौता सिद्धान्त को अपनाया है, जिसका मूल विचार यह है कि राज्य की स्थापना जन सहमति के आधार पर हुई है। इसके अतिरिक्त, लॉक का राज्य वर्तमान परिस्थितियों में जन सहमति पर ही टिका हुआ है। लॉक के अनुसार जनता राज्य की आज्ञाओं का पालन इसलिए करती है कि राज्य की सत्ता जन सहमति पर आधारित है और राज्य की आज्ञाओं का पालन करना जनता के हित में है, किन्तु यदि शासक वर्ग केवल अपने स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए मनमाना शासन करने की प्रवृत्ति को अपनाये, तो ऐसी परिस्थिति में जनता शासन की आज्ञाओं का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है।
3. **सीमित सत्ता वाला राज्य**—लॉक के राज्य की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसे सीमित शक्तियाँ ही प्राप्त हैं, निरपेक्ष या असीमित सत्ता नहीं। स्वयं लॉक के शब्दों में, 'राज्य को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु न्यासधारी शक्तियाँ ही प्राप्त हैं अर्थात् उसकी शक्ति लोक-कल्याण के लक्ष्य की सिद्धि के लिए ही है। जिस साधन के आधार पर सरकार के द्वारा अपनी शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त किये गये हैं, उसे 'संविदा' (Contract) कहकर नहीं पुकारता, वरन् वह उसे 'ट्रस्ट' (Trust) कहता है। 'ट्रस्ट' में यह भाव निहित है कि सरकार की शक्तियाँ सीमित हैं और यदि सरकार ट्रस्ट की सीमाओं का उल्लंघन करती है तो समाज को अधिकार है कि वह सरकार को भंग कर दे।

सरकार की शक्ति पर सबसे प्रमुख सीमा प्राकृतिक कानून और प्राकृतिक अधिकारों की है, जिनके विरुद्ध राज्य के द्वारा कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता है। लॉक शासन की 'सीमित सत्ता' पर अधिक बल देता है और उसकी रचना 'शासन पर दो निबन्ध' (Two Treatises on Government) में कहीं पर भी सम्प्रभुता शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। सम्भवतया लॉक के राजनीतिक चिन्तन का सबसे प्रमुख लक्ष्य ही शासन की सत्ता को मर्यादित करना है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. लॉक के अनुसार क्रांति या राज्य के विरोध अधिकार का उल्लेख कीजिए।
Mention the right of revolution or resistance according to Locke.

उत्तर

क्रान्ति या राज्य के विरोध का अधिकार
(Right of Revolution or Resistance)

लॉक के अनुसार राज्य का निर्माण लोकहित के कुछ विशेष लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। अत: राज्य की शासन की शक्ति सीमित है तथा उसे एक 'न्यासी' (Trustee) के रूप में ही यह शक्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, राज्य तथा शासन की यह शक्ति जन सहमति पर आधारित है। इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह है कि यदि शासन निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति में असफल रहे अथवा यदि वह अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन करने लगे तो, ऐसी स्थिति में जनता को उसके विरुद्ध विद्रोह या क्रान्ति करने का अधिकार प्राप्त है। जनता अपने इस अधिकार का प्रयोग कर शासन में इच्छानुसार परिवर्तन कर सकती है या उसे अपदस्थ भी कर सकती है। उसके अनुसार, 'जब जनता यह अनुभव करे कि व्यवस्थापिका (सरकार) उसमें रखे जाने वाले विश्वास के प्रतिकूल कार्य कर रही है तो जनता को यह सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है कि वह उसे हटा दे या बदल दे।''

लॉक का विचार है कि समाज का स्थान सरकार से ऊपर होने के कारण सरकार के भंग होने पर भी समाज ज्यों-का-त्यों बना रहता है। इस प्रकार सरकार की पदच्युति सामाजिक अव्यवस्था का कारण नहीं बनती है। लॉक जनता के क्रान्ति करने के अधिकार पर दो सीमाएँ अवश्य ही लगाता है। प्रथम, क्रान्ति तभी की जानी चाहिए जब शासक जनता के अधिकारों की रक्षा करने में अक्षम हो और शासक वर्ग के अत्याचार ऐसी स्थिति में पहुँच जाये कि उन्हें सहन करना सम्भव न हो। द्वितीय, क्रान्ति के अधिकार का प्रयोग समाज के बहुमत द्वारा ही किया जा सकता है, अल्पमत द्वारा नहीं। क्रान्ति के अधिकार पर लगायी गयी ये सीमाएँ निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और इन सीमाओं के कारण क्रान्ति के अधिकार के दुरुपयोग की आशंकाएँ बहुत कम हो जाती हैं।

इस प्रकार की सीमाएँ बतलाने के बावजूद लॉक ने जनता के विद्रोह और क्रान्ति के अधिकार पर इतना अधिक बल दिया है कि उस पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसने शासन विषयक सिद्धान्त का नहीं, वरन् क्रान्ति विषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उसके इस सिद्धान्त का अमेरिकी स्वातन्त्र्य सेनानी जैफरसन तथा अन्य राजनीतिज्ञों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसी आधार पर उसे 'क्रान्तियों का दार्शनिक' (Philosopher of Revolution) भी कहा जाता है। यह तथ्य है कि लॉक ने अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1688 की इंग्लैण्ड की 'गौरवपूर्ण क्रान्ति' को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए किया था।

प्र.7. रूसो के सामाजिक समझौते की विशेषताएँ बताइए।
State the features of social contract of Rousseau.

उत्तर

रूसो के सामाजिक समझौते की विशेषताएँ
(Features of Social Contract of Rousseau)

रूसो द्वारा प्रतिपादित समझौता सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. रूसो के समझौते के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के दो रूप दिखायी पड़ते हैं : प्रथम, व्यक्तिगत दूसरा, समूहगत । समझौते के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति अपने समस्त अधिकारों का समर्पण कर देता है। किन्तु अधिकारों का यह समर्पण किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं, वरन् सम्पूर्ण समाज के प्रति किया जाता है। क्योंकि व्यक्ति भी इस सम्पूर्ण समाज का सदस्य होता है, इसलिए समाज का सदस्य होने के नाते समूहगत व्यक्तित्त्व के आधार पर अपनी वे शक्तियाँ वह फिर से प्राप्त कर लेता है।
2. इस समझौते के आधार पर व्यक्ति की स्वतन्त्रता सीमित नहीं होगी, वरन् यह वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा क्योंकि जनहित में कार्य करना या कर्त्तव्य भावना का पालन ही स्वतन्त्रता है, इसलिए जब राज्य मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुसार नहीं, वरन् जनहित के लिए कार्य करने के लिए बाध्य करेगा, तो वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र होने के लिए बाध्य किया जायेगा। इस प्रकार राज्य की असीमित शक्ति से व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अन्त नहीं होगा, वरन् उसे वास्तविक नैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी।
3. समझौते के आधार पर जिस सामान्य इच्छा का निर्माण होता है, वह सामान्य इच्छा सभी व्यक्तियों के लिए सर्वोच्च होती है और प्रत्येक व्यक्ति उसके अधीन होता है। यह सामान्य इच्छा ही, 'राज्य', 'प्रभु', 'शक्ति', आदि सब कुछ है।
4. समझौते के आधार पर निर्मित सामान्य इच्छा सदैव ही न्याययुक्त होती है और जनहित उसका लक्ष्य होता है। व्यक्ति स्वयं अपने हित के सम्बन्ध में ठीक प्रकार से विचार नहीं कर सकता, उसका हित तो सामान्य इच्छा द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलने में ही है।

TOUCH 'n' PASS

5. यह सामाजिक समझौता मनुष्यों की स्थिति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर देता है। व्यक्ति के आचरण में प्राकृतिक शक्ति का स्थान न्याय ले लेता है, और उसमें एक प्रकार की नैतिकता आ जाती है। रूसो के शब्दों में, 'जो कुछ समझौते से मनुष्य खोता है वह है प्राकृतिक स्वतन्त्रता और किसी भी वस्तु को पाने का असीमित अधिकार। जो कुछ वह पाता है वह है सामाजिक स्वतन्त्रता और अपनी वस्तुओं पर स्वामित्व।'

रूसो केवल सामाजिक समझौते को ही स्वीकार करता है, राजनीतिक समझौते को नहीं। समझौते से किसी सरकार की नहीं वरन् सामान्य इच्छा पर आधारित प्रभुत्वसम्पन्न समाज की स्थापना होती है। रूसो के समाज या राज्य की सर्वोच्च शक्ति सामान्य इच्छा है जो असीमित, अविभाज्य, विधि का स्रोत और आदर्श होती है।

इस प्रकार रूसो के समझौते द्वारा उस लोकतन्त्रीय समाज की स्थापना होती है जिसके अन्तर्गत सम्प्रभुता सम्पूर्ण समाज में निहित है और शासन कार्य सामान्य इच्छा के आधार पर किया जाता है।

प्र.8. रूसो की सामान्य इच्छा का महत्त्व समझाइए।
Explain the importance of Rousseau's general will.

उत्तर

रूसो की सामान्य इच्छा का महत्त्व
(Importance of Rousseau's General Will)

आलोचनाओं के बावजूद इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि रूसो का सामान्य इच्छा का विचार राजनीतिक विचारधारा के लिए महत्त्वपूर्ण देन है। इसके महत्त्व को निम्न रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है—

1. रूसो का सामान्य इच्छा का विचार प्रजातन्त्र का प्रतिष्ठापक है क्योंकि उसका यह विश्वास है कि सत्ता का आधार जन स्वीकृति है, जनता की इच्छा सर्वोपरि है, विधि-निर्माण में जनता का प्रत्यक्ष सहयोग वांछित है, सरकार सतत् रूप में जनता के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए, आदि। सामान्य इच्छा का विचार राजनीतिक क्षेत्र में हमारे सम्मुख एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करता है, जिसकी प्राप्ति सदैव ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। इस सम्बन्ध में मैकाइवर ने ठीक ही कहा है कि 'सामान्य इच्छा का प्रयोग मात्र शासन को स्वशासन में परिणत कर देता है।
2. सामान्य इच्छा का सिद्धान्त राष्ट्रवाद का प्रेरक सिद्धान्त भी है क्योंकि सामान्य इच्छा की धारणा में यह आशय मिलता है कि जिस जीवन में समता, स्वभाव, एकता, साहचर्य, समर्पण, आत्मीयता तथा सम्मान की भावना है, वही जीवन श्रेष्ठ है।
3. सामान्य इच्छा की धारणा ने भावनावादी तथा रोमांचवादी आन्दोलन पर भी प्रभाव डाला तथा इसे फ्रांस की क्रान्ति का प्रेरक-विचार कहा जा सकता है। जर्मन विद्वान शिलर प्रकृति तथा भावना के प्रतिपादक रूसो को नवयुवकों का पथ-प्रदर्शक मानता है और यह कहा जाता है कि राब्सपीयर (Robespierre) के तत्त्वावधान में तथा इसके परिणामस्वरूप फ्रांस तथा अन्य देशों में जो क्रान्तियाँ हुईं, उसका सन्देश रूसो की पुस्तक 'सामाजिक अनुबन्ध' में वर्णित सामान्य इच्छा के सन्दर्भ में है।
4. इस सिद्धान्त में व्यक्ति तथा सामाजिक हित दोनों को प्रधानता दी गयी है।
5. यह सिद्धान्त व्यक्ति अथवा समाज में शरीर तथा उसके अंगों के समान सम्बन्ध स्थापित करके सामाजिक स्वरूप को सुदृढ़ करता है।
6. यह सिद्धान्त इस सत्य का प्रतिपादन करता है कि राज्य एक स्वाभाविक और अनिवार्य संस्था है और राज्य ही सामान्य इच्छा को क्रियात्मक रूप देने का साधन है। जी. डी. एच. कोल के शब्दों में, 'यह हमें सिखाता है कि राज्य मनुष्य की प्राकृतिक आवश्यकताओं और इच्छाओं पर आधारित है। राज्य के प्रति हमें इसलिए आज्ञाकारी होना चाहिए क्योंकि यह हमारे व्यक्तित्त्व का ही प्राकृतिक विस्तृत रूप है।''

इसी प्रकार सामान्य इच्छा के विचार के महत्त्व के सम्बन्ध में डब्ल्यू. टी. जोन्स ने लिखा है, 'सामान्य इच्छा की कल्पना रूसो के राजनीतिक सिद्धान्त का एक केन्द्रीय विचार ही नहीं है, यह सिद्धान्त राजनीतिशास्त्र के लिए भी उसकी एक अत्यन्त रुचिकर तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन है।'' ओसवार्न ने भी लिखा है कि 'रूसो द्वारा प्रतिपादित सामान्य इच्छा का सिद्धान्त राजनीतिक दर्शन के लिए उसका सबसे मौलिक ही नहीं वरन् सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान है।''

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. अंग्रेजी भाषा-भाषी जातियों ने जितने भी राजनीतिक दार्शनिकों को जन्म दिया है, उनमें हॉब्स कदाचित महानतम है।'' इस कथन के आधार पर हॉब्स के विचारों का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

"Hobbes probably is the greatest writer on political philosophy that the English speaking people have produced." On the basis of this statement, explain the importance of Hobbes's thoughts.

उत्तर

हॉब्स के विचार
(Thoughts of Hobbes)

यद्यपि राजनीतिक विचारकों में हॉब्स के आलोचक अधिक और प्रशंसक कम हैं, परन्तु हॉब्स का महत्त्व अतिशयोक्ति प्राप्त करने योग्य है राजनीतिक दर्शन को उसका अनुदाय अपूर्व है। सेबाइन की उसके सम्बन्ध में धारणा है कि 'अंग्रेजी भाषाभाषी जातियों ने जितने भी राजनीतिक दार्शनिकों को जन्म दिया है, हॉब्स कदाचित उन सबमें महानतम है।'' डनिंग ने हॉब्स को 'राजनीतिक चिन्तकों की प्रथम श्रेणी' के अन्तर्गत रखा है और मैक्सी ने लिखा है कि, 'हॉब्स अंग्रेज जाति का एक महानतम चिन्तक था।'' इसी प्रकार, प्रो. ओकशॉर्ट लेवायथन के सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'वह अंग्रेजी भाषा में राजनीतिक दर्शन का सबसे महान और कदाचित एकमात्र महान ग्रन्थ है।' राजनीतिक दर्शन को हॉब्स के अनुदाय का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है—

वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग—हॉब्स के महत्त्व का सर्वप्रथम कारण यह है कि उसने राज्य के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया। हॉब्स का सम्पूर्ण चिन्तन क्रमबद्ध तथा समन्वित है, उसने संगतिबद्ध तर्क उपस्थित किये हैं तथा अपने निष्कर्षों पर दृढ़ता से कायम है। यदि हम उसके प्रारम्भ बिन्दु को स्वीकार कर लें, तो उसके अन्तिम परिणाम को ठुकराना असम्भव है। उसने राजनीतिक अन्वेषण की एक नवीन प्रणाली का सूत्रपात किया और मध्य युग की धार्मिक तथा पुरातनपन्थी विवेचना के स्थान पर एक वैज्ञानिक तथा तार्किक पद्धति का श्रीगणेश किया। उसकी चिन्तनधारा में जिस तार्किक तीक्ष्णता के दर्शन होते हैं, वह बर्क, बेन्थम, जे. एस. मिल और लॉक के दर्शन में भी दुर्लभ है। एक आधुनिकतम लेखक हारमोन का निष्कर्ष है कि 'हॉब्स की रचना तर्कशास्त्र का सर्वोत्तम ग्रन्थ है।' बेकन की उक्ति है कि 'सत्य का प्रादुर्भाव अनिश्चय की अपेक्षा गलती से अधिक सरलतापूर्वक होता है।' इस दृष्टि से हॉब्स का दर्शन सत्य की खोज का एक श्रेष्ठ प्रयत्न है।

राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त का अभिनवीकरण—हॉब्स का दूसरा अनुदाय यह है कि उसने राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त का अभिनवीकरण किया। हॉस के पूर्व भी समझौते द्वारा राज्य की उत्पत्ति की कल्पना की गयी थी, लेकिन इन कल्पनाओं में राज्य को ईश्वरीय देन ही माना गया था। हॉब्स ने अपने पूर्ववर्तियों के विचारों का खण्डन कर यह प्रतिपादित किया कि राज्य ईश्वरीय इच्छा का नहीं वरन् मानवीय इच्छा का ही परिणाम है। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य के कार्यों और उद्देश्य के बारे में मानव मस्तिष्क ने सोचना प्रारम्भ किया, जिससे एक ओर तो राजदर्शन समृद्ध हुआ और दूसरी तरफ जन-कल्याणकारी राज्य जैसी विचारधाराओं के आधार पर जनहित की प्रेरणा मिली।

निरपेक्ष और असीम प्रभुत्व शक्ति का प्रतिपादन—राजदर्शन के इतिहास में हॉब्स की रचना निरपेक्ष और असीम प्रभुत्व शक्ति का प्रथम प्रतिपादन है। यद्यपि हॉब्स के पूर्व ही बोदां यह कह चुका था कि 'सम्प्रभुता राज्य की वह सर्वोच्च शक्ति है जिस पर कानून का कोई बन्धन नहीं है', तथापि वह प्राकृतिक कानून, संवैधानिक कानून और ईश्वरीय कानून द्वारा सम्प्रभुता की सीमा निर्धारित करता है, किन्तु हॉब्स ने राज्य की प्रभुत्व शक्ति का सांगोपांग तथा क्रमबद्ध सिद्धान्त विकसित किया और सम्प्रभुता की समस्त परम्परागत बाधाओं और सीमाओं से मुक्त कर दिया। राजनीतिक सत्ता को ऊँचा उठाने में हॉब्स मैकियावेली से भी आगे बढ़ सकता है। डनिंग ने लिखा है, 'जबकि मैकियावेली ने व्यवहार के रूप में राजनीति को धर्म तथा नीतिशास्त्र से स्वतन्त्र और पृथक किया, हॉब्स ने एक दार्शनिक धारणा के रूप में राजनीति को धर्म तथा नीति से उच्च स्थान प्रदान किया।'' इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि ऑस्टिन ने सम्प्रभु शासन की उसकी कल्पना से प्रभावित होकर ही सम्प्रभुता की न्यायशास्त्रीय ढंग से परिभाषा की।

राजनीति को उच्च स्थिति प्रदान करना—हॉब्स का एक बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान इस बात में है कि उसने राजनीतिशास्त्र को न केवल धर्म और नीतिशास्त्र से पृथक् किया, वरन् उसे एक स्वतन्त्र और उच्च स्थिति प्रदान की। मध्यकालीन लेखक बाइबिल के आधार पर तर्क करते हुए दैवी और प्राकृतिक नियमों पर बहुत बल देते थे; हॉब्स ने इन्हें अस्वीकार करते हुए धर्मसत्ता को राजसत्ता का वशवर्ती बनाया और सर्वोच्च सांसारिक सत्ता के रूप में राज्य और उसकी सम्प्रभुता को प्रतिष्ठित किया। हॉब्स की अपने विषय के प्रति वह निश्चित रूप से बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण सेवा है।

व्यक्तिवाद का एक शक्तिशाली वक्तव्य—हॉब्स का दर्शन केवल प्रभुत्व शक्ति के सिद्धान्त का ही समर्थन नहीं, वरन् व्यक्तिवाद का एक शक्तिशाली वक्तव्य भी है। हॉब्स हमें यह भूलने नहीं देता कि राज्य का अस्तित्त्व मानवीय रक्षा और अन्य मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही है। उसके लिए राज्य स्वयं अपने में ही साध्य नहीं है, वह तो एक साधन है, उसका साध्य तो व्यक्ति की सुरक्षा और कल्याण ही है। उसके दर्शन में जन इच्छा और सामान्य इच्छा जैसी रहस्यात्मक धारणाओं के लिए कोई स्थान नहीं है और वह राज्य को व्यक्तियों के व्यक्तित्त्व से अलग कोई व्यक्तित्त्व प्रदान करने के लिए तैयार नहीं है। हॉब्स के अनुसार तो व्यक्तियों के निजी हितों का योग ही सामाजिक हित है। हॉब्स की ये धारणाएँ व्यक्तिवाद का शक्तिशाली वक्तव्य हैं और आगे के विचारकों ने इनसे प्रेरणा ग्रहण की है।

उपयोगितावाद का आधार—हॉब्स के विचारों में उपयोगितावाद के समर्थन की झलक भी मिलती है। उसके विचार से व्यक्ति स्वभाव से स्वार्थी है और उसके कार्यों का प्रमुख प्रेरक तत्त्व आत्मलाभ ही होता है। हॉब्स की दृष्टि से राज्य का अस्तित्त्व तथा एकमात्र औचित्य उसकी उपयोगिता है। यह व्यक्ति के हित को सर्वोपरि मानता है और उसके अनुसार निजी हितों का योग ही सामाजिक हित है। इस प्रकार उसने राज्य को परस्पर विरोधी हितों का मध्यस्थ बनाकर उपयोगितावादियों का मार्ग प्रशस्त किया है। वेपर के अनुसार तो वह उपयोगितावादियों से भी आगे चलने वाला है। हॉब्स की विचारधारा के इस पहलू को बेन्थम तथा उसके अनुयायियों ने विकसित कर उपयोगितावाद का विधिवत् रूप में प्रतिपादन किया।

वस्तुत: सम्प्रभुता, व्यक्तिवादी विचारधारा, भौतिकवादी दर्शन और उपयोगितावाद, आदि के आधुनिक रूपों का जन्मदाता वही था। वेपर इस सम्बन्ध में लिखते हैं, 'यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि जेरेमी बेन्थम यहाँ भी उतना ही ऋणी है जितना सुख विषयक हॉब्स के विचारों का। आने वाली सन्तति का प्राय: उससे मतभेद रहा है, परन्तु यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि उसमें उन्हें एक ऐसी खान मिली है जिसका खोदना उसके लिए श्रेयस्कर है, क्योंकि उसमें से एक मूल्यवान धातु निकलती है।'

प्र.2. हॉब्स की विचारधारा में व्यक्तिवाद का वर्णन कीजिए तथा इनके विचारों की आलोचना कीजिए।
Describe individualism in the ideology of Hobbes and criticize his thoughts.

उत्तर

हॉब्स की विचारधारा में व्यक्तिवाद
(Individualism in the Ideology of Hobbes)

हॉब्स ने जहाँ एक ओर निरंकुश तथा असीमित सम्प्रभुता का प्रतिपादन किया है वहाँ दूसरी ओर उसकी विचारधारा में व्यक्तिवाद के भी स्पष्ट और प्रबल दर्शन होते हैं। यह बात असंगतिपूर्ण लगने पर भी वस्तुत: है पूर्णतया सत्य।

व्यक्तिवाद की मूल धारणा यह है कि जितने भी संघ, समुदाय, अन्य संस्थाएँ या राज्य हैं, वे व्यक्तियों द्वारा ही निर्मित हैं, व्यक्ति ही उनकी इकाई है और ये सब अपने में सम्मिलित व्यक्तियों से अधिक या भिन्न कुछ भी नहीं हैं। इस दृष्टिकोण से व्यक्ति साध्य है और राज्य साधन मात्र। अत: व्यक्ति की बुराई-भलाई, सुख-दुख, आदि को राज्य और अन्य समुदाय की बुराई-भलाई या सुख-दुख समझा जाना चाहिए।'

इस दृष्टि से हॉब्स पूर्ण व्यक्तिवादी है। डनिंग ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'हॉब्स के सिद्धान्त में राज्य की शक्ति का उत्कर्ष होते हुए भी उसका मूल आधार पूर्ण रूप से व्यक्तिवादी है। वह सब व्यक्तियों की प्राकृतिक समानता पर उतना ही बल देता है जितना कि मिल्टन या अन्य किसी क्रान्तिकारी विचारक ने दिया है।'

हॉब्स की विचारधारा में व्यक्तिवाद निम्न रूपों में देखा जा सकता है—

1. **मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा**—हॉब्स की मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा व्यक्तिवादी विचारधारा के अनुकूल है, समाजवाद या आदर्शवाद के अनुकूल नहीं। हॉब्स अरस्तू के समान व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी नहीं मानता वरन् असामाजिक प्राणी कहता है जो आत्मकेन्द्रित है और मनोवेगों, अहं और लोभ से प्रेरित होता है। हॉब्स की विचारधारा के अन्तर्गत यह व्यक्तिवाद का मनोवैज्ञानिक तत्त्व है और इसके आधार पर केवल व्यक्तिवादी धारणा की ही रचना हो सकती है।
2. **राज्य एक कृत्रिम संस्था है**—हॉब्स एक समझौतावादी विचारक है और उसके अनुसार राज्य एक कृत्रिम संस्था है जिसका निर्माण सामाजिक समझौते के आधार पर हुआ है। हॉब्स का व्यक्ति प्राकृतिक अवस्था में पूर्ण स्वतन्त्र था और राज्य का निर्माण व्यक्तियों ने कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया है। इस प्रकार हॉब्स राज्य के प्रति समस्त भावनात्मकता का त्याग कर उसे विशुद्ध उपयोगिता के स्तर पर ले जाता है। हॉब्स का यह विचार निरंकुश राज्य के अनुरूप नहीं, वरन् व्यक्तिवाद के अनुरूप ही है। इसी कारण तो प्रो. सेबाइन 'लेवायथन' के सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'उसके सिद्धान्त स्टुअर्ट राजाओं को जिनका कि वह समर्थन करना चाहता है दम्भपूर्ण उक्तियों के कम-से-कम उतने ही विरुद्ध थे, जितने कि उन क्रान्तिकारियों के, जिनका वह खण्डन करना चाहता था।''

3. **राज्य साधन है, व्यक्ति साध्य**—राज्य को एक कृत्रिम संस्था और समझौते का परिणाम मानने का तार्किक निष्कर्ष यह है कि राज्य साधन है और साध्य है व्यक्ति राज्य व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति राज्य के लिए नहीं और राज्य का अस्तित्त्व व्यक्ति के जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए है। वेपर ने लिखा है कि, 'राज्य मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विद्यमान है और इसे नैतिक सत्ता शासितों की सहमति से प्राप्त होती है.....राज्य व्यक्तियों का लक्ष्य नहीं, वरन् व्यक्तिगत राज्य का लक्ष्य है।'
4. **व्यक्ति को राज्य के प्रतिरोध का अधिकार**—हॉब्स के अनुसार राज्य की स्थापना व्यक्तियों के द्वारा आत्मरक्षा के लिए की गयी है। अत: राज्य की आज्ञा का पालन करना व्यक्ति का कर्त्तव्य है, लेकिन व्यक्ति से राज्य की केवल उन्हीं आज्ञाओं के पालन की आशा की जा सकती है, जिनके पालन से व्यक्ति के आत्मरक्षा के अधिकार पर आघात न पहुँचता हो। हॉब्स लिखता है कि यदि सम्प्रभु व्यक्ति को 'अपने आपकी हत्या करने, आक्रमणकारी को जख्मी न करने अथवा भोजन, वायु या दवाइयों के सेवन से मना करता है, जिन पर उसका जीवन निर्भर करता है' तो हॉब्स कहता है कि व्यक्ति ऐसे आदेशों की अवज्ञा कर सकता है। हॉब्स का व्यक्ति सेना में भर्ती होने से मना कर सकता है और केवल इतना ही नहीं, हॉब्स तो व्यक्ति को जेल से भाग जाने का भी परामर्श देता है यदि उसे मालूम हो जाय कि उसके विरुद्ध फौजदारी कार्यवाही की जा रही है।

   व्यक्ति राज्य की शेष आज्ञाओं का पालन तभी तक कर सकता है, जब तक राज्य में व्यक्ति की जीवन रक्षा करने की सामर्थ्य हो। यदि सम्प्रभु में इस प्रकार की क्षमता नहीं है तो व्यक्ति उसके विरुद्ध विद्रोह कर सकते हैं या आवश्यक होने पर किसी अन्य सम्प्रभु के प्रति भक्ति रख सकते हैं। हॉब्स के द्वारा व्यक्ति को राज्य के विरोध का जो अधिकार दिया गया है, वह निश्चित रूप से उसे व्यक्तिवाद की दिशा में ही ले जाता है।
5. **राज्यों के कार्यों की निषेधात्मक धारणा**—इन सबके अतिरिक्त हॉब्स के द्वारा राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में निषेधात्मक धारणा को अपनाया गया है और यह पूर्णरूप से व्यक्तिवाद के ही अनुरूप है। हॉब्स के शासक को अनुचित हस्तक्षेप करने का कोई शौक नहीं है। उसके अनुसार कानून मनुष्यों को समस्त स्वेच्छापूर्ण कार्यों से नहीं रोकते, उनका उद्देश्य तो व्यक्तियों की अनियन्त्रित इच्छाओं, जल्दबाजी अथवा अविवेक के आधार पर किये जाने वाले कार्यों को रोकना होता है। कानून बाड़ के सदृश्य है जो कि यात्रियों को रोकने के लिए नहीं, वरन् उन्हें सन्मार्ग पर रखने के लिए खड़ी की जाती है।

हॉब्स के राज्य में व्यक्तियों को क्रय-विक्रय करने की, अपने रहने के लिए स्थान, अपना भोजन, अपना व्यापार चुनने की तथा अपनी इच्छानुसार अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने की पूरी स्वतन्त्रता है। हॉब्स की यह भी धारणा थी कि शासक को व्यक्तियों के निजी विश्वासों और विचारों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वह उनसे केवल यह माँग कर सकता है कि उनका बाहरी व्यवहार तथा उपासना की पद्धति राज्य के कानूनों के अनुसार होनी चाहिए। 'व्यक्ति की बुद्धि तथा अन्त:करण राज्य की पहुँच से बाहर है।''

इस प्रकार हॉब्स को सामान्यतया निरंकुश राज्य का उग्र समर्थक ही माना जाता रहा है, किन्तु वास्तव में उसकी विचारधारा में व्यक्तिवाद के तत्त्व भी प्रबल रूप में उपस्थित हैं। सेबाइन का तो कहना है कि, 'हॉब्स के सम्प्रभु की सर्वोच्च शक्ति उसके व्यक्तिवाद की आवश्यक पूरक है।'' डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा के अनुसार भी, समझौता सिद्धान्त, समझौते के आधार पर सम्प्रभुतायुक्त राजशक्ति का उदय और आत्मरक्षा के अभाव में सम्प्रभु की आज्ञा की अवहेलना, इन सबके पीछे हॉब्स का प्रचण्ड व्यक्तिवाद ही है।''

हॉब्स के विचारों की आलोचना (Criticism of Hobbes' Ideas)

राजनीति के सम्बन्ध में हॉब्स की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'लेवायथन' के 1651 ई. में प्रकाशित होते ही उनके अनेक आलोचक सामने आ गये। क्लेरेण्डन ने उसके विलासी सिद्धान्तों का खण्डन किया, ह्वाइट हाल ने 'लेवायथन' को घातक विचारों से उसी प्रकार पूर्ण पाया, जिस प्रकार एक तरह का सर्प विष से पूर्ण होता है (As full of damnable opinions, as a toad is of poison) और ब्रैमहिल ने इसका उपहास करते हुए इसे 'सीधे कुत्ते का खेल' कहा जो सभी को चिनगारियों और लपटों के समर्पित कर देगा। इसी प्रकार हॉब्स के दर्शन के सम्बन्ध में वाहन (Vaughan) का विचार है कि, 'जहाँ तक राजनीतिक विचार के सजीव विकास का प्रश्न है, लेवायथन एक प्रभावहीन और निष्फल ग्रन्थ रहा है। वह एक प्रभावपूर्ण वर्णसंकर है जिसमें प्रजनन की कोई सामर्थ्य नहीं है और वह इस उपेक्षा का पात्र भी है।' हॉब्स की यह आलोचना अनेक आधारों पर की जाती है।

1. **मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा एकांगी**—हॉब्स ने मानव का चित्रण एक असामाजिक, एकांगी और पतित प्राणी के रूप में किया है, जो नितान्त त्रुटिपूर्ण है। हॉब्स द्वारा किया गया मानवीय प्रकृति का यह चित्रण एकांगी और भ्रमपूर्ण है। वास्तव

TOUCH 'n PASS

में, मानव जीवन विभिन्न भावों और प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण है और उसे हॉब्स की तरह दुर्गुणों का भण्डार नहीं कहा जा सकता। मानव स्वभाव सम्बन्धी भ्रमपूर्ण धारणा ने हॉब्स को दोषपूर्ण दर्शन की ओर प्रवृत्त किया है। केटलिन के शब्दों में, 'हॉब्स के पूरे दर्शन का अधिकांश भाग उसके बुरे मनोविज्ञान के कारण है।'

2. **समझौता नितान्त अतार्किक**—हॉब्स का सामाजिक समझौता इस दृष्टि से नितान्त अतार्किक है कि उसने प्राकृतिक अवस्था में परस्पर संघर्षरत व्यक्तियों के पारस्परिक समझौते के आधार पर राज्य की स्थापना करायी है। **स्पिनोजा** (Spinoza) तथा उसके पीछे आने वाले आलोचकों का कहना है कि हॉब्स की प्राकृतिक अवस्था में रहने वाले दानवों के लिए कानून-प्रिय तथा विनम्र नागरिक बनना असम्भव है, जैसा कि सामाजिक समझौते के समय उन्हें दिखाया गया है। इस धारणा को व्यक्त करते हुए ही वाहन (Vaughan) ने लिखा है—
"हॉब्स का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था संघर्ष की अवस्था है जिसमें प्रत्येक मनुष्य समस्त के विरुद्ध युद्ध में रत रहता है.....भला हम यह कैसे मान सकते हैं कि इस प्रकार के गुणों से विभूषित दानव रूपी मानव एक ऐसी अवस्था में प्रवेश कर सकते हैं या प्रवेश करने की इच्छा भी कर सकते हैं, जिसमें उनकी पूर्व-स्थिति एकदम विपरीत हो जाय, जहाँ युद्ध के स्थान पर शान्ति का साम्राज्य हो और जिसका आधार सत् तथा न्याय हो। एक हब्शी अपना रंग नहीं बदल सकता, इसी प्रकार एक रक्त का प्यासा व्यक्ति, जिसका वर्णन हॉब्स ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में किया है एक शान्तिप्रिय श्रमिक नहीं बन सकता है।"
3. **प्राकृतिक अवस्था का वर्णन अवास्तविक**—हॉब्स के द्वारा किया गया प्राकृतिक अवस्था का वर्णन भी ऐतिहासिक तथ्य तथा युक्ति के विरुद्ध है। मानवशास्त्र और इतिहास हमें बताते हैं कि मनुष्य 'सबका सबसे युद्ध' की अवस्था में कभी नहीं रहे। यदि रहे होते, तो जैसा कि लॉक ने लिखा है, 'मानव जाति ही नष्ट हो जाती। प्राचीन समाज की इकाई व्यक्ति नहीं, वरन् कुटुम्ब या कुल था और व्यक्ति रूढ़ियों तथा रीति-रिवाजों के बन्धनों में जकड़ा हुआ था। हॉब्स का प्राकृतिक अवस्था का चित्रण नितान्त काल्पनिक है। वास्तव में, उसे आदिम समाज की अवस्था का कोई ज्ञान न था।
4. **समझौते की शर्तें अबुद्धिसंगत**—हॉब्स के समझौते की शर्तें भी बुद्धिसंगत नहीं हैं। वह कहता है कि लोगों ने बिना किसी शर्त के अपने अधिकार एक व्यक्ति या सभा को दे डाले, जिसका परिणाम हुआ निरंकुश राज्य की स्थापना, जिसमें नागरिकों को कोई अधिकार नहीं। मानवीय बुद्धि से यह सम्भव प्रतीत नहीं होता है कि कोई भी प्राणी इस प्रकार अपने सब अधिकार बिना शर्त किसी को देकर अपने को दासता के बन्धन में बाँध ले। यदि यह ठीक है तो हमें मनुष्य के विवेक पर ही सन्देह होता है और लॉक के ये शब्द याद आते हैं, 'क्या प्राकृतिक व्यवस्था में रहने वाले व्यक्ति इतने मूर्ख थे कि वे लोमड़ियों तथा जंगली बिल्लियों की शरारतों से तो बचने की फिक्र करते थे, लेकिन उस अवस्था में सन्तुष्ट थे, और अपने आपको सुरक्षित अनुभव करते थे जब शेर उन्हें निगले जा रहा हो।'
5. **राज्य सम्बन्धी धारणा में रचनात्मकता का अभाव**—हॉब्स का राज्य भय पर आधारित है और उसकी राज्य सम्बन्धी धारणा में रचनात्मकता का नितान्त अभाव है। हॉब्स का राज्य केवल एक पुलिस राज्य ही हो सकता है। जैसा कि गूच ने कहा है, 'लेवायथन केवल अतिमानवीय आधार का पुलिसमैन है जो अपने हाथ में दण्ड लिये है, उसका राज्य अनिवार्य बुराई है, दबाव का यन्त्र है, स्वतन्त्र विकासोन्मुख सभ्यता की प्राप्ति का अपरिहार्य साधन नहीं।' यह एक तथ्य है कि इस प्रकार का राज्य व्यक्तियों को कल्याण मार्ग पर प्रवृत्त नहीं कर सकता है।
6. **विधि सम्बन्धी धारणा संकीर्ण**—हॉब्स का विधि सम्बन्धी मत अत्यन्त संकीर्ण है, क्योंकि हॉब्स अपने सम्प्रभु शासन को ही विधि का एकमात्र स्रोत और उसका अन्तिम व्याख्याता मानता है। उसके द्वारा नैतिक सिद्धान्तों और प्राकृतिक विधियों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है। क्लेरेण्डन का तो कहना था कि 'उसे इंग्लैण्ड की विधियों और प्रथाओं का भी कोई ज्ञान नहीं था।'
7. **राज्य तथा सरकार में अन्तर नहीं**—हॉब्स के सिद्धान्त की एक विशेष त्रुटि यह है कि उसने केवल राज्य के विरुद्ध ही नहीं वरन् सरकार के विरुद्ध भी प्रजा का विद्रोह अमान्य ठहराया है। विलोबी के अनुसार, 'राज्य और सरकार में अन्तर न मानना हॉब्स की सबसे बड़ी भूल है।'
8. **निरंकुश प्रभुसत्ता का समर्थन अनुचित**—इन सबके अतिरिक्त हॉब्स के दर्शन का प्रमुख दोष उसके द्वारा किया गया निरंकुश प्रभुसत्ता का समर्थन है। सम्प्रभुता की निरंकुशता दार्शनिक दृष्टिकोण से चाहे जितनी अनिवार्य हो, पर व्यवहार में सामान्यतया इस निरंकुश सम्प्रभुता का अधिकांश कभी प्रयोग में नहीं आता। हॉब्स ने इस वास्तविकता को दृष्टि में नहीं

रखा है कि सामान्यतया सम्प्रभुता नियन्त्रित रूप में ही कार्य करती है। इसलिए उसके सिद्धान्त व्यावहारिक राजनीति के तथ्यों के विरुद्ध प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त, यह भी कहा जा सकता है कि निरंकुशता की ओर तो शासन की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती ही है। राजनीतिक विचारक का कार्य शासन को इसी मार्ग पर आगे बढ़ाना नहीं, वरन् जनता की स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए शासक की निरंकुशता पर अंकुश रखना होता है, लेकिन हॉब्स ने तो इसके विपरीत ही आचरण किया है।

हॉब्स के दर्शन की उपर्युक्त त्रुटियों का ही यह परिणाम था कि समकालीन समाज का प्रत्येक वर्ग उसका आलोचक बन गया। पादरी और चर्च के लोग हॉब्स के भौतिकवादी दृष्टिकोण तथा धर्मसत्ता को राजसत्ता के पूर्णतया अधीन कर देने के कारण बिगड़ गये थे। प्रजातन्त्रवादी हॉब्स द्वारा निरंकुश शासन का समर्थन किये जाने के कारण उसके विरुद्ध थे और राजतन्त्रवादी, जिनका वह समर्थन करना चाहता था, इस कारण से उसके विरुद्ध थे कि हॉब्स ने राज्य को रहस्यात्मकता के जाल से निकालकर उपयोगिता के स्तर पर लाकर पटक दिया था।

प्र.3. हॉब्स के सामाजिक समझौता सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
Explain in detail the social contract theory of Hobbes.

उत्तर

हॉब्स का सामाजिक समझौता सिद्धान्त
(Social Contract Theory of Hobbes)

हॉब्स की राजनीतिक विचारधारा में सर्वप्रथम स्थान उसके सामाजिक समझौता सिद्धान्त का है, जिसका वर्णन उसने विभिन्न चरणों में किया है—

मानव स्वभाव का चित्रण—हॉब्स का मूलमन्त्र 'स्वयं को पढ़ो' (Read Thyself) है और वह इस बात पर बल देता है कि राजनीतिक समाज का प्रत्येक अध्ययन मानव स्वभाव के चिन्तन से प्रारम्भ होना चाहिए। मानव स्वभाव के सम्बन्ध में हॉब्स के विचार हमें सबसे पहले 1640 ई. में प्रकाशित 'डी कार पोरे पॉलिटिको' में मिलते हैं और उसके बाद 'लेवायथन' के प्रथम भाग के अन्तिम चार अध्यायों के प्रारम्भ में हॉब्स मानव का चित्रण एक स्वार्थी और भयग्रस्त प्राणी के रूप में करता है, जो सदैव स्वयं अपने ही हित साधन की चेष्टा में लगा रहता है। अपने स्वार्थ के लिए वह निरन्तर लड़ाई-झगड़ा करता रहता है। उसका मुख्य उद्देश्य अपने यश को बढ़ाना होता है और उसमें शक्ति वृद्धि की लिप्सा बराबर बनी रहती है। यह लिप्सा उसे बराबर क्रियाशील रखती है और यह इतनी तीव्र होती है कि इसकी वजह से वह बराबर बेचैन रहता है। मनुष्य की यह लिप्सा तभी लुप्त होती है जबकि उसकी मृत्यु हो जाती है।

हॉब्स के अनुसार मानव प्राणियों का परीक्षण यह सिद्ध करता है कि उनमें कोई बहुत बड़ा अन्तर या विषमता नहीं है। वे सब लगभग बराबर हैं। 'शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के दृष्टिकोण से प्रकृति ने सब मनुष्यों को इतना बराबर बनाया है कि यद्यपि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा शारीरिक रूप से अधिक बलिष्ठ और बौद्धिक रूप से अधिक तीक्ष्ण हो सकता है, किन्तु यदि सब बातों को ध्यान में रखा जाय तो मनुष्य-मनुष्य में अन्तर कुछ अधिक नहीं है।' इस प्रकार अपने लक्ष्य प्राप्ति की योग्यता सभी व्यक्तियों में समान है।

हॉब्स मनुष्य को इतना अधिक आत्म-केन्द्रित, स्वार्थी और भयग्रस्त प्राणी मानता है कि उनके अनुसार मनुष्य में नि:स्वार्थता का गुण है ही नहीं। दया की भावना देखने में नि:स्वार्थ जान पड़ती है, पर हॉब्स उसका भी स्वार्थ रूप में ही विश्लेषण करता है। उसके अनुसार जब हम किसी दुखी व्यक्ति को देखते हैं तो हमें भय उत्पन्न होता है कि कहीं हमारी भी ऐसी दशा न हो जाय। इस भय से हमें क्लेश का अनुभव होता है और यही दया का मूल है। इस प्रकार धर्म भी भय पर ही निर्भर है।

प्राकृतिक अवस्था—राज्य की उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति को हॉब्स प्राकृतिक अवस्था की संज्ञा देता है और मानवीय स्वभाव का चित्रण करने के बाद वह यह बताता है कि ऐसी प्रकृति वाले मनुष्यों की प्राकृतिक अवस्था में क्या दशा होती है। हॉब्स इस सम्बन्ध में तार्किक ढंग से आगे बढ़ा और उसकी प्राकृतिक अवस्था वैसी ही है, जैसी कि पूर्णतया स्वार्थी और समान शक्तियों वाले मनुष्यों की नियन्त्रण सत्ता के अभाव में हो सकती है। हॉब्स ने प्राकृतिक अवस्था की जो कल्पना की है, वह वस्तुत: अराजकता का ही दूसरा नाम है और इस अवस्था में सबका सभी से निरन्तर संघर्ष या युद्ध चलता रहता है। इस स्थिति के सम्बन्ध में हॉब्स ने लिखा है 'हम मानव स्वभाव में संघर्ष के तीन मुख्य कारण देखते हैं—प्रतिस्पर्धा (Competition), भय (Fear), और यश (Glory)। प्रतिस्पर्धा के कारण वे लाभ के लिए, भय के कारण रक्षा के लिए और यश के कारण प्रसिद्धि के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं।''

हॉब्स की प्राकृतिक अवस्था 'शक्ति ही सत्य है' की धारणा पर आधारित थी और इसके अन्तर्गत 'जो कोई भी जो कुछ भी ले सके और जितनी देर अपने पास रख सकने में समर्थ हो, वही उतने समय के लिए उसका हो जाता था। इस अवस्था में मनुष्यों का जीवन

दुखमय होना अवश्यम्भावी है और किसी प्रकार की प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती है। हॉब्स के ही अनुसार, "ऐसी दशा में उद्योग, संस्कृति, जल परिवहन, भवन निर्माण, यातायात के साधनों, ज्ञान व समाज, आदि के लिए कोई स्थान नहीं होता तथा मनुष्य का जीवन एकांकी, दीन, अपवित्र, पाशविक तथा क्षीण होता है।"

हॉब्स प्राकृतिक अवस्था की अपनी इस कल्पना को किसी ऐतिहासिक प्रमाण के आधार पर सिद्ध नहीं करता, वरन् अनुमान करता है कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य की दशा इसी से मिलती-जुलती रही होगी। वह अपने अनुमान के पक्ष में तर्क देते हुए कहता है कि इंग्लैण्ड में गृह-युद्ध के दौरान, जब कोई सम्प्रभु शासक नहीं था, ऐसी ही दशा हुई थी और ऐसी दशा आजकल उन जातियों की पायी जाती है जो असभ्यता के कारण राजनीतिक व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय जगत का उदाहरण देते हुए हॉब्स कहता है कि सभी राज्यों पर कोई उच्च सत्ता न होने के कारण ही वे प्राकृतिक अवस्था में रहते हैं और उनमें परस्पर युद्ध होता रहता है। अपने इन उदाहरणों के आधार पर हॉब्स कहता है कि मनुष्यों को एक दूसरे के साथ रहने में सुख नहीं, वरन् बड़ा दुख और कष्ट मिलता है और इसलिए वे एक-दूसरे के साथ तभी रह सकते हैं, जबकि उन्हें शक्ति के आधार पर ऐसा करने के लिए बाध्य किया जाए।

प्राकृतिक अधिकार तथा प्राकृतिक कानून—हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक अधिकार और प्राकृतिक कानून में बड़ा अन्तर है। उसके मतानुसार प्राकृतिक अधिकार का अर्थ है कि "प्रत्येक मनुष्य को आत्म-रक्षा हेतु आवश्यक समस्त कार्यों को करने की स्वतन्त्रता है।" प्राकृतिक कानून की कल्पना इससे भिन्न है। उसके द्वारा मनुष्य को ऐसे कार्य करने से रोका जाता है, जो उसकी सबसे प्रबल इच्छा अर्थात प्राण-रक्षा के लिए घातक हों। प्राकृतिक अधिकार से स्वतन्त्रता का आभास होता है और प्राकृतिक कानून से दायित्व का।"

मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार तो एक निरन्तर संघर्ष की स्थिति को जन्म देते हैं, किन्तु इसके विपरीत प्रकृति के कानून बुद्धि द्वारा निर्दिष्ट वे नियम हैं जिनके अनुसार आचरण करके व्यक्ति सुगमतापूर्वक अपने जीवन की रक्षा कर सकते हैं और प्राकृतिक अवस्था की अराजकता से बच सकते हैं। हॉब्स इस प्रकार 19 प्राकृतिक नियमों की कल्पना करता है, जिनमें 3 अधिक महत्त्वपूर्ण हैं : प्रथम, प्रत्येक व्यक्ति को शान्ति स्थापित करने की भरसक चेष्टा करनी चाहिए। द्वितीय, प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-रक्षा का अधिकार प्राप्त करने और शान्ति स्थापित रखने के लिए प्राकृतिक अधिकारों का त्याग करने को तत्पर रहना चाहिए और दूसरों के विरुद्ध उतनी स्वतन्त्रता पर ही सन्तोष कर लेना चाहिए, जितनी वह दूसरों को स्वयं के विरुद्ध देने के लिए तैयार हों। तृतीय नियम यह है कि व्यक्ति द्वारा उन समझौतों का पालन किया जाना चाहिए, जो स्वयं उसने किये हैं।

इस प्रकार प्रकृति के ये नियम उन शर्तों की व्याख्या करते हैं जिनके आधार पर समाज का ढाँचा खड़ा किया जा सकता है। सेबाइन के शब्दों में, 'वे एक ही साथ पूर्ण दूरदर्शिता के सिद्धान्त भी हैं और सामाजिक आधार के नियम भी।' प्रकृति के इन नियमों के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि उन्हें कानून केवल अलंकारिक भाषा में ही कहा जा सकता है। कानून उच्च सत्ता द्वारा दिया गया आदेश होता है और इसके पीछे बाध्यकारी शक्ति का बल होता है, किन्तु ये नियम विवेकपूर्ण परामर्श मात्र हैं, जिनका मानना किसी के लिए अनिवार्य नहीं है। ये तो वे शर्तें हैं जो आत्मरक्षा में सहायक हो सकती हैं, किन्तु जिनका पालन व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है।

अनुबन्ध और राज्य की उत्पत्ति—प्राकृतिक अवस्था में प्राकृतिक नियम विद्यमान थे, किन्तु बाध्यकारी शक्ति के अभाव में सभी व्यक्तियों द्वारा उनका पालन नहीं किया जाता था और जब तक सभी उनका पालन न करते, कोई एक व्यक्ति उनका सफलतापूर्वक पालन न कर सकता था। अत: आवश्यकता एक ऐसी संस्था की थी, जो शक्ति के आधार पर सभी व्यक्तियों को शान्ति रखने के लिए बाध्य कर सके। व्यक्तियों में स्वार्थ और असामाजिकता होते हुए भी आत्म-रक्षा, शान्ति और सुरक्षा की इच्छा तो विद्यमान थी ही, अत: वे उपर्युक्त प्रकार की संस्था की स्थापना के लिए प्रेरित हुए।

हॉब्स के अनुसार राज्य की स्थापना का केवल एक ढंग है और वह है समस्त व्यक्तियों का अपनी समस्त शक्ति को एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह के प्रति समर्पित कर देना। केवल इसी पद्धति को अपनाकर संघर्ष के मूल कारण इच्छाओं की अनेकता के स्थान पर एकता को जन्म दिया जा सकता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको शासन के कार्यों का कर्ता समझकर उनका पालन कर सकता है। केवल इसी प्रकार से प्रजाजन शासक की इच्छा को अपनी इच्छा और उसके निर्णय को अपना निर्णय मान सकते हैं। हॉब्स के अनुसार राज्य की स्थापना व्यक्तियों द्वारा पारस्परिक समझौते के आधार पर की गयी है। हॉब्स ने इसका सूत्र इस प्रकार दिया है कि मानो प्रत्येक व्यक्ति से कहता हो कि 'मैं अपने ऊपर शासन करने के सब अधिकार इस व्यक्ति या सभी को इस शर्त पर देता हूँ और उनकी सत्ता इस शर्त पर स्वीकार करता हूँ कि तू भी इसी प्रकार अपने सब अधिकार इसे दे डाले और उसके सभी कार्यों को स्वीकार करे।

यह वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार राज्य का जन्म जनता के आपसी समझौते द्वारा हुआ। हॉब्स का सिद्धान्त संविदा सिद्धान्त की पूर्व व्याख्याओं से इस दृष्टि से भिन्न है कि इसके अनुसार राज्य का जन्म सामाजिक समझौते द्वारा हुआ है, शासकीय समझौते द्वारा नहीं। हॉब्स से पूर्व के संविदा लेखकों द्वारा जिस शासकीय समझौते का प्रतिपादन किया गया, उनका उद्देश्य इन सिद्धान्तों के आधार पर शासक की शक्ति को मर्यादित करना और जनता द्वारा भ्रष्ट शासकों को पदच्युत करने के अधिकार का समर्थन करना था, किन्तु हॉब्स का समझौता सामाजिक है, वह जनता के द्वारा ही परस्पर किया गया है। शासक समझौते का एक पक्ष होने के स्थान पर वह उससे बाहर और ऊपर है और हॉब्स के द्वारा समझौते का यह रूप निरंकुश शासन का समर्थन करने और जनता को प्रत्येक स्थिति में राज्याज्ञा के पालन का पाठ पढ़ाने के लिए किया गया है।

सम्प्रभुता का स्वरूप—हॉब्स के इस सिद्धान्त का सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख निष्कर्ष यह है कि हॉब्स राज्य को अपरिमित सम्प्रभुता प्रदान कर देता है और उसके अनुसार व्यक्तियों के लिए सभी परिस्थितियों में राज्य के आदेशों का पालन करना अनिवार्य है। सम्प्रभु शासक की शक्ति असीम है। वह किसी भी लौकिक उत्तरदायित्व से बाध्य नहीं है और उस पर संविधान, प्राकृतिक विधि या ईश्वरीय इच्छा का कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता है। सम्प्रभु को किसी भी प्रकार का कार्य करने से रोक सकने वाली एकमात्र शक्ति उसका अपना विवेक ही है। सम्प्रभु स्वयं अपने विवेक से ही पथ-प्रदर्शन करता है और किसी भी व्यक्ति को यह बताने का अधिकार नहीं हो सकता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं?

सम्प्रभु शासक का कोई कार्य अवैधानिक नहीं हो सकता, क्योंकि वह स्वयं समस्त विधियों का स्रोत है। उसके द्वारा निर्मित विधियाँ प्रजा के आचरण को नियमित करने के लिए ही हैं। विधियों का तात्पर्य बताना या उनकी व्याख्या करना भी प्रजा का कार्य नहीं, वरन् सम्प्रभु का कार्य है और सम्प्रभु विधियों की जो भी व्याख्या करता है, वह आवश्यक रूप से उचित है। सम्प्रभु शासक के समक्ष व्यक्ति के कोई अधिकार नहीं हैं। वह जो चाहे अधिकार प्रजा को दे सकता है और उन्हें जब चाहे तब छीन सकता है। भाषण-स्वातन्त्र्य और सभी अधिकारों के सम्बन्ध में हॉब्स का यही मत है।

प्र.4. लॉक के सामाजिक समझौता सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
Describe the social contract theory of Locke.

उत्तर

लॉक का सामाजिक समझौता सिद्धान्त
(Social Contract Theory of Locke)

लॉक की राजनीतिक विचारधारा में सर्वप्रथम स्थान उसके सामाजिक समझौता सिद्धान्त का है, जिसका वर्णन उसने विभिन्न चरणों में किया है—

मानव स्वभाव की व्याख्या—यद्यपि लॉक ने भी शेफ्ट्सबरी के पतन और उसके बाद के दुखपूर्ण दिनों में एवं अपने देश के निष्कासन का यातनामय जीवन बिताते हुए मानव स्वभाव के दुष्टतापूर्ण पक्ष का साक्षात्कार किया था फिर भी उसका हृदय मनुष्यों की स्वाभाविक अच्छाई और दया, आदि गुणों से अधिक प्रभावित था। उसके पिता के स्नेहमय व्यवहार और मित्रों की अच्छाई ने उसके हृदय में मानवीय सद्भावना के प्रति निष्ठा उत्पन्न की और उसने स्वयं अपनी आंखों से 1688 ई. में इंग्लैण्ड में शान्तिपूर्ण साधनों के बल पर जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हुए देखा था, उसने उक्त प्रभाव और निष्ठा को पुष्ट करने का कार्य किया।

इसी कारण जहाँ हॉब्स ने मनुष्य को स्वार्थी, पाशविक और पतित माना है, लॉक ने उसे सहयोगी तथा सामाजिक माना है। उसके अनुसार मनुष्य स्वभाव से ही एक ऐसा सामाजिक प्राणी है, जो पारस्परिक सहयोग, प्रेम, दया और सद्भावना के आधार पर दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध रखते हुए अपना जीवन व्यतीत करता है।

प्राकृतिक अवस्था—हॉब्स की भाँति लॉक ने भी प्राकृतिक अवस्था का चित्रण किया है। क्योंकि लॉक का मनुष्य प्रेम, सहानुभूति, सहयोग एवं दया से पूर्ण प्राणी है, इसलिए उसकी प्राकृतिक अवस्था 'प्रत्येक की प्रत्येक के साथ संघर्ष की अवस्था' न होकर शान्ति, सम्पन्नता, सहयोग, समानता तथा स्वतन्त्रता की अवस्था है। लॉक ने लिखा है कि 'यद्यपि प्राकृतिक अवस्था स्वतन्त्रता की अवस्था है, तथापि यह स्वेच्छाचारिता की अवस्था नहीं है। यद्यपि इस अवस्था में मनुष्य को अपने व्यक्तित्व या सम्पत्ति के प्रयोग की अमर्यादित स्वतन्त्रता है, पर उसे तब तक अपने को नष्ट करने की स्वतन्त्रता नहीं है, जब तक कि ऐसा करने की आवश्यकता जीवन बनाये रखने के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से न हो।'

लॉक की प्राकृतिक अवस्था की विशेषता यह है कि उसमें व्यक्तियों को अधिकार भी प्राप्त हैं और उसमें व्यवस्था भी है। लॉक के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तियों को प्राकृतिक अधिकार प्राप्त थे और प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का ध्यान और आदर करता था। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्यों को तीन अधिकार प्राप्त थे—जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार और सम्पत्ति का अधिकार प्राकृतिक अवस्था में सम्पत्ति की सृष्टि ईश्वर-प्रदत्त वस्तुओं में श्रम के सम्मिश्रण से हुई अर्थात जैसे पेड़ में

फल-फूल लगे हए हैं, वे सबके हैं, पर यदि परिश्रम करके मैंने तोड़ा तो मेरे हो गये। लॉक प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तियों को समान मानता है पर उसका विचार था कि यह समानता अधिकारों की समानता थी, शक्ति की नहीं।

लॉक के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में व्यवस्था भी विद्यमान है और वह है विवेक द्वारा स्थापित व्यवस्था। लॉक के अनुसार 'विवेक, विवेक को काम में लाने वाली सम्पूर्ण मानवता को यह सिखाता है कि क्योंकि सब मनुष्य समान तथा स्वाधीन हैं, अत: किसी को भी दूसरे के जीवन, स्वास्थ्य, स्वतन्त्रता एवं सम्पत्ति को हानि नहीं पहुंचानी चाहिए।' इस प्रकार लॉक का तात्पर्य यह है कि मनुष्यों को दूसरों के अधिकारों पर आक्रमण करने और हानि पहुंचाने से रोका जाना चाहिए, सबको उस प्राकृतिक अवस्था को मानना चाहिए, जो शान्ति और सम्पूर्ण मानवता की सुरक्षा चाहती है। इस प्रकार की लॉक की प्राकृतिक अवस्था इस विवेक जनित प्राकृतिक नियम पर आधारित है कि 'तुम दूसरों के प्रति वही बर्ताव करो, जिसकी तुम दूसरों से अपने प्रति आशा करते हो' (Do unto other, as you want others to do unto you)। लॉक के व्यक्ति प्राकृतिक अवस्था की इस प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार चलते हैं तथा उचित-अनुचित, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म की स्वाभाविक भावना के अनुसार परस्पर व्यवहार करते हैं। 'यह प्राकृतिक अवस्था स्वर्ण युग की अवस्था है।' और डनिंग के शब्दों में, 'यह पूर्ण सामाजिक अवस्था होने की अपेक्षा केवल पूर्व राजनीतिक अवस्था है। यह अवस्था परस्पर पारस्परिक संघर्ष की अवस्था नहीं थी इसमें शान्ति और विवेक का आधिक्य था।

सामाजिक समझौता (Social Contract)

प्राकृतिक अवस्था आदर्श अवश्य है, किन्तु न तो यह व्यावहारिक है और न ही इसमें स्थायी होने की कोई गारण्टी दी जा सकती है। प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तियों को कुछ असुविधाएँ हैं और इस अवस्था की कुछ कमियाँ हैं। प्राकृतिक अवस्था की पहली कमी यह है कि इसमें कोई सुनिश्चित, प्रकट एवं सर्वमान्य नियम नहीं हैं, जिनके आधार पर उचित-अनुचित का निर्णय हो सके। इस अवस्था की दूसरी कमी यह है कि इसमें कोई प्रकट एवं निष्पक्ष निर्णायक नहीं है। प्राकृतिक अवस्था की तीसरी कमी निर्णयों को कार्यान्वित कर सकने वाली शक्ति का अभाव है और ऐसी दशा में निर्णय कार्यान्वित होने से रह जाते हैं। इन असुविधाओं के कारण व्यक्ति प्राकृतिक अवस्था का त्याग कर, समझौते के आधार पर राज्य संस्था की उत्पत्ति करते हैं।

इसके लिए मनुष्यों में दो प्रकार के समझौते होते हैं। यद्यपि लॉक ने स्पष्टतया ऐसे दो समझौतों का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उसके वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि दो समझौते किये गये। पहले समझौते द्वारा प्राकृतिक अवस्था का अन्त कर समाज की स्थापना की गयी। पहले समझौते द्वारा मनुष्य यह निश्चित करते हैं कि वे अपने सम्बन्ध में व्यवस्था करने का अधिकार समाज को देते हैं। परिणामस्वरूप अब उस कानून के निर्माण का अधिकार समाज को होगा, जिन्हें वह मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक हित के लिए उपयोगी समझेगा। दूसरे प्रकार का समझौता वह है जो समाज के मनुष्य मिलकर शासक (व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह) से करते हैं तथा जिसके द्वारा राज्य संस्था की उत्पत्ति होती है। यह समझौता एक प्रकार के शासक और शासितों के मध्य है, जिससे समाज के द्वारा शासक को कानून बनाने, उसकी व्याख्या करने और उन्हें मनवाने का अधिकार दिया जाता है।

परन्तु लॉक के सामाजिक समझौते में शासक को अमर्यादित शक्ति प्राप्त नहीं है। शासक की शक्ति पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि उसके द्वारा निर्मित कानून प्राकृतिक नियमों के अनुकूल और अनुरूप होंगे। लॉक का कथन है कि 'व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए राजनीतिक समाज में प्रवेश करते हैं।' सम्पत्ति के अन्तर्गत जीवन, स्वास्थ्य तथा स्वतन्त्रता भी सम्मिलित है और लॉक की धारणा है कि प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तियों को जो अधिकार प्राप्त थे, समाज उनकी सुरक्षा सामूहिक रूप से और सामूहिक हितों को ध्यान में रखते हुए करेगा। इस प्रकार सरकार व्यक्तियों के जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की रक्षा की गारण्टी लेती है। इस समझौते में यह भी निश्चय किया जाता है कि यदि प्रभुसत्ताधारी समझौते की शर्तों का उल्लंघन करे और सार्वजनिक हित के विरुद्ध शासन करे, तो मनुष्यों को अधिकार होगा कि वे उससे अथवा उस व्यक्ति समूह से राजशक्ति छीन लें और दूसरे ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह को दे दें, जो समझौते की शर्तों के अनुकूल सार्वजनिक हित में शासन करे।

लॉक के सामाजिक समझौते की विशेषताएँ (Features of Social Contract of Locke)

लॉक द्वारा प्रतिपादित सामाजिक समझौते की कुछ विशेषताओं का उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

1. लॉक के सिद्धान्त के अन्तर्गत दो प्रकार के समझौते होते हैं। पहले समझौते द्वारा तो एक राजनीतिक समाज की स्थापना की गयी है और दूसरे समझौते द्वारा शासक व शासित के मध्य शर्तें निश्चित करते हुए सरकार की स्थापना की गयी है।
2. समझौते के परिणामस्वरूप नागरिकों के द्वारा अपनी प्राकृतिक अवस्था के अधिकारों का त्याग कर दिया जाता है, किन्तु अधिकारों का यह त्याग इस शर्त पर किया जाता है कि समाज उनकी सुरक्षा सामूहिक रूप से और सामूहिक हित का ध्यान रखते हुए करेगा।

3. समझौते के आधार पर जिस राज्य संस्था का निर्माण होता है, वह मानवीय अनुमति और सहमति का परिणाम है।
4. लॉक के सिद्धान्त में शासक भी समझौते का एक पक्ष है। अत: समझौते की शर्तें उस पर अनिवार्यत: लागू होती हैं और उसके लिए समझौते का पालन आवश्यक होता है। इस प्रकार लॉक एक निरंकुश राजतन्त्र नहीं, वरन् मर्यादित राजतन्त्र की स्थापना के पक्ष में है।
5. लॉक के सिद्धान्त में राज्य और शासन के अन्तर को स्वीकार किया गया है और वह शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त का समर्थन करता है।
6. क्योंकि शासक अथवा सरकार की स्थापना मनुष्यों के समझौते और सहमति पर आधारित होती है, अत: यदि सरकार निश्चित लक्ष्य को पूर्ण करने की दिशा में कार्य न करे, तो शासक की नियुक्ति करने वाली जनता को उसे पदच्युत करने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में, लॉक के समझौते के अनुसार हॉब्स के मत के विरुद्ध जनता को शासक अथवा सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार प्राप्त है। जैसा कि लॉक ने कहा है, 'समाज को सदा एक ऐसी शक्ति प्राप्त रहती है कि वह अपने को किसी के भी कुप्रयत्नों और कुचेष्टाओं से बचा सके, जो प्रजा के जीवन, स्वतन्त्रता या सम्पत्ति के विरुद्ध कुप्रयत्न और कुचेष्टाएँ करने की मूर्खता अथवा नीचता करे....जब कभी भी कोई उन्हें दासता की दिशा में ले जाने का प्रयत्न करे, उन्हें सदा यह अधिकार होगा कि वह अपने को उससे मुक्त कर सकें, जो आत्मरक्षा के उस मौलिक, पवित्र एवं अपरिवर्तनीय नियम पर आक्रमण करते हैं, जिनके हेतु वे समाज में सम्मिलित हुए थे।'

समझौते की उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि लॉक ने अपने सिद्धान्त के आधार पर एक ऐसे समाज का समर्थन किया है जिसमें वास्तविक एवं अन्तिम शक्ति अर्थात् सम्प्रभुता समष्टि रूप से समाज में निहित होती है तथा सरकार का चाहे कोई भी स्वरूप क्यों न हो वह समाज की इच्छा की अभिव्यक्ति का एक ऐसा साधन मात्र होती है जिसे समाज जब चाहे बदल सकता है।

प्र.5. लॉक की व्यक्तिवादिता से आप क्या समझते हैं? लॉक के दर्शन की किन बिन्दुओं के आधार पर आलोचना की जाती हैं? स्पष्ट कीजिए।

What do you understand by Locke's individualism? On the basis of what points the philosophy of Locke is criticized? Explain.

उत्तर

लॉक की व्यक्तिवादिता
(Locke's Individualism)

लॉक के दर्शन का सर्वाधिक शक्तिशाली तत्त्व उसकी व्यक्तिवादिता है। उसके सम्बन्ध में प्रो० वाहन का कथन है कि 'लॉक की प्रणाली में प्रत्येक चीज का आधार व्यक्ति है, प्रत्येक व्याख्या का उद्देश्य व्यक्ति की प्रभुता को सुरक्षित रखना है।'

लॉक के दर्शन में केवल सर्व-जनहित के लिए राज्य को शक्ति प्रयोग का अधिकार है। इसका अभिप्राय यह है कि राज्य स्वयं अपना साध्य नहीं है, उसका अस्तित्त्व जनता के लिए ही है। लॉक बार-बार इस बात का आग्रह करता है कि शासन का एकमात्र ध्येय समाज का हित है और व्यक्तिगत रूप में नागरिकों के हित से भिन्न राज्य के किन्हीं कल्पित या रहस्यमयी हितों की बात करना नितान्त गलत है। राज्य तो वस्तुत: एक ऐसा यन्त्र है, जिसे मनुष्य ने केवल अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया है। लॉक, हॉब्स तथा फिल्मर जिन्होंने कि निरंकुश राज्य की सत्ता का प्रतिपादन किया था, का तीव्र विरोधी था। वह तो एक व्यक्तिवादी था और उसकी दर्शन प्रणाली का केन्द्र है, व्यक्ति तथा उसके अधिकार।

लॉक के विचारों का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता को राज्य की निरंकुशता से सुरक्षित रखने के उपाय ढूँढ निकालना था। उसके सम्पूर्ण विचार दर्शन का केन्द्र व्यक्ति ही है, व्यक्ति की ही इच्छा में समाज और राज्य का जन्म हुआ है। राज्य के अधिकार बहुत अधिक सीमित रखे गये हैं और इन अधिकारों का दुरुपयोग होने पर व्यक्तियों को राज्य के विरोध का अधिकार दिया गया है। सब व्यक्ति यदि सहमत हो सकें तो राज्य को भी भंग किया जा सकता है। व्यक्तियों को राज्य के विरोध या क्रान्ति का यह अधिकार केवल असाधारण अवसरों के लिए ही नहीं दिया गया है, वरन् उसे यह भी अधिकार है कि सरकार द्वारा निर्मित प्रत्येक कानून को प्राकृतिक कानूनों की कसौटी पर जाँचे और उनके प्रतिकूल हों तो उन्हें न माने। कोई कानून प्राकृतिक कानून के अनुकूल है या नहीं, इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक के अनुसार करने के लिए स्वतन्त्र है। इस दशा में व्यक्ति यदि चाहे तो सरकार के प्रत्येक निर्णय को प्राकृतिक कानून के विरुद्ध बताकर उसे मानने से इन्कार कर सकता है। इस प्रकार लॉक ने व्यक्ति स्वतन्त्रता की वेदी पर राज्य की स्थिरता और दृढ़ता का बलिदान कर दिया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि लॉक ने अनवरत विद्रोह का मार्ग खोल दिया है।

TOUCH 'n PASS

लॉक के समझौते में कानून निर्माण और दण्ड-व्यवस्था के अतिरिक्त अन्य सभी अधिकार सामाजिक समझौते के बाद भी जनता ने अपने पास ही रख छोड़े हैं। ये अधिकार राज्य के हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त और प्राकृतिक नियमों से रक्षित हैं। इस प्रकार लॉक के दर्शन में व्यक्ति और उसकी स्वतन्त्रता ही सर्वोपरि है। 'लॉक ने ऐसी बात नहीं की है, जिससे हॉब्स के जैसी किसी सम्प्रभु सत्ता की सृष्टि होती है।' लॉक ने न केवल सम्प्रभुता शब्द का प्रयोग ही किया, वरन् अपने राज्य को सम्प्रभु राज्य नहीं माना है। मैक्सी के शब्दों में, उसका कार्य 'राजसत्ता की स्थिति को उच्चतर बनाना नहीं, अपितु उसकी मर्यादाओं का उल्लेख करना था।' वह शासकों को समाज का प्रतिनिधि मात्र बताता है, जिन्हें केवल इतनी शक्तियाँ प्राप्त हैं जितनी समाज ने व्यक्तियों को दी हैं। लॉक के दर्शन में राज्य एक बहुत बड़ी लिमिटेड कम्पनी से अधिक और कुछ नहीं है। **वस्तुतः** हॉब्स का दर्शन अधिकार समर्पण का दर्शन है, लॉक का दर्शन अधिकार रक्षण का।

शक्ति का कोई दुरुपयोग न करे, इसके लिए लॉक ने शक्ति विभाजन का सिद्धान्त भी स्थिर कर दिया है। वह विधायी और कार्यपालिका विभागों को एवं विधायी तथा न्यायपालिका विभागों को सर्वथा अलग-अलग रखना चाहता था, ताकि शक्तियों का दुरुपयोग न हो सके। धर्म के सम्बन्ध में उसकी विचारधारा व्यक्तिवादिता से पूर्ण है क्योंकि वह धार्मिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप का विरोध करता है।

लॉक हॉब्स की अपेक्षा कहीं अधिक उग्र व्यक्तिवादी है। हॉब्स के विचारों से तो अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिवाद की ध्वनि मात्र निकलती है और इसके विचार व्यक्ति को अधिकारों के विरोधी एवं निरंकुश राजसत्ता के समर्थक हैं, परन्तु लॉक प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिवादी है और व्यक्ति के अधिकारों को संरक्षण तथा राज्य का सीमित नियन्त्रण उस राजदर्शन का मुख्य उद्देश्य है। इस सम्बन्ध में वेपर ने लिखा है, 'लॉक की वाणी एक महान् परम्परा के बारे में अन्तिम महान् वाणी तथा दूसरी महान परम्परा के बारे में प्रथम महान वाणी थी। वह प्राचीन परम्परा, जिसका कि वह अन्तिम प्रतिनिधि था, मध्यकालीन परम्परा है तथा वह नवीन परम्परा जिसका कि वह प्रथम प्रवक्ता है, व्यक्तिवाद की परम्परा है।'' बार्कर के अनुसार, ''लॉक में व्यक्ति की आत्मा की सर्वोच्च गरिमा स्वीकार करने वाली तथा सुधार चाहने वाली महान भावना थी, उसमें यह प्यूरिटन अनुभूति थी कि आत्मा को परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध निश्चित करने का अधिकार है। उसमें यह प्यूरिटन सहज बुद्धि थी कि वह राज्य की सीमा निश्चित करते हुए उसे यह कह सके कि उसका कार्यक्षेत्र यहाँ तक है, वह इससे आगे नहीं बढ़ सकता।'' डनिंग ने भी उसके व्यक्तिवादी विचारों को 'राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में उसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान स्वीकार किया है।'

लॉक के दर्शन की आलोचना
(Criticism of Locke's Philosophy)

लॉक के दर्शन की प्रमुख रूप से निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है—

1. **प्राकृतिक अवस्था का चित्रण भ्रमपूर्ण**—लॉक का प्राकृतिक अवस्था का चित्रण नितान्त भ्रमपूर्ण और हॉब्स से भी अधिक वास्तविकता से दूर है। ऐतिहासिक और दार्शनिक दोनों ही दृष्टिकोणों से यह अमान्य है। प्रारम्भिक जनसमुदाय कभी भी इतना शान्त, सामाजिक और नैतिक नहीं रहा, जितना कि लॉक के द्वारा समझा गया है। लॉक के समान प्राकृतिक अवस्था को आदर्श नहीं माना जा सकता। इसके साथ ही यह भी प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि प्राकृतिक अवस्था ऐसी ही आदर्श थी, जैसा कि लॉक के द्वारा उसका वर्णन किया गया है, तो फिर राज्य के निर्माण की आवश्यकता ही क्या थी?
2. **राज्य की स्थापना का उद्देश्य मात्र भौतिक नहीं**—लॉक के अनुसार व्यक्तियों के जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए राज्य का निर्माण किया गया। इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य और समाज का सम्बन्ध व्यक्तियों के नैतिक विकास से न होकर उनके भौतिक विकास से ही है। इस प्रकार का दृष्टिकोण न तो सही है और न ही वांछनीय।
3. **प्राकृतिक अधिकारों की धारणा त्रुटिपूर्ण**—लॉक ने प्राकृतिक अवस्था में प्राकृतिक अधिकारों की धारणा का जो प्रतिपादन किया है, उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। सेबाइन का कहना है कि 'इस बात का कोई अनुभूतिसिद्ध प्रमाण नहीं दिया जा सकता कि सामाजिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों से अलग भी व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति के प्राकृतिक अधिकार होते हैं।' इस सम्बन्ध में एक अन्य बात यह है कि स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति के प्राकृतिक अधिकारों पर लॉक ने जो बल दिया है, उससे ऐसा प्रतीत होता है मानो ये अधिकार निरपेक्ष हों, किन्तु अधिकारों की इस निरपेक्षता को स्वीकार नहीं किया जा सकता और यह लॉक की इस धारणा से भी मेल नहीं खाती कि व्यवस्था अंग को समाज में सर्वोच्च शक्ति प्राप्त होनी चाहिए।
4. **सम्पत्ति सम्बन्धी विचार असंगतपूर्ण**—लॉक के सम्पत्ति सम्बन्धी विचार भी असंगतियों से पूर्ण हैं। यह तो एक ऐसी दुधारी तलवार की भाँति हैं जिससे निर्धन वर्गों के स्वार्थ का हनन भी हो सकता है और पोषण भी। उसका तात्कालिक उपयोग तो पूँजीपतियों और जमींदारों के स्वार्थ साधन में हुआ। बड़े-बड़े भूस्वामियों ने 'इतनी जमीन हमने घेर ली है,

TOUCH 'n' PASS

उसके साथ हमने अपना श्रम मिश्रित किया है, अत: यह हमारी है।'' ऐसा कहकर अपनी-अपनी जमींदारियाँ बना ली और किसानों को बेदखल करके वहाँ भेड़-बकरी चराने की चरागाहें बना डालीं। इस प्रकार सर्वसाधारण के हितों का हनन हुआ। उन्नीसवीं सदी में इस श्रम सिद्धान्त का आश्रय लेकर कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद का समर्थन किया और धनिकों की सम्पत्ति को 'चोरी का परिणाम' घोषित किया।

5. **निरन्तर क्रान्ति की आशंका**—लॉक ने कहा है कि यदि सरकार जनहित के विरुद्ध कार्य करे, तो जनता के द्वारा विद्रोह करके सरकार को पदच्युत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जनता को ही सरकार के कार्यों की जाँच करने का अधिकार दे दिया है। ऐसी स्थिति में लॉक का दर्शन जनता के लिए 'विद्रोह का लाइसेन्स' बन जाता है और सरकार के पास अपनी रक्षा के लिए कोई साधन नहीं रहते।
6. **राजसत्ता विभाजित नहीं होती**—लॉक के विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि राजसत्ता व्यक्तियों तथा राजा में बंटी हुई है, किन्तु वास्तव में राजसत्ता विभाजित नहीं होती।
7. **वैधानिक राजसत्ता को महत्त्व नहीं**—लॉक के दर्शन की एक गम्भीर त्रुटि यह है कि लॉक ने वैधानिक राजसत्ता को कोई महत्त्व नहीं दिया है। इस सम्बन्ध में गिलक्राइस्ट ने ठीक ही लिखा है, 'हॉब्स ने राजनीतिक सत्ता को अस्वीकार करते हुए वैधानिक राजसत्ता का प्रतिपादन किया है, लॉक ने राजनीतिक राजसत्ता की शक्ति को स्वीकार किया है पर वैधानिक राजसत्ता को मान्यता नहीं दी है। लॉक यह देखने में भी असफल रहा है कि क्रान्ति चाहे कितनी ही वांछनीय हो, कभी भी वैध नहीं होती।'' इसके अतिरिक्त, लॉक प्रभुसत्ता की प्रकृति अथवा स्थिति को भी स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं करता।

प्र.6. रूसो की सामान्य इच्छा के सिद्धान्त का परीक्षण कीजिए तथा सामान्य इच्छा और सर्वसम्मति में अन्तर बताइए।
Examine Rousseau's theory of general will and differentiate between general will and consensus.

उत्तर

रूसो की सामान्य इच्छा
(General will of Rousseau)

रूसो के राजनीतिक दर्शन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'सामान्य इच्छा' का सिद्धान्त है। रूसो अपनी इस धारणा के आधार पर 'स्वतन्त्रता और सत्ता, हित और कर्त्तव्य, वैयक्तिकता और सर्वव्यापकता में सामंजस्य प्रस्तुत करता है' व्यक्ति समझौते द्वारा समुदाय के लिए अपनी शक्ति का जो परित्याग करता है, उससे उसकी वैयक्तिक इच्छा का स्थान एक सामान्य इच्छा (General Will) ले लेती है। रूसो ने सामान्य इच्छा की पृष्ठभूमि में यथार्थ इच्छा और आदर्श इच्छा में अन्तर किया है, जो इस प्रकार है—

यथार्थ इच्छा (Actual Will)—सामान्यतया यथार्थ इच्छा और आदर्श इच्छा का एक ही अर्थ लिया जाता है, परन्तु रूसो के द्वारा इनका प्रयोग विशेष अर्थों में किया गया है। रूसो के अनुसार, यथार्थ इच्छा मानव की इच्छा का वह भाग है, जिसका लक्ष्य व्यक्तिगत स्वार्थ की पुष्टि हो और जो स्वयं व्यक्ति में केन्द्रित है। इसके अन्तर्गत सामाजिक हित की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रबलता होती है। डॉ. आशीर्वादम के शब्दों में, 'यह व्यक्ति की समाज-विरोधी इच्छा है। क्षणिक एवं तुच्छ इच्छा है। यह संकुचित तथा स्वविरोधी है।'

आदर्श इच्छा (Real Will)—इसके विपरीत आदर्श इच्छा मानव की वह इच्छा है जिसका लक्ष्य सम्पूर्ण समाज का कल्याण हो। इस इच्छा के अनुसार मानव स्वयं के हित को सामाजिक हित का अभिन्न भाग मानता है तथा सम्पूर्ण समाज के हित को दृष्टि में रखते हुए विचार करता है। इस इच्छा में व्यक्तिगत स्वार्थ का सामाजिक हित के साथ सामंजस्य तथा व्यक्तिगत स्वार्थ पर सामाजिक हित की प्रधानता होती है। डॉ. आशीर्वादम के शब्दों में, 'यह जीवन के समस्त पहलुओं पर व्यापक रूप में दृष्टिपात करती है। यह विवेकपूर्ण इच्छा है। यह व्यक्ति तथा समाज के सामंजस्य में प्रकट होती है।'

जहाँ तक सामान्य इच्छा का सम्बन्ध है, सामान्य इच्छा मानव की आदर्श इच्छाओं का योग मात्र है, दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सामान्य इच्छा मानव की इच्छा का वह श्रेष्ठ भाग है जो सम्पूर्ण समाज के लिए आवश्यक रूप में हितकर हो। डॉ. आशीर्वादम के मतानुसार, 'सामान्य इच्छा की परिभाषा एक समाज के सदस्यों की आदर्श इच्छाओं के योग अथवा इससे भी अधिक उत्तम शब्दों में उनके एकीकरण के रूप में की जा सकती है।' प्रसिद्ध विद्वान ग्रीन ने सामान्य इच्छा की सूक्ष्म और अर्थपूर्ण व्याख्या करते हुए लिखा है कि ''सामान्य आदर्शों की सामान्य चेतना'' ही सामान्य इच्छा है। रूसो की विचारधारा के प्रमुख व्याख्याकार बोसांके के अनुसार, 'सामान्य इच्छा सम्पूर्ण समाज की सामूहिक अथवा सभी व्यक्तियों की ऐसी इच्छाओं का समूह है, जिसका लक्ष्य सामान्य हित की पुष्टि हो।' जर्मिनो दांते इसे 'समुदाय की श्रेष्ठ भावना' कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रूसो की सामान्य इच्छा के दो अंग है—(1) सामान्य व्यक्तियो की इच्छा और (2) सामान्य हित पर आधारित इच्छा। सामान्य इच्छा के इन दोनों अंगों में द्वितीय प्रथम से अधिक महत्त्वपूर्ण है और जैसा कि स्वयं रूसो ने कहा है, 'मतदाताओं की संख्या से कम तथा उस सामाजिक हित की भावना से अधिक इच्छा सामान्य बनती है, जिसके द्वारा वे एकता में बँधते हैं।

सामान्य इच्छा का निर्माण—इस सम्बन्ध में रूसो का कहना है कि हम सबकी इच्छा से चलते हैं और सामान्य इच्छा पर पहुँचते हैं। जब कभी जनता के सामने कोई प्रश्न उपस्थित होता है तो जनता का प्रत्येक व्यक्ति उस प्रश्न पर व्यक्तिगत दृष्टिकोण से विचार करता है। ऐसा समाज यदि सभ्य और सुसंस्कृत हो और उसमें नागरिकता की भावना हो तो विचारों के आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया में व्यक्तियों की स्वार्थमयी इच्छाएँ एक-दूसरे की इच्छाओं को नष्ट कर देती हैं और इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप सामान्य इच्छा का उदय होता है। पारस्परिक वाद-विवाद के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत इच्छाएँ परिष्कृत हो जाती है और उनकी इच्छा का सर्वोत्तम रूप प्रकट होता है जो सामान्य इच्छा है।

सामान्य इच्छा की विशेषताएँ (Features of General Will)

सामान्य इच्छा को स्पष्ट रूप से समझने के लिए उसकी विशेषताओं और लक्ष्यों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। सामान्य रूप से सामान्य इच्छा की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी जा सकती हैं—

1. **अखण्डता**—सामान्य इच्छा का एक विशेष लक्षण उसकी एकता या अखण्डता है। यद्यपि सामान्य इच्छा की एकता में विभिन्नता भी होती है, किन्तु विवेकयुक्त और बुद्धिजन्य होने के कारण इसमें किसी भी प्रकार का आत्म-विरोध नहीं होता है। जैसा कि स्वयं रूसो ने कहा है, 'सामान्य इच्छा राष्ट्रीय चरित्र में एकता उत्पन्न करती और उसे स्थिर रखती है।'
2. **अदेयता**—सामान्य इच्छा का दूसरा लक्षण है अदेयता, जिसका तात्पर्य यह है कि यह किन्हीं व्यक्तियों को हस्तान्तरित नहीं की जा सकती है। इसी आधार पर रूसो कहता है कि सामान्य इच्छा प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त किये जाने के योग्य नहीं होती है। रूसो प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का उपासक है, जिसमें व्यक्ति स्वयमेव अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं। रूसो के अनुसार प्रतिनिधियों के माध्यम से इसे व्यक्त करना व्यक्तियों के बहुमूल्य अधिकारों का हनन तथा लोकतन्त्र की हत्या है।
3. **अविच्छेदता**—सामान्य इच्छा की एक विशेषता यह है कि इसे प्रभुसत्ता से अलग नहीं किया जा सकता। प्रभुसत्ता सामान्य इच्छा में निहित है कि और वह इसका प्राण है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के शरीर से उसके प्राण को पृथक नहीं किया जा सकता, वैसे ही प्रभुसत्ता से सामान्य इच्छा को अलग कर सकना सम्भव नहीं है।
4. **सर्वोच्च एवं निरंकुश**—सामान्य इच्छा का एक लक्षण इसका सर्वोच्च एवं निरंकुश होना है। इस पर दैवीय, प्राकृतिक या परम्परागत नियमों का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता और यह किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के अधिकारों से भी नियन्त्रित नहीं होती। सभी के द्वारा सामान्य इच्छा का पालन किया जाना चाहिए और उन्हें ऐसा करना ही होगा, कोई भी इसकी अवहेलना नहीं कर सकता है।
5. **स्थायी**—सामान्य इच्छा किसी प्रकार के भावात्मक आवेशों, आवेगों या सनक का परिणाम नहीं होती अपितु मानव के जन-कल्याण की स्थायी प्रवृत्ति और विवेक का परिणाम होती है। लार्ड के शब्दों में 'वह न तो सार्वजनिक आवेश की आँधियों में मिलती है और न राजनीतिज्ञों की बहकाने वाली बातों में।'
6. **लोक कल्याणकारी**—सामान्य इच्छा का सबसे प्रमुख लक्षण लोक कल्याण है। सामान्य इच्छा व्यक्तियों की आदर्श इच्छाओं का योग होती है और व्यक्तियों की ये आदर्श इच्छाएँ जन-कल्याण से प्रेरित होती हैं। अत: सामान्य इच्छा का लक्ष्य सदैव ही सम्पूर्ण समाज का कल्याण होता है। स्वयं रूसो के शब्दों में, 'सामान्य इच्छा सदैव ठीक ही होती है परन्तु वह निर्णय जो इसका पथ-प्रदर्शक होता है, सदैव समझदारीपूर्ण नहीं होता है।'
7. **विवेक पर आधारित औचित्यपूर्ण इच्छा**—यह इच्छा किसी प्रकार की भावनाओं पर नहीं, वरन् तर्क तथा विवेक पर आधारित होती है। स्वयं रूसो के शब्दों में, 'सामान्य इच्छा सदैव ही विवेकपूर्ण एवं न्यायसंगत होती है क्योंकि जनता की वाणी वास्तव में ईश्वर की वाणी है।'

सामान्य इच्छा की आलोचना (Criticism of General Will)

रूसो का सामान्य इच्छा का सिद्धान्त राजनीतिक चिन्तन के सर्वाधिक विवादास्पद विषयों में से एक है। एक ओर कुछ विचारकों की दृष्टि में सामान्य इच्छा का सिद्धान्त यदि भयंकर नहीं तो सारहीन अवश्य है, जबकि दूसरे विचारकों के लिए यह सिद्धान्त लोकतन्त्र

TOUCH 'n' PASS

तथा राजनीतिक दर्शन का एक बुनियादी पत्थर है। सामान्य इच्छा के विचार की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित प्रकार से की जाती हैं—

1. **अस्पष्ट एवं अव्यावहारिक**—रूसो का सामान्य इच्छा का विचार नितान्त अस्पष्ट एवं अव्यावहारिक है। एक विशेष समय पर सामान्य इच्छा का ज्ञान प्राप्त कर सकना बहुत अधिक कठिन ही नहीं, वरन् लगभग असम्भव है। स्वयं रूसो इस सम्बन्ध में पूर्ण निश्चित नहीं है और वह अपने ग्रन्थ 'सामाजिक समझौता' (Social Contract) में इस सम्बन्ध में विभिन्न तथा परस्पर विरोधी बातें कहता है। सामान्य इच्छा के निवास के सम्बन्ध में यह अनिश्चितता निस्सन्देह शोचनीय है। वेपर (Wayper) ने लिखा है कि 'जब रूसो हमें सामान्य इच्छा का पता ही नहीं दे सकते तो इस सिद्धान्त के प्रतिपादन का लाभ ही क्या हुआ? रूसो ने हमें एक ऐसे अन्धकार में छोड़ दिया है, जहाँ हम सामान्य इच्छा के बारे में अच्छी तरह सोच भी नहीं सकते।'
2. **यथार्थ इच्छा तथा आदर्श इच्छा का भेद काल्पनिक**—रूसो का सामान्य इच्छा का विचार यथार्थ और आदर्श इच्छा के भेद पर आधारित है, लेकिन जैसा कि हॉबहाऊस (Hobhouse) ने कहा है, 'यथार्थ इच्छा तथा आदर्श इच्छा का अन्तर व्यवहार में सही नहीं होता है।'' मानव में सदैव व्यक्तिगत स्वार्थ और लोकहित की जो प्रवृत्ति पायी जाती है, उन्हें एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक कर सकना सम्भव नहीं होता है।
3. **सामान्य हित की व्याख्या सम्भव नहीं**—सामान्य इच्छा का विचार सामान्य हित पर आधारित है, किन्तु सामान्य हित की परिभाषा का प्रयास लहरों को मुट्ठी में बाँधने के समान है। इसके अतिरिक्त किसी कार्य को करने के पूर्व पूर्ण निश्चितता पूर्वक यह कैसे कहा जा सकता है कि अमुक कार्य का परिणाम जन-कल्याण ही होगा। सामान्य हित की व्याख्या सम्भव न हो पाने के कारण ही सामान्य इच्छा के सम्बन्ध में मार्ले ने कहा है कि 'रूसो ने कोरी बहस में अपना समय नष्ट कर दिया है।'
4. **निरंकुश तथा अत्याचारी राज्य का पोषक**—सामान्य इच्छा के प्रतिपादन का उद्देश्य तो जनता के अधिकारों की रक्षा है, किन्तु यह धारणा व्यवहार में निरंकुश तथा अत्याचारी राज्य की पोषक भी बन सकती है। एक विशेष समय पर इच्छा क्या है, यह निश्चित करने की शक्ति रूसो शासक को सौंप देता है और यदि शासक दुराचारी है, तो वह अपने स्वार्थ को ही सामान्य इच्छा का रूप दे सकता है। इसके अतिरिक्त रूसो के सिद्धान्त में जनता के द्वारा अपने समस्त अधिकारों का समर्पण कर दिया गया है और जनता को किसी भी परिस्थिति में समाज के विरोध का अधिकार नहीं है। इस सम्बन्ध में डब्ल्यू. टी. जोन्स (W. T. Jones) ने ठीक ही कहा है कि 'रूसो के सामान्य इच्छा विषयक सिद्धान्त में कुछ ऐसे अस्थिर तत्त्व हैं जो उसे जनतन्त्र के समर्थन से हटाकर निरंकुश शासन के समर्थन की ओर ले जाते हैं।' ए. डाइड (A. Dide) के अनुसार, 'रूसो सामान्य इच्छा की आड़ में बहुमत की निरंकुशता का प्रतिपादन तथा समर्थन करता है।'' वाहन, बर्टेण्ड रसल, आइवर ब्राउन तथा मरे ने भी रूसो की विचारधारा पर निरंकुशवाद तथा अधिनायकवाद के पोषण का आरोप लगाया है।
5. **प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र में सम्भव नहीं**—रूसो का विचार है कि सामान्य इच्छा की सिद्धि के लिए सभी व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रभुसत्ता के प्रयोग में सक्रिय भाग लिया जाना चाहिए। इस शर्त का पालन प्राचीन यूनानी नगर राज्यों में भले ही सम्भव हो, वर्तमान समय के प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्रों में कतई सम्भव नहीं हो सकता। रूसो द्वारा प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का यह तिरस्कार अन्तिम रूप में लोकतन्त्र का ही तिरस्कार हो जाता है, क्योंकि वर्तमान समय में प्रतिनिध्यात्मक शासन ही लोकतन्त्र का एकमात्र व्यावहारिक रूप है।

सामान्य इच्छा और सर्वसम्मति में अन्तर
(Difference between General will and Consensus)

अनेक बार सामान्य इच्छा को सर्वसम्मति या सबकी इच्छा का पर्यायवाची समझ लिया जाता है, परन्तु दोनों को एक समझना गलत है। इन दोनों में प्रमुख रूप से निम्नलिखित अन्तर किये जा सकते हैं—

1. सर्वसम्मति, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है समाज के सब व्यक्तियों की इच्छा होती है, किन्तु सामान्य इच्छा के लिए ऐसा होना आवश्यक नहीं है और साधारणतया ऐसा होता भी नहीं है। सामान्य इच्छा किसी एक व्यक्ति, कुछ व्यक्तियों या सभी व्यक्तियों की इच्छा हो सकती है।

TOUCH 'n PASS

2. सामान्य इच्छा में एक ऐसी एकता होती है जैसे कि सर्वसम्मति में कभी भी नहीं होती। सामान्य इच्छा एक सम्पूर्ण के रूप में समाज की इच्छाओं को अभिव्यक्त करती है, यह सदस्यों की परस्पर विरोधी इच्छाओं के बीच समझौता नहीं, वरन् यह एकल तथा एकात्मक इच्छा है।
3. सर्वसम्मति किन्हीं परिस्थितियों में कुछ व्यक्तियों के विशेष हितों से सम्बन्धित हो सकती है, किन्तु सामान्य इच्छा अनिवार्यत: समस्त जनता के कल्याण में ही होगी। इन दोनों का भेद करते हुए रूसो कहता है कि, 'समाज के समस्त सदस्यों की इच्छाओं का कुल योग सामान्य इच्छा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि समस्त सदस्यों की इच्छाओं में सदस्यों के व्यक्तिगत स्वार्थों का सम्मिश्रण होता है, जबकि सामान्य इच्छा का सम्बन्ध केवल सामान्य हितों से होता है।'

प्र.7. रूसो की राजनीतिक विचारधारा में व्यक्तिवाद, समाजवाद, निरंकुशतावाद तथा लोकतंत्र का क्या स्थान हैं? स्पष्ट कीजिए।

What is the place of individualism, socialism, autocracy and democracy in Rousseau's political ideology? Explain.

उत्तर रूसो की विचारधारा में व्यक्तिवाद, समाजवाद, निरंकुशतावाद और लोकतन्त्र (Individualism, Socialism, Autocracy and Democracy in Rousseau's Political Ideology)

रूसो के विचार उतने ही जटिल प्रकृति के हैं, जितना जटिल स्वयं रूसो का जीवन रहा था और हारमोन का मत है कि 'रूसो के विचारों की व्याख्या उतने ही ढंगों से की गयी है, जिसने व्याख्याकार हुए हैं।'' रूसो की विचारधारा में व्यक्तिवाद, समाजवाद, निरंकुशतावाद और लोकतन्त्र, आदि परस्पर विरोधी विचार देखे जा सकते हैं।

रूसो में व्यक्तिवाद—डिजान की अकादमी के लिए रूसो के द्वारा जिन दो निबन्धों की रचना की गयी, उनमें उसके द्वारा इस बात के लिए बल दिया गया है कि मानवीय सभ्यता और तत्सम्बन्धी सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाएँ ही समस्त बुराइयों की जड़ हैं और यदि हम वास्तविक सुख, स्वतन्त्रता एवं श्रेष्ठता प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें प्रकृति की ओर लौटना होगा। उसके द्वारा की गयी सामाजिक कृत्रिमताओं की आलोचना व्यक्तिवाद की दिशा में ही यात्रा है। वह इस बात पर जोर देता है कि राज्य और सामाजिक जीवन की अन्य संस्थाओं ने व्यक्तियों की नैतिकता एवं स्वतन्त्रता की दिशा में आगे बढ़ाने के बजाय उन्हें नैतिकताविहीन और दास की स्थिति में ही पहुँचाने का कार्य किया है। उसके सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सोशल कॉण्ट्रेक्ट' की एक प्रारम्भिक पंक्ति है, 'मनुष्य स्वतन्त्र जन्मता है, किन्तु वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।'

रूसो के द्वारा राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सामाजिक समझौते का प्रतिपादन भी व्यक्तिवाद का ही समर्थन है, क्योंकि समझौता सिद्धान्त के अनुसार राज्य एक कृत्रिम संस्था है और व्यक्ति राज्य के बिना भी अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं। रूसो ने अपने 'सोशल कॉण्ट्रेक्ट' में अनेक स्थानों पर सामाजिक व राजनीतिक बन्धनों से व्यक्ति की मुक्ति के लिए आह्वान किया है। वस्तुत: रूसो ने अपनी विचारधारा का आरम्भ एक व्यक्तिवादी दार्शनिक के रूप में ही किया है।

रूसो में समाजवाद—यद्यपि रूसो को एक वैज्ञानिक समाजवादी या साम्यवादी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वैज्ञानिक समाजवाद का विधिवत रूप में प्रतिपादन रूसो के बहुत बाद में कार्ल मार्क्स द्वारा किया गया, किन्तु उसकी विचारधारा में समाजवाद के बीज स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं और इस बात के कुछ संकेत मिलते हैं कि कार्ल मार्क्स ने भी रूसो से प्रेरणा ली। समाजवादी विचारधारा व्यक्ति के सम्पत्ति तथा अर्थ के केन्द्रीकरण की विरोधी है, क्योंकि यह व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण की प्रतीक है। रूसो की विचारधारा भी यही है। रूसो के अनुसार प्राकृतिक अवस्था आदर्श अवस्था थी, लेकिन जैसे ही निजी सम्पत्ति के सर्प का उदय हुआ, प्राकृतिक अवस्था की समस्त शान्ति समाप्त हो गयी। रूसो ने डिजान की अकादमी के लिए लिखे गये अपने दूसरे निबन्ध 'असमानताओं की उत्पत्ति और उसकी आधारशिला' में निजी सम्पत्ति की संस्था पर कड़ा प्रहार करते हुए उसे नितान्त अस्वाभाविक और अनौचित्यपूर्ण बताया है और उसे समस्त मानवीय असमानता, असन्तोष, कलह और संघर्ष का मूल कारण माना है।

रूसो इस सन्दर्भ में राज्य संस्था का भी आलोचक है और एक स्थान पर वह लिखता है, 'नागरिक शासन एक ऐसा पैशाचिक साधन है, जो व्यक्तिगत सम्पत्ति की कृत्रिम वैधानिकता को मान्यता देता है।' यही धारणा आगे चलकर मार्क्स ने अपनाते हुए राज्य को शोषण का एक यन्त्र कहा है। रूसो सम्पत्ति को प्राकृतिक अधिकार के रूप में नहीं मानता, अपितु इसका नियमन समाज द्वारा किये जाने की बात कहता है। सेबाइन के अनुसार 'समाजवाद को रूसो की यह देन है कि एक सामान्य धारणा के रूप में समस्त अधिकार जिसमें सम्पत्ति का अधिकार भी शामिल है, समाज के अन्दर ही अधिकार है, न कि उसके विरुद्ध। रूसो के समाजवादी

विचार समष्टिवादी हैं, जिनका उद्देश्य राज्य की सत्ता के अधीन अर्थ-व्यवस्था का नियमन करने, समाज में आर्थिक विषमता को दूर करने तथा लोक-कल्याण की व्यवस्था को बनाये रखना है। इस दृष्टि से रूसो की विचारधारा में समाजवाद के बीज भी विद्यमान हैं।

निरंकुशतावाद के बीज—रूसो को सामान्यत: प्रजातन्त्र का अग्रदूत माना जाता है, किन्तु उसके दर्शन में कुछ ऐसी बातें भी हैं, जिनसे निरंकुशतावाद का समर्थन हुआ है। रूसो के समस्त राजदर्शन का सार सामान्य इच्छा ही बहुत अधिक विवादास्पद है। उसने कहा है कि 'सामान्य इच्छा का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है और यदि कोई 'सामान्य इच्छा' के आदेश का पालन नहीं करता तो उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया जा सकता है।' साथ ही यह भी संकेत किया गया है कि राज्य में राजनीतिक दल, चर्च, धार्मिक तथा आर्थिक संघ का गठन नहीं हो सकेगा।

रूसो की सामान्य इच्छा उन सभी लक्षणों—सर्वोच्चता, निरंकुशता, अदेयता, अखण्डता, आदि-से पूर्ण है, जो निरंकुशता के आधार समझे जाते हैं और इसी आधार पर ए. डाइड लिखते हैं कि 'रूसो सामान्य इच्छा की आड़ में बहुमत की निरंकुशता का प्रतिपादन तथा समर्थन करता है।'' रूसो के सामाजिक समझौते में निरंकुशतावाद का एक प्रमुख तत्त्व यह है कि समझौते में व्यक्ति अपनी समस्त शक्तियों का समर्पण कर देता है और समझौते के परिणामस्वरूप उत्पन्न सामान्य इच्छा पूर्णतया निरंकुश है। रूसो स्पष्टतापूर्वक इस बात का प्रतिपादन करता है कि राज्य का व्यक्तियों के पूर्ण जीवन पर अधिकार होता है और व्यक्ति का मूल कर्त्तव्य राज्य की आज्ञाओं का पालन करना ही है।

रूसो की संविदा के आधार पर जिस राजनीतिक समाज की रचना होती है, वह पृथक व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं है, जिसका उद्देश्य उन व्यक्तियों के हितों का साधन करना मात्र हो, अपितु समाज एक सावयव है और व्यक्ति उसके अभिन्न अंग हैं। सामान्य इच्छा इस सावयव को विशिष्ट व्यक्तित्त्व प्रदान करती है और समाज रूपी इस सावयव को अपने अंगों (व्यक्तियों) पर निरंकुश सत्ता प्राप्त है। रूसो की इस धारणा को उसके पश्चात् आदर्शवादी विचारकों ने अपनाया। जर्मन आदर्शवादी विचारक हीगल ने राज्य की निरंकुशतावादी विचारधारा का प्रतिपादन करने में रूसो से प्रेरणा ली। रूसो ने राज्य के निरंकुशतावाद (State-absolutism) का प्रतिपादन किया था जो हीगल तथा बीसवीं सदी के अधिनायकों के हाथों में पहुँचकर शासन की निरंकुशता में परिणित हो गया। बार्कर के मतानुसार, 'रूसो वस्तुत: सर्वाधिकारवादी है.....उसने सम्प्रभु की सर्वशक्तिमतता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाये हैं।'

लोकतन्त्र का अग्रदूत—यद्यपि रूसो की विचारधारा में निरंकुशता के भी कुछ चिह्न है, परन्तु उसकी विचारधारा मूल रूप में लोकतान्त्रिक ही है। संविदावादी विचारकों में सबसे प्रमुख लोकतन्त्रवादी फ्रेन्च क्रान्ति के प्रणेता रूसो को ही कहा जा सकता है। लोकतन्त्रीय धारणा की जैसी सशक्त अभिव्यक्ति उसके दर्शन में हुई है वैसी सम्भवतया अन्य किसी भी विचारक के दर्शन में नहीं।

प्रथमत:, लोकतन्त्र लोकप्रिय सम्प्रभुता की धारणा पर आधारित है और लोकप्रिय सम्प्रभुता का सबसे प्रमुख प्रतिपादक रूसो है। रूसो सम्प्रभु शक्ति जनता में निहित मानता है और उसका विचार है कि जनता के द्वारा सम्प्रभुता का सतत रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, रूसो के विचार में सरकार समुदाय की अभिकर्ता मात्र है जिसके द्वारा केवल उन्हीं शक्तियों का प्रयोग किया जाता है जो समुदाय के द्वारा उसे सौंपी जाए। रूसो का यह विचार निश्चित रूप से लोकतन्त्र को प्रवाह और प्रेरणा प्रदान करता है।

जनता की प्रभुता का प्रतिपादन करने के साथ-साथ रूसो इस सम्बन्ध में सुझाव भी देता है कि जनता अपनी प्रभुता किस प्रकार सुरक्षित रख सकती है। जनसभाओं का आयोजन, लोक-निर्णय, आरम्भक और प्रत्याह्वान की व्यवस्था इस सम्बन्ध में उसके कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव हैं।

द्वितीयत:, रूसो के द्वारा लोक हितकारी राज्य के सिद्धान्त का भी सर्वप्रथम प्रतिपादन किया गया है। रूसो राज्य को सामान्य इच्छा की अनुभूति ही कहता है और रूसो की इस सामान्य इच्छा का आधार लोक-कल्याण ही है। रूसो के अनुसार, राज्य का कर्त्तव्य प्रत्येक व्यक्ति के हित में प्रयत्न करना है। लोकहितकारी राज्य की अपनी इस धारणा के आधार पर रूसो लोकतन्त्र का ही पथ प्रशस्त करता है।

तृतीयत:, रूसो के द्वारा दी गयी विधि की परिभाषा भी लोकतन्त्र को अनुप्राणित करने वाली है। विधि को रूसो जनता की आवाज मानता है और उसका कथन है कि विधि समस्त व्यक्तियों का ऐसा प्रस्ताव है जो किसी विषय पर सामान्य रूप से प्रभाव डालता हो। रूसो लोकतन्त्र का अग्रदूत है, इस सम्बन्ध में जी. डी. एच. कोल का यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि, 'रूसो के हाथों में सामान्य इच्छा का सिद्धान्त मौलिक रूप से लोकतन्त्रीय हो जाता है और इस बात का दावा करता है कि जनता सैद्धान्तिक रूप में नहीं, वरन् वास्तविक रूप में शासन करेगी। रूसो ने ही राजनीतिक जगत में लोकतन्त्र को एक सुझाव सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित किया।' मरे (Murray) ने रूसो को 'लोकतन्त्र का उच्चतम पुजारी' (Highest priest of democracy) कहा है।

प्र.8. रूसो के विचारों की आलोचना, महत्त्व और उनके योगदान का वर्णन कीजिए।
Describe the criticism, importance and contribution of Rousseau's thoughts.

उत्तर

रूसो के विचारों की आलोचना
(Criticism of Rousseau's Thoughts)

राजनीतिक दर्शन के अन्तर्गत रूसो की विचारधारा बहुत अधिक आलोचना का विषय रही है। वाल्टेयर ने रूसो की भर्त्सना करते हुए लिखा है कि 'सोशल कॉण्ट्रेक्ट को पढ़कर उसे हाथों और पैरों के बल चलने की इच्छा होती थी।'' एक फ्रांसीसी लेखक जूलस लेमीटर के अनुसार, 'यह पुस्तक भयावह, अपमानपूर्ण, साधारण तथा ख्यातिहीन है और इसमें असंगतियों की भरमार है।' रूसो की विचारधारा में प्रमुख रूप से निम्नलिखित दोष बताये जाते हैं—

1. **विचारधारा अत्यधिक अस्पष्ट और जटिल**—सम्पूर्ण राजनीतिक दर्शन में सम्भवतया रूसो की विचारधारा सर्वाधिक अस्पष्ट और जटिल है और उसमें अनेक स्थानों पर विरोधाभास पाया जाता है। रूसो अपनी विचारधारा की अस्पष्टता और जटिलता से स्वयं परिचित था और इसी कारण वह लिखता है कि 'जो सामाजिक अनुबन्ध को पूरा समझ ले वह मुझसे अधिक बुद्धिमान है।' उसके विचारों में असंगति इसी बात से प्रकट है कि प्रारम्भ में तो वह व्यक्ति स्वातन्त्र्य का बड़े जोरदार ढंग से समर्थन करता है, लेकिन इसके बाद आगे चलकर वह व्यक्ति को पूर्णतया सामान्य इच्छा की दासता में छोड़ देता है। एक ओर तो वह सम्पत्ति को आधुनिक सभ्यता का अभिशाप बताता है और दूसरी तरफ वह कहता है कि मानव जाति की प्रगति इसके बिना नहीं हो सकती है। वास्तव में, वह आदर्श और वास्तविकता के बीच चक्कर काटता प्रतीत होता है और कभी एक की बात कहता है तो कभी दूसरे की। इसी से उसकी विचारधारा में बहुत अधिक असम्बद्धता पायी जाती है। कोबन (Coban) के अनुसार, 'कोई भी प्रसिद्ध लेखक उससे अधिक विरोधपूर्ण नहीं है।'' रूसो की विचारधारा में स्थान-स्थान पर जो परस्पर विरोध पाया जाता है, उनके कारण अपने एक मित्र को बाल्टेयर ने एक पत्र में लिखा था कि 'रूसो में और दार्शनिक में उतना ही साम्य है, जितना बन्दर और आदमी में है।' रूसो की विचारधारा में जो असंगतियाँ पायी जाती हैं, उसके कारण मार्ले ने उस पर यह टिप्पणी की है कि 'उसे यद्यपि एक महान विचारक कहा जाता है, किन्तु वह यह नहीं जानता था कि विचार किस प्रकार किया जाता है।''
2. **मानव स्वभाव और मानवीय इतिहास की धारणा तर्क विरुद्ध**—रूसो का एक दूसरा दोष यह है कि मानवीय स्वभाव और मानवीय इतिहास के विकास के सम्बन्ध में उसकी धारणा नितान्त तर्कविरुद्ध है। कुक (Cook) के अनुसार, प्राकृतिक अवस्था में विचरण करने वाले 'भद्र जंगली' (Noble Savage) व्यक्ति का जो चित्र उसने अंकित किया है वह उसकी कल्पना की ही उपज है।' वह मानव जाति के अतीत को आदर्श व्यवस्था कहता है और मानव समाज को प्रकृति की ओर लौटने का आह्वान करता है। उसके इस विचार को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि मानव समाज का पतन हो रहा है। वस्तुत: मानव जाति का इतिहास प्रगति का इतिहास है अवनति का नहीं।
3. **व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन**—रूसो का एक दोष उसके द्वारा किया गया व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन है। यद्यपि वह अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सोशल कॉण्ट्रेक्ट' का प्रारम्भ व्यक्ति को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त करने की आशा से करता है, किन्तु शीघ्र ही वह उसे सामान्य इच्छा का पूर्ण दास बनाकर छोड़ देता है। इस आपत्ति को जी. डी. एच. कोल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है, 'हमें बताया जाता है कि सामान्य इच्छा में जिस स्वतन्त्रता की अनुभूति होती है, वह सम्पूर्ण राज्य की स्वतन्त्रता होती है और राज्य अपने घटकों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए कायम है। एक स्वतन्त्र राज्य अत्याचारी हो सकता है। इसके विपरीत, एक निरंकुश शासक अपनी प्रजा को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान कर सकता है। इस बात की क्या गारण्टी है कि राज्य अपने को स्वतन्त्र बनाने में अपने घटकों को दास नहीं बना डालेगा।'
4. **प्रतिनिध्यात्मक शासन के सम्बन्ध में धारणा त्रुटिपूर्ण**—रूसो का आदर्श सामान्य इच्छा है और वह सामान्य इच्छा को अदेय मानता है। सामान्य इच्छा की इस अदेयता के आधार पर ही रूसो प्रतिनिध्यात्मक शासन के विरुद्ध है और उसे प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता का निषेध मानता है। रूसो प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र में जनमत के प्रत्यक्ष प्रभाव के साधनों,जैसे स्थानीय स्वायत्त शासन, शासन शक्ति के विकेन्द्रीकरण, समाचार-पत्र तथा लोक निर्णय और आरम्भक के आधार पर प्रत्यक्ष कानून निर्माण, आदि से सर्वथा अनभिज्ञ था। वह प्राचीनतावादी था और प्राचीनकाल के छोटे राज्य ही उसे आदर्श प्रतीत होते थे। इस विषय में उसकी दृष्टि संकुचित थी। वर्तमान समय में, जबकि प्रतिनिध्यात्मक शासन ही प्रजातन्त्र का एकमात्र व्यावहारिक रूप है, रूसो की विचारधारा को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

TOUCH 'n' PASS

5. **कानून विषयक विचार एकांगी**—रूसो के कानून विषयक विचार भी एकांगी हैं। यदि कानून सर्वव्यापक विषयों तक ही सीमित रहे, तो इसका अर्थ यह होगा कि बहुत-से वे विषय जो आज कानून द्वारा नियमित होते हैं, प्रशासनिक आदर्शों द्वारा नियमित करने पड़ेंगे। इससे कानून का क्षेत्र संकुचित होकर शासन की स्वेच्छाचारिता बढ़ जाने की आशंका है।
6. **राज्य और समाज में भेद न करना**—रूसो के समझौता सिद्धान्त की एक बहुत बड़ी त्रुटि यह है कि उसने राज्य और समाज में कोई अन्तर नहीं किया है। बार्कर ने इस त्रुटि की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है। राज्य और समाज में कोई भेद न कर सकने के कारण सामान्य इच्छा को राज्य की इच्छा मान बैठा है और उसकी दृष्टि में समाज के प्रति समर्पण ही राज्य के प्रति समर्पण है। इस आधारभूत त्रुटि के कारण रूसो के दर्शन में अनेक असंगतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं और रूसो का समझौता सिद्धान्त, जिसका उद्देश्य सम्भवतया व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करना था, व्यक्ति की स्वतन्त्रता के हनन का एक साधन बन गया है।
7. **सामाजिक समझौते और सामान्य इच्छा में कोई संगति नहीं**—हॉब्स के द्वारा दो धारणाओं को एक साथ अपनाया गया है—प्रथम, सामाजिक समझौता और द्वितीय, सामान्य इच्छा की धारणा। लेकिन आपत्ति यह है कि इन दोनों धारणाओं में स्पष्टतया विरोध है और इन्हें एक साथ नहीं अपनाया जा सकता। समझौता सिद्धान्त राज्य को एक कृत्रिम संस्था ठहराता है जबकि सामान्य इच्छा की धारणा के अनुसार राज्य समस्त नागरिकों के सामूहिक व्यक्तित्त्व का सर्वोत्तम रूप है। समझ में नहीं आता कि इन दोनों विचारों को एक साथ कैसे अपनाया जा सकता है?
8. **व्यावहारिक राजनीति और अन्य प्रभावों की उपेक्षा**—रूसो को व्यावहारिक राजनीति अथवा राज्य के विकास पर इतिहास, विद्यमान संस्थाओं और भौगोलिक परिस्थितियों, आदि के प्रभाव का कुछ ज्ञान न था। वह समझता है कि कोई अच्छा कानून-निर्माता मिल जाय, तो ठीक कानून बनाकर राज्य अच्छे प्रकार से चलेगा और मानवीय प्रकृति बदल जायेगी। किन्तु मानवीय प्रकृति इस प्रकार से परिवर्तित नहीं होती, राज्य और अन्य संस्थाओं की भी इसमें एक भूमिका होती है, व्यावहारिक राजनीति के इस तथ्य से रूसो सर्वथा अपरिचित था।

रूसो के विचारों का महत्त्व और उनका योगदान
(Importance and Contribution of Rousseau's Thoughts)

रूसो को अपने समकालीन विचारकों से निन्दा अधिक प्राप्त हुई और प्रशस्ति कम, किन्तु समय बीतने के साथ-साथ रूसो का महत्त्व स्पष्ट होता गया। सर्वप्रथम प्रो. डनिंग ने बहुत ही संयमित रूप से रूसो की प्रशंसा की। तत्पश्चात् प्रो. कोल ने रूसो की प्रशंसा करते हुए यहाँ तक कह डाला कि 'सोशल काण्ट्रेक्ट राजनीतिक दर्शन पर एक महानतम ग्रन्थ है और वह सत्य से भरी हुई स्थायी मूल्य की एक कृति है। इनिंग के मतानुसार, 'राजनीतिक दर्शन पर रूसो का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है' और फ्रेंच दार्शनिक बर्गसन (Bergson) के मतानुसार, 'देकार्ते (Descartes) के बाद मानव मन पर सबसे अधिक प्रबल प्रभाव रूसो का प्रभाव है, उसने अपनी मौलिक प्रतिभा की छाप राजनीति, साहित्य, शिक्षा और धर्म सभी पर छोड़ी है।' राजनीतिक दर्शन को रूसो ने अनेक महत्त्वपूर्ण देन दी है।

सामान्य इच्छा का सिद्धान्त—राजनीतिक दर्शन में सामान्य इच्छा के सिद्धान्त का आविष्कार रूसो ने ही किया है। सामान्य इच्छा का यह सिद्धान्त कितना भी अस्पष्ट क्यों न हो तथा व्यक्ति की यथार्थ इच्छा और आर्दश इच्छा में भेद करना एवं एक विशेष स्थिति में सामान्य इच्छा का पता लगाना चाहे जितना कठिन क्यों न हो तथापि इसमें सन्देह नहीं कि जो चीज समाज को सम्भव बनाती है, वह सामान्य इच्छा ही है, जिसे हम 'सामान्य उद्देश्य की सामान्य चेतना' भी कह सकते हैं। इस प्रकार सामान्य इच्छा की धारणा में शाश्वत मूल्य का एक तत्त्व निहित है।

लोकप्रिय सम्प्रभुता की धारणा—सामान्य इच्छा के सिद्धान्त से भी अधिक महत्त्वपूर्ण देन रूसो की लोकप्रिय सम्प्रभुता' (Popular Sovereignty) की धारणा है, जिसे कि वर्तमान समय की प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था का मूल आधार कहा जा सकता है। रूसो के पूर्व बोदां तथा हॉब्स जैसे विचारकों ने सम्प्रभुता के सिद्धान्त में योग दिया है, किन्तु इसमें से किसी ने भी इसका प्रयोग व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थन करने के लिए नहीं किया, उनके हाथों में इसने राज्य की सम्प्रभुता का रूप धारण किया, किन्तु रूसो ने सम्प्रभुता को सामान्य इच्छा में निहित करके लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त का शिलान्यास किया। उसकी विवेचना की महत्ता इस बात में है कि उसकी सम्प्रभुता की धारणा में हॉब्स जैसी पूर्णता और सुनिश्चितता है, किन्तु उसने उसका प्रतिष्ठान जनता में करके व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखा है। उसने किसी भी पूर्व विचारक की अपेक्षा इस बात पर बहुत बल दिया है

कि जनता ही समस्त राजनीतिक सत्ता की मूल स्रोत है, सम्प्रभुता जनता की सामान्य इच्छा में निहित है, सरकार सर्वोच्च सत्ता वाली जनता की सेवकमात्र है तथा उत्तम शासन और कानून की कसौटी जनहित का सम्पादन ही है।

रूसो लोकप्रिय सम्प्रभुता को सुरक्षित रखने के लिए जागरूक है और इस सम्बन्ध में उसने जन-सभाएँ एवं लोक निर्णय तथा आरम्भक, आदि लोकतन्त्रीय संस्थाओं को अपनाने का सुझाव दिया है। इसके द्वारा दिये गये ये सुझाव उसकी महान् राजनीतिक दूरदर्शिता और चातुर्य को सूचित करते हैं।

व्यक्ति और राज्य में स्वस्थ सम्बन्धों का प्रतिपादन—रूसो की एक महत्त्वपूर्ण देन व्यक्ति और राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों को श्रेष्ठ आधार पर प्रतिष्ठित करना है। अरस्तू के इस कथन का समर्थन कर कि 'मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है तथा उसके नैतिक स्वरूप का विकास केवल समाज में ही हो सकता है' रूसो ने राज्य और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों को नैतिक स्वरूप प्रदान किया तथा व्यक्ति की राज्य के प्रति भक्ति का एक सुदृढ़ आधार स्थापित किया। रूसो के अनुसार, अनुबन्ध के द्वारा उत्पन्न राज्य एक सावयवी एकता से युक्त प्राणी है जिसका अपना जीवन, इच्छा और व्यक्तित्त्व है और जो उसके भीतर रहने वाले नागरिकों से श्रेष्ठतर होता है। इस प्रकार उसने राज्य की सावयवी प्रकृति एवं श्रेष्ठता पर पर्याप्त बल दिया है।

राज्य और सरकार में अन्तर का स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन—रूसो ने राज्य तथा सरकार का अन्तर जितने स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है, वैसा अन्य किसी तत्कालीन विचारक में नहीं मिलता। उसने विधियों तथा विधि शासन की श्रेष्ठता प्रतिपादित की, जन-कल्याणकारी विधियों के निर्माण को प्रोत्साहित किया तथा संवैधानिक विधियों के विकास में योग दिया।

राष्ट्रीयता की भावना का प्रतिपादन—राष्ट्रीयता की भावना को भी रूसो से बहुत प्रेरणा मिली। यद्यपि यह राष्ट्रीय राज्य की धारणा का समर्थक नहीं था, परन्तु उसने राज्य की एकता व सुदृढ़ता की भावना का समर्थन कर राष्ट्रभक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया। डनिंग ने उसे राष्ट्रीय राज्य के सिद्धान्त का पोषक माना है।

आधुनिक संविधानवाद का संकेत—रूसो ने सम्प्रभु जनता द्वारा निर्मित कानूनों और सरकार द्वारा जारी किये गये कार्यपालिका आदेशों में जो भेद किया है, वह लगभग वैसा ही है जैसा भेद आज संविधान या संवैधानिक कानूनों और व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित साधारण कानूनों में देखा जाता है। रूसो द्वारा किया गया यह भेद आधुनिक संविधान का आधार है और इससे रूसो की राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय मिलता है।

रूसो के प्रभाव की एक बड़ी विशेषता है कि उसमें वर्तमान काल की सभी प्रमुख विचारधाराओं समाजवाद,अधिनायकवाद तथा लोकतन्त्र के बीज मिलते हैं। जर्मन और ब्रिटिश आदर्शवाद का तो वह अग्रदूत है ही, दार्शनिक अराजकतावाद (Philosophical Anarchism), समाजवाद और संघवाद, आदि अनेक विचारधाराओं का भी वह प्रेरणा स्रोत है। अर्नेस्ट रिज (Earnest Ridge) ने उसे मध्य युग के परम्परागत सिद्धान्त के साथ राज्य के आधुनिक दर्शन को सम्बद्ध करने वाला बताया है। इसी प्रकार वेपर के शब्दों में, 'अपनी सबल एवं मौलिक प्रतिभा की छाप उसने राजनीतिक, शिक्षा, धर्म तथा साहित्य पर छोड़ी और लैन्सन के इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि उसे आधुनिक युग को लाने वाले समस्त मार्गों के द्वार पर खड़ा हुआ पाते हैं।''

इन सबके अतिरिक्त रूसो एक क्रान्तिकारी विचारक था और भविष्य की राजनीति तथा जन-जीवन पर रूसो का विलक्षण प्रभाव पड़ा। उसने बड़ी ही स्पष्टतापूर्वक ओजस्वी शब्दावली में तत्कालीन दूषित शासन पद्धति और सामाजिक व्यवस्था पर प्रबल आक्षेप किये तथा शोषण और आर्थिक विषमता के भीषण दुष्परिणामों का नग्न चित्रण करते हुए जनता में विद्यमान व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने की तीव्र भावना भर दी। उसके इन विचारों का प्रभाव 11 वर्ष बाद फ्रांस की राज्य क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ। फ्रांसीसी क्रान्ति के नेताओं-नैपोलियन तथा रोबेस्पियर—पर रूसो की रचनाओं का गहरा प्रभाव था। क्रान्ति के मूलमन्त्र स्वतन्त्रता' समानता तथा भ्रातृत्व' की शिक्षा-दीक्षा देने वाला गुरु रूसो ही था। अमेरिका राज्यों ने अपने संविधान के निर्माण में भी रूसो का अनुसरण किया। एक क्रान्तिकारी विचारक के रूप में मानव जाति पर रूसो का प्रभाव बेजोड़ रहा है। मैक्गवर्न ने ठीक ही लिखा है कि 'रूसो की रचनाओं ने वर्तमान स्थितियों के प्रति घोर असन्तोष उत्पन्न कर दिया और यह भावना पैदा कर दी कि वर्तमान बुराइयों को दूर करने के लिए कुछ क्रान्तिकारी कदम उठाये जाने चाहिए।'

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. निम्नलिखित में से किस सिद्धान्त का प्रतिपादन हॉब्स ने किया?
(क) सम्प्रभुता का सिद्धान्त (ख) सामाजिक समझौते का सिद्धान्त
(ग) कानून का सिद्धान्त (घ) धर्म का सिद्धान्त
उत्तर (ख) सामाजिक समझौते का सिद्धान्त

प्र.2. हॉब्स की प्रमुख पुस्तक है–
(क) डी सिवे (ख) लेवायथन
(ग) डी होमाइन (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.3. निम्न में से किस विवेचक का सम्बन्ध राजनीतिक दर्शन से नहीं है?
(क) हॉब्स (ख) लॉक (ग) रूसो (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (घ) इनमें से कोई नहीं

प्र.4. जॉन लॉक की अध्ययन पद्धति किस पर आधारित है?
(क) अनुभववादी एवं विवेकवादी (ख) अनुभववादी एवं आदर्शवादी
(ग) विस्तारवादी एवं पूँजीवादी (घ) समाजवादी एवं साम्यवादी
उत्तर (क) अनुभववादी एवं विवेकवादी

प्र.5. निम्नलिखित पुस्तकों में से हॉब्स की किस पुस्तक को राजनीतिक विचार दर्शन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है?
(क) डी सिवे (ख) लेवायथन
(ग) डी होमाइन (घ) कानून के तत्त्व
उत्तर (ख) लेवायथन

प्र.6. ''लॉक सम्प्रभुता की शक्तियों का वर्णन न कर मर्यादाओं का वर्णन करता है।'' यह कथन किसका है?
(क) वॉहन (ख) डनिंग (ग) गिलक्राइस्ट (घ) मैक्सी
उत्तर (घ) मैक्सी

प्र.7. किसका मत है, ''लॉक के व्यक्तिवादी विचार राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण देन है?''
(क) डनिंग (ख) मैक्सी
(ग) गिलक्राइस्ट (घ) वॉहन
उत्तर (क) डनिंग

प्र.8. किस विचारक ने हॉब्स को 'राजनीतिक चिन्तकों की प्रथम श्रेणी' के अन्तर्गत रखा है?
(क) डनिंग (ख) सेबाइन (ग) बार्कर (घ) प्रो० ओकशॉर्ट
उत्तर (क) डनिंग

प्र.9. किसने हॉब्स की रचना को तर्कशास्त्र का सर्वोत्तम ग्रन्थ कहा है?
(क) डनिंग (ख) हारमोन
(ग) बेकन (घ) वॉहन
उत्तर (ख) हारमोन

प्र.10. 'सत्य का प्रादुर्भाव अनिश्चय की अपेक्षा गलती से अधिक सरलतापूर्वक होता है।' यह कथन है–
(क) डनिंग (ख) सेबाइन (ग) बेकन (घ) बार्कर
उत्तर (ग) बेकन

TOUCH 'n PASS

प्र.11. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन राजनीतिक दार्शनिक हॉब्स के बारे में सही नहीं है?
(क) उसने राज्य के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया।
(ख) उसने राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त का अभिनवीकरण किया।
(ग) हॉब्स के विचारों में उपयोगितावाद के समर्थन की झलक नहीं मिलती है।
(घ) राजनीतिशास्त्र को धर्म और नीतिशास्त्र से पृथक् किया।
उत्तर (ग) हॉब्स के विचारों में उपयोगितावाद के समर्थन की झलक नहीं मिलती है।

प्र.12. हॉब्स की व्यक्तिवाद विचारधारा में निम्नलिखित में से कौन-सा तथ्य सही नहीं है?
(क) मानव स्वभाव समाजवाद के अनुकूल नहीं अपितु व्यक्तिवादी है
(ख) राज्य साधन है और व्यक्ति साध्य है
(ग) व्यक्ति को राज्य के प्रतिरोध का अधिकार नहीं
(घ) कानून मनुष्यों को समस्त स्वेच्छापूर्ण कार्यों से नहीं रोकते
उत्तर (ग) व्यक्ति को राज्य के प्रतिरोध का अधिकार नहीं

प्र.13. हॉब्स की व्यक्तिवादी विचारधारा में आलोचना में कहे गये निम्न तथ्य सही है, यह विचारधारा–
(क) मानव स्वभाव सम्बन्धी एकांगी है (ख) राज्य तथा सरकार में अन्तर नहीं है
(ग) विधि सम्बन्धी धारणा संकीर्ण है (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.14. हॉब्स के सम्प्रभु की सर्वोच्च शक्ति उसके व्यक्तिवाद की आवश्यक पूरक है।'' यह कथन किस विवेचक का है?
(क) डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा (ख) सेबाइन
(ग) मैक्सी (घ) डनिंग
उत्तर (ख) सेबाइन

प्र.15. ब्रैमहिल ने हॉब्स की किस रचना का उपहास करते हुए इसे 'सीधे कुत्ते का खेल' कहा?
(क) डी सिवे (ख) डी कार पोरे पॉलिटिको
(ग) लेवायथन (घ) कानून के तत्त्व
उत्तर (ग) लेवायथन

प्र.16. ''हॉब्स के पूरे दर्शन का अधिकांश भाग उसके बुरे मनोविज्ञान के कारण है।'' यह कथन है–
(क) सेबाइन (ख) केटलिन (ग) वॉन (घ) क्लेरेण्डन
उत्तर (ख) केटलिन

प्र.17. हॉब्स के विचारों की आलोचना करते हुए किस विचारक ने कहा ''राज्य और सरकार में अन्तर न मानना हॉब्स की सबसे बड़ी भूल है''?
(क) विलोबी (ख) केटलिन (ग) क्लेरेण्डन (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) विलोबी

प्र.18. हॉब्स ने मानव स्वभाव में संघर्ष के तीन मुख्य कारण बताये, उनके अनुसार निम्न में से कौन-सा कारण गलत है?
(क) संतान (ख) प्रतिस्पर्धा (ग) भय (घ) यश
उत्तर (क) संतान

प्र.19. लॉक के दिये सिद्धान्त के अनुसार कौन-सा कथन सही है?
(क) लॉक ने मनुष्य को सहयोगी तथा सामाजिक माना है
(ख) व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए राजनीतिक समाज में प्रवेश करता है
(ग) यह एक ऐसे समाज का समर्थन करते हैं जिसमें वास्तविक एवं अन्तिम शक्ति समाज में निहित होती है
(घ) उपरोक्त सभी
उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

TOUCH 'n PASS

प्र.20. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है?
(क) हॉब्स की भाँति लॉक ने भी प्राकृतिक अवस्था का चित्रण किया है
(ख) हॉब्स ने मनुष्य को स्वार्थी जबकि लॉक ने सहयोगी माना
(ग) हॉब्स का दर्शन अधिकार समर्पण का दर्शन है जबकि लॉक का दर्शन अधिकार रक्षण का
(घ) उपरोक्त सभी
उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

प्र.21. हॉब्स के सिद्धान्त में प्राकृतिक नियमों की संख्या कितनी है?
(क) 11 (ख) 18 (ग) 19 (घ) 21
उत्तर (ग) 19

प्र.22. लॉक के दर्शन की आलोचना में कौन-सा कथन सही है?
(क) इसमें प्राकृतिक अधिकारों की धारणा त्रुटिपूर्ण है
(ख) इसमें प्राकृतिक अवस्था का चित्रण भ्रमपूर्ण किया है
(ग) निरन्तर क्रान्ति को उकसाने वाला विचार है
(घ) उपरोक्त सभी
उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

प्र.23. लॉक के दर्शन में उनके किस तथ्य को जनता के लिए 'विद्रोह का लाइसेन्स' बताया?
(क) क्रान्ति (ख) राज्य और शासन के लिए शक्ति-विभाजन
(ग) सम्प्रभुता (घ) वैधानिक राजसत्ता को महत्त्व नहीं
उत्तर (क) क्रान्ति

प्र.24. लॉक ने निम्न में से किस प्रकार की राजसत्ता को स्वीकार किया–
(क) राजनीतिक राजसत्ता (ख) वैधानिक राजसत्ता
(ग) (क) व (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) राजनीतिक राजसत्ता

प्र.25. किसका कथन है कि क्रान्ति चाहे कितनी भी वांछनीय हो, कभी भी वैध नहीं होती?
(क) डॉ० आशीर्वादम (ख) गिलक्राइट (ग) बोसांके (घ) डनिंग
उत्तर (ख) गिलक्राइट

प्र.26. रूसो ने राजनीतिक दर्शन में कौन-सा सिद्धान्त जोड़ा है?
(क) सम्प्रभुता का सिद्धान्त (ख) सामाजिक समझौते का सिद्धान्त
(ग) सामान्य इच्छा का सिद्धान्त (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) सामान्य इच्छा का सिद्धान्त

प्र.27. रूसो के अनुसार, यथार्थ इच्छा मानव की वह इच्छा है जिसका लक्ष्य–
(क) सम्पूर्ण समाज कल्याण की भावना से है (ख) अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से है
(ग) (क) व (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से है

प्र.28. आदर्श इच्छा का तात्पर्य है–
(क) प्राकृतिक के नियमों का पालन करना
(ख) सभी आदर्शवादियों के बताए गए नियमों का पालन करना
(ग) स्वार्थी जीवन जीना
(घ) सम्पूर्ण समाज के हित की भावना रखना
उत्तर (घ) सम्पूर्ण समाज के हित की भावना रखना

TOUCH 'n' PASS

प्र.29. रूसो के सिद्धान्त के आलोचना में कहा गया कथन, "यथार्थ इच्छा तथा आदर्श इच्छा का अन्तर व्यवहार में सही नहीं होता है।" किसका है?

(क) वेपर (Wayper) (ख) हॉबहाऊस (Hobhouse)
(ग) डब्ल्यू०टी० जोन्स (W.T. Jones) (घ) वॉन

उत्तर (ख) हॉबहाऊस (Hobhouse)

प्र.30. किसने रूसो की विचारधारा पर निरंकुशवाद तथा अधिनायकवाद के पोषण का आरोप लगाया है–

(क) बर्टेण्ड (Bertrand) (ख) आइवर (Ivor)
(ग) ब्राउन (Brown) (घ) ये सभी

उत्तर (घ) ये सभी

प्र.31. 'मनुष्य स्वतन्त्र जन्मता है, किन्तु वह सर्वत्र जंजीरो में जकड़ा हुआ है।' किस कृति की पंक्ति है?

(क) सोशल कॉण्ट्रेक्ट (ख) लेवियाथन (ग) रिपब्लिक (घ) पॉलिटिक्स

उत्तर (क) सोशल कॉण्ट्रेक्ट

प्र.32. सामाजिक समझौता (Social Contract) किसने लिखी?

(क) मैकियावेली (ख) बोदां (ग) लॉक (घ) रूसो

उत्तर (घ) रूसो

प्र.33. किसने रूसो को 'लोकतन्त्र का उच्चतम पुजारी' कहा?

(क) एच कोल (ख) मरे (ग) कोबन (घ) कुक

उत्तर (ख) मरे

प्र.34. कोबन के अनुसार, "कोई भी प्रसिद्ध लेखक उससे अधिक विरोधपूर्ण नहीं है।" उक्त कथन किसके लिए है?

(क) हॉब्स (ख) लॉक (ग) रूसो (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) रूसो

प्र.35. 'समाजवाद का जनक' कौन था?

(क) रूसो (ख) कार्ल मार्क्स (ग) एंगल्स (घ) बाकुनिन

उत्तर (ख) कार्ल मार्क्स

प्र.36. किस दार्शनिक के दिए गए विचार फ्रांस की क्रान्ति के रूप में प्रकट हुए?

(क) रूसो (ख) हॉब्स (ग) लॉक (घ) अरस्तू

उत्तर (क) रूसो

प्र.37. रूसो के बिना फ्रांसीसी क्रान्ति असम्भव थी। यह कथन है–

(क) कार्ल मॉर्क्स (ख) डनिंग (ग) नेपोलियन बोनापार्ट (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) नेपोलियन बोनापार्ट

TOUCH 'n' PASS

UNIT-V

कांट, बर्क और बेन्थम

Kant, Burke and Bentham

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उपयोगितावाद का जन्मदाता कौन है?
Who is the father of utilitarianism?
अथवा **उपयोगितावाद का प्रमुख प्रवर्तक कौन माना जाता है?**
Who is considered the main promoter of utilitarianism?

उत्तर राजनीतिक उपयोगितावाद का सूत्रपात बेन्थम से पूर्व हो चुका था, किन्तु इसके संस्थापक (प्रवर्तक) होने का श्रेय बेन्थम को जाता है।

प्र.2. किसके अनुसार बेन्थम का दर्शन सूअर दर्शन है?
According to whom Bentham's philosophy is pig philosophy?

उत्तर जे०एस० मिल ने बेन्थम के दर्शन को सूअर दर्शन कहा है।

प्र.3. उपयोगितावाद की व्याख्या कीजिए।
Explain utilitarianism.
अथवा **उपयोगितावाद क्या है?**
What is utilitarianism?

उत्तर उपयोगितावाद में सार्वजनिक कल्याण की भावना निहित है। यह कोई दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है, वरन् अपने समय का एक प्रकार का व्यावहारिक आन्दोलन था जिसमें समाज और राज्य की परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर संशोधन होते रहे हैं। उपयोगितावाद का आधार यह है कि "मानव तत्त्व एक इन्द्रिय प्रधान प्राणी है। वह भावना की सृष्टि है। वह एक ऐसा प्राणी है, जो सदैव सुख की खोज करता रहता है तथा दु:ख से बचता रहता है।"

प्र.4. बेन्थम के कानून सम्बन्धी विचार लिखिए।
Write the thoughts related to Bentham's law.

उत्तर बेन्थम ने अपने उपयोगितावादी सिद्धान्त के आधार पर इंग्लैण्ड के कानूनों में सुधार करने का प्रयत्न किया। कानून के सम्बन्ध में उसका विचार था कि कानून सर्वोच्च शासक की इच्छा की अभिव्यक्ति मात्र है। बेन्थम ने कानून की परिभाषा इस प्रकार की है, "कानून एक राजनीतिक समाज के आदेशों के रूप में सम्प्रभु की इच्छा की अभिव्यक्ति है जिसका सदस्य स्वेच्छा से पालन करते हैं।" बेन्थम का विचार है कि प्रत्येक राज्य में सम्प्रभु द्वारा निर्मित कुछ कानून अवश्य होने चाहिए।

प्र.5. 'उपयोगितावाद' के लेखक कौन है?
Who is the author of 'utilitarianism'?

उत्तर 'उपयोगितावाद' के लेखक जे०एस० मिल है।

प्र.6. 'स्वतन्त्रता पर निबन्ध' के लेखक कौन है?
Who is the author of 'Essay on Freedom'?

उत्तर 'स्वतन्त्रता पर निबन्ध' जे० एस० मिल की कृति है।

प्र.7. इमैनुअल कांट के अनुसार न्याय क्या है?
What is the justice according to Immanuel kant?

TOUCH 'n' PASS

उत्तर जिसको जर्मन दार्शनिक इमानुएल काण्ट ने प्रस्तुत किया था। यह सिद्धांत यूरोपीय ज्ञानोदय युग (18वी सदी) के परिणाम स्वरुप विकसित हुआ था, यह इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि आंतरिक रूप से एक शुभ संकल्प ही शुभ कार्य है; एक कार्य केवल तभी शुभ हो सकता है यदि उसके पीछे सिद्धांत हो—कि नैतिक नियमों का पालन एक कर्त्तव्य की तरह किया जाये।

प्र.8. कांट का नैतिक सिद्धांत क्या कहलाता है?
What is Kant's ethical theory called?

उत्तर पश्चिमी दर्शन में निरपेक्षवादी या कर्त्तव्यवादी नीतिमीमांसा का चरम विकास कांट के दर्शन में हुआ है। उसके नैतिक सिद्धांत को निरपेक्ष आदेश का सिद्धांत कहा जाता है।

प्र.9. एडमंड बर्क कौन था?
Who was Edmund Burke?

उत्तर एडमंड बर्क का जन्म 1729 में डबलिन में हुआ था। अपने युवाओं से वह समझ गए कि दर्शन के लिए राजनीति के लिए एक स्थानिक प्रासंगिकता थी, क्योंकि इससे समझने में मदद मिली कि भीड़ के माध्यम से प्रकट हुए अमूर्त मुद्दों पर विचार करना चाहिए और इसके अलावा, पालन करने के लिए नैतिक दिशानिर्देश स्थापित किए गए हैं, जो सामाजिक आदेश की व्यवस्था का प्रस्ताव देते हैं।

उन्हें 1766 और 1794 के बीच अंग्रेजी संसद में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। इस चूक में उन्होंने अंग्रेजी उपनिवेशों के अधिकार को स्वतंत्र बनने का अधिकार बताया, और वास्तव में उन्होंने खुद को उत्तरी अमेरिका के कब्जे के खिलाफ तैनात किया। आर्थिक रूप से, जैसा कि हम देखेंगे, वह मुक्त बाजार का एक कट्टरपंथी बचावकर्त्ता था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. काण्ट के राजनीति के स्वरूप का उल्लेख कीजिए।
Mention Kant's nature of politics.

उत्तर

राजनीति का स्वरूप
(Nature of Politics)

राजनीति के स्वरूप के बारे में कांट की अवधारणा उसकी नैतिक मान्यताओं के साथ जुड़ी है। उसने नैतिकता को सर्वोपरि स्थान देते हुए यह विचार प्रकट किया है कि राजनीति को नैतिकता के सामने सदैव नतमस्तक होना चाहिए। सच्ची राजनीति तब तक एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा सकती जब तक वह नैतिक आदर्शों को प्रणाम न कर ले। कांट के अनुसार नैतिकता की प्रेरणा 'सद्-इच्छा' से आती है, परंतु राजनीति केवल कानूनी संस्थाओं का पुनर्निर्माण कर सकती है। यदि राजनीति को नैतिकता से जोड़ दिया जाए तो वह युद्ध पर प्रतिबंध लगाकर, शाश्वत शांति और मानव-अधिकारों की रक्षा का दायित्व सँभाल कर सार्वजनिक कानूनी न्याय (Public Legal Justice) को बढ़ावा दे सकती है।

नैतिक प्रेरणा (Moral Motive) और कानूनी प्रेरणा (Legal Motive) में अंतर करते हुए कांट ने यह तर्क दिया है कि नैतिक प्रेरणा 'सद्- इच्छा' और नैतिक नियमों के प्रति सम्मान की भावना से जन्म लेती है जबकि कानूनी प्रेरणा केवल विवशता की अनुभूति को व्यक्त करती है। चूँकि राजनीति का सरोकार कानूनी प्रेरणा से है, इसलिए वह अपने-आपमें 'सद्-इच्छा' की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

कांट ने लिखा है कि 'साध्य-लोक' (Kingdom of Ends) की संकल्पना सार्वजनिक कानूनी न्याय और नैतिकता के बीच सेतु का निर्माण कर सकती है, क्योंकि सार्वजनिक कानूनी न्याय भी उन साध्यों का समर्थन करता है जो नैतिक भावना के अनुरूप हों। इसी तरह 'साध्य लोक' की संकल्पना कला-कौशल (Arts) और नैतिकता के बीच भी सेतु का निर्माण कर सकती है। ऐसी हालत में कला-कौशल उसी उद्देश्य को समर्पित होंगे जो नैतिकता की भावना को व्यक्त करता है।

यदि सब व्यक्ति 'सद्-इच्छा' से प्रेरित होते तो वे सब व्यक्तियों को 'अपने-आपमें साध्य' के रूप में देखते। पर चूँकि मनुष्य के स्वभाव में 'असद्' (Evil) की ओर झुकाव भी देखा जाता है, इसलिए नैतिक साध्य की सिद्धि के लिए कानूनी प्रेरणा का सहारा लेना ज़रूरी हो जाता है।

सर्वशक्तिमान् या प्रभुसत्ताधारी शासक (Sovereigns) मनुष्य को अपने स्वार्थ की पूर्ति का साधन मानकर 'मनुष्य के अधिकारों' (Rights of Man) का हनन करते हैं। इसका सबसे प्रमुख उदाहरण युद्ध है जो अनैतिक उद्देश्य की पूर्ति का साधन मात्र है। नैतिकता से प्रेरित राजनीति युद्ध की संभावना को समाप्त करने के उद्देश्य से गणतंत्रवाद (Republicanism) का समर्थन

करती है ताकि लोग किसी शासक की प्रजा (Subjects) के स्तर से ऊँचे उठकर नागरिकों (Citizens) का दर्जा प्राप्त कर लें। संक्षेप में, कांट के अनुसार राजनीति को कानून के माध्यम से नैतिक साध्यों की सिद्धि का साधन बनना चाहिए।

प्र.2. एडमंड बर्क की मानव प्रगति की संभावना को लिखिए।
Write the scope of human progress of Edmund Bruke.

उत्तर

मानव प्रगति की संभावना
(Scope of Human Progress)

बर्क के अनुसार मनुष्य की क्षमता बहुत सीमित है। जब ऐसा है तो मानव प्रगति की संभावनाएँ क्या हैं? बर्क का उत्तर है कि मानव सभ्यता निरंतर सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम है। वैसे कोई मनुष्य अपने-आप मानव जीवन की बड़ी-बड़ी समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने की क्षमता नहीं रखता, परंतु अधिकांश लोग अपने व्यावहारिक अनुभव की सीमाओं के भीतर छोटे-छोटे किंतु उपयोगी प्रयोग (Experiments) कर सकते हैं। मनुष्य अपने तथा अपने सहचरों के अनुभव से सीखते हैं, और इन अनुभवों से अर्जित ज्ञान को अपनी संतान के प्रति हस्तांतरित कर देते हैं। इस तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली इस प्रक्रिया से मानवीय परिस्थितियों में क्रमिक उन्नति देखने को मिलती है। लोग अपनी व्यक्तिगत सीमाओं से ऊपर उठकर उपयोगी ज्ञान और कलाओं के निरंतर बढ़ते हुए भंडार से लाभान्वित होते हैं। इस तरह सामाजिक परंपरा ही सभ्यता की प्रगति का संभावित आधार हैं। परंतु बर्क के अनुसार सभ्यता एक नाजुक चीज है जिसके अस्तित्व को लगातार खतरा रहता है। मनुष्य सामाजिक अनुशासन (Social Discipline) से उत्तम मनुष्य बनते हैं, व्यक्तिगत विवेक से नहीं। समाज के बाहर मनुष्य निरे पशु रह जाते हैं। उनकी स्वार्थ भावना और विवेकशून्य आवेगों के दमन के लिए तथा उन्हें सभ्यता का पाठ पढ़ाने के लिए शक्तिशाली संस्थाएँ जरूरी हैं। परंतु संस्थाओं के अस्तित्व को निरंतर खतरा बना रहता है। कोई भी पीढ़ी अपनी पुरानी परंपरा का त्याग करके शताब्दियों से चली आ रही सामाजिक निरंतरता (Social Continuity) को भंग कर सकती है। यदि मानव जाति अपनी स्थापित संस्थाओं को कायम रखने और उन्नत करने को तत्पर हो तो प्रगति सर्वथा संभव है। यदि ऐसा न हो तो बर्बरता की ओर लौट जाना संभव ही नहीं, अवश्यंभावी है।

प्र.3. एडमंड बर्क के स्वतंत्रता का स्वरूप एवं अभिजाततंत्र के समर्थन से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by nature of freedom and defence of aristocracy of Edmund Burke?

उत्तर

स्वतंत्रता का स्वरूप
(Nature of Freedom)

बर्क के विचार से व्यक्ति की स्वतंत्रता सामाजिक जीवन की रीतियों और नियमों के अनुरूप जीने में निहित है, उनसे हटकर चलने में नहीं। अत: उसके विचार से स्वतंत्रता अभिरुचि (Aptitude) का विषय है, अधिकार (Right) का नहीं। मनुष्य वहीं तक नागरिक स्वतंत्रता (Civil Liberty) के पात्र हैं जहाँ तक वे आत्मसंयम, न्यायप्रियता, धैर्य और बुद्धिमत्ता का परिचय देते हैं। बर्क के अनुसार यह एक शाश्वत सत्य है कि धैर्यहीन मनुष्य स्वतंत्र नहीं हो सकते। उनके मनोवेग (Passions) उनके पाँवों में बेड़ियाँ डाल देते हैं। बर्क अधिकारों की ऐसी सामान्य और अमूर्त परिभाषा देने को तैयार नहीं जो सब मनुष्यों को सुलभ होने चाहिए क्योंकि ये प्रचलित परिपाटी (Convention) के द्वारा निर्धारित होते हैं। सरकार का ध्येय अधिकारों की व्यवस्था या संरक्षण करना नहीं बल्कि यह 'मानवीय बुद्धि की ऐसी रचना है जिसका ध्येय मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।'

अभिजाततंत्र का समर्थन (Defence of Aristocracy)

बर्क के अनुसार, सामाजिक जीवन के क्षेत्र में मार्गदर्शन (Guidance) और नेतृत्व (Leadership) सर्वथा आवश्यक हैं। सामाजिक नेतृत्व का आधार जनसाधारण की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वे योग्यता, सद्गुण, बड़ी आयु और सामाजिक गरिमा के प्रति नतमस्तक होते हैं, और अपना स्नेह प्रदर्शित करते हैं। नेतृत्व के गुणों को आगे बढ़ाने वाली सर्वोत्तम संस्था वंशागत अभिजाततंत्र (Hereditary Aristocracy) है जो विशेषज्ञता (Expert Knowledge) और आत्मसंयम् (Self-Control) का समन्वय प्रस्तुत करता है। यह समाज के सम्मानित सदस्यों को सार्वजनिक सेवा के लिए तैयार करता है जिसमें वे अपने हित और सार्वजनिक हित को एकाकार कर देते हैं। वंशागत अभिजाततंत्र नेतृत्व और उसके अनुयायियों के संबंध को संस्थागत स्वरूप प्रदान करता है। वंशागत अभिजाततंत्र का अधिक विकसित रूप राजतंत्र (Monarchy) है जो राजनीतिक व्यवस्था की सच्ची धुरी है क्योंकि वह आज्ञापालन और आदर-भावना को बढ़ावा देता है और उसे पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँचा देता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. एडमंड बर्क के राजनीतिक स्वरूप का निष्कर्ष लिखिए।
Write the conclusion of Edmund Burke's political nature.

उत्तर

राजनीति का स्वरूप
(Nature of Politics)

बर्क के अनुसार राजनीति और नैतिकता किन्हीं काल्पनिक आदर्शों के अनुकरण से सार्थक नहीं होतीं, बल्कि ये दूरदर्शिता और व्यवहार कुशलता (Prudence and Practicability) के विषय हैं। यदि किसी परिपूर्ण तार्किक आदर्श को अपूर्ण और जटिल यथार्थ पर थोपने की कोशिश करेंगे तो हम न केवल वर्तमान व्यवस्था के गुणों को नष्ट कर देंगे, बल्कि उसमें सीमित सुधार की संभावनाओं को भी समाप्त कर बैठेंगे। नैतिक सिद्धांतों को लोगों की भावनाओं, उनके परस्पर विरोधी हितों, उनकी परस्पर संबद्ध संस्थाओं तथा परिस्थिति की जटिल वास्तविकताओं के साथ समायोजित करना जरूरी है। इस तरह का तर्क देकर बर्क ने ह्विग पार्टी के 'स्वतंत्रता' (Freedom) के सिद्धांत को टोरी पार्टी के 'व्यवस्था' (Order) के सिद्धांत के साथ मिलाने का प्रयत्न किया है। उसने 'व्यवस्था' को 'स्वतंत्रता' और समृद्धि का पोषक स्वीकार किया है।

निष्कर्ष (Conclusion)

बर्क की राजनीतिक दृष्टि में विविधता के साथ-साथ बिखराव दिखाई देता है। वह उदारवादी अर्थशास्त्र (Liberal Economics) और सामाजिक रूढ़िवाद (Social Conservatism) के संभावित संघर्ष का कोई समाधान नहीं कर पाया। इसका एक कारण यह था कि उसके सिद्धांत सामाजिक जीवन की व्याख्या के लिए तो उपयुक्त थे; उन्हें राज्य के स्वरूप, कृत्यों और वैधता के सिद्धांत मान लेने पर भ्रांति पैदा होना स्वाभाविक है। बर्क की दृष्टि में राजनीति 'दूरदर्शिता और व्यवहार-कुशलता' का विषय थी। संरक्षणवादी या रूढ़िवादी उसके सिद्धांतों की सराहना इस आधार पर करते हैं कि इनमें अमूर्त, अज्ञात और काल्पनिक विषयों की तुलना में मूर्त्त, ज्ञात और परिचित विषयों को प्रधानता दी गई है।

उन्नीसवीं शताब्दी में बर्क की ख्याति अपने चरम शिखर तक पहुँच गई थी। परंतु रूढ़िवादियों के लिए वह बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक प्रेरणा का स्रोत बना रहा। समकालीन विचारकों में अंग्रेज दार्शनिक माइकल ओकशॉट (1901-90) के चिंतन को बर्क के चिंतन के साथ जोड़ा जाता है। उधर अमेरिका में नवरूढ़िवाद (Neo-conservatism) के अंतर्गत बर्क के रूढ़िवाद को समकालीन परिस्थितियों के संदर्भ में दोहराने का प्रयत्न किया गया है।

प्र.5. बेन्थम के योगदान का उल्लेख कीजिए।
Mention the contribution of Bentham.

उत्तर

बेन्थम का योगदान
(Contribution of Bentham)

अनेक अन्तर्विरोधों व सम्भ्रान्तियों के बावजूद बेन्थम राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक श्रेष्ठ विचारक के रूप में गिना जाता है। उसने उन्नीसवीं शताब्दी के घटनाचक्र को इंग्लैण्ड तथा अन्य देशों में सुधारने के रूप में इतना अत्यधिक प्रभावित किया, उतना अन्य किसी विचारक ने नहीं किया। उसके सुधारों सम्बन्धी सुझाव सम्पूर्ण संसार के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं उसकी रचनाओं का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया और उसने रूस, स्पेन, पुर्तगाल व दक्षिणी अमेरिका की राजनीतिक विचारधारा को भी प्रभावित किया। उसका राजनीतिक चिन्तन के विकास में निम्नलिखित योगदान है—

1. **राज्य व सरकार का कल्याणकारी लक्ष्य**—बेन्थम ने राज्य व सरकार का लक्ष्य अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख प्रदान करना बताया है। बेन्थम ने कहा कि राज्य मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य राज्य के लिए है। उसने कहा कि वही राज्य उत्तम हो सकता है जो अपने प्रजाजनों का अधिकतम हित चाहता हो। उसने राज्य व सरकार की सफलता की कसौटी व्यक्तियों को अधिक से अधिक सुख प्रदान करने को माना है। बेन्थम ने राज्य व सरकार को कल्याणकारी संस्थाएँ माना है। उसका कहना है कि राज्य व सरकार की उत्पत्ति मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही होती है और इनका अस्तित्व इन आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही निर्भर है। इसलिए उसने राज्य व सरकार को जनता की भलाई के लिए अधिकतम प्रयास कर अपने अस्तित्व को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए कहा है। उसका 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' का लक्ष्य आधुनिक राज्यों व सरकारों का भी लक्ष्य है। अत: यह बेन्थम की शाश्वत देन है।
2. **न्याय-व्यवस्था में सुधार**—बेन्थम ने ब्रिटिश न्याय प्रणाली की कटु आलोचना करते हुए न्यायिक सुधार के सुझाव दिए हैं। उसने कहा है कि न्याय अमीरों को ही मिलता है, गरीबों को नहीं। उसने गरीबों के लिए 'Poor Law' बनाने का सुझाव दिया। उसने न्यायिक कार्यवाहियों को सरल व सस्ता बनाने का जो सुझाव दिया, वह आज भी अनेक देशों की न्यायिक व्यवस्थाओं में अपनाया गया है। इंग्लैण्ड की सरकार ने भी बेन्थम के सुझावों पर ही अपनी न्याय प्रणाली का विकास किया है।

TOUCH 'n PASS

3. **कानूनों का सुधार**—बेन्थम ने कानून के क्षेत्र में अविलम्ब तथा स्थायी प्रभाव डाला है। उसने कानून में सरलता, स्पष्टता व व्यावहारिकता लाने का जो सुझाव दिया था, वह ब्रिटिश सरकार द्वारा बाद में अपनाया गया। उसने कानूनों को नागरिक, फौजदारी तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के रूप में बाँटकर कानूनशास्त्र को एक नई दिशा दी। अमेरिका, रूस तथा अन्य देशों ने उसके संहिताकरण के आधार पर ही अपनी कानून व्यवस्था को ढालने का प्रयास किया है। उसके प्रयत्न से ही कानून के मौलिक सिद्धान्तों के चिन्तन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। भारत में भी उसके सुधारों का व्यापक प्रभाव पड़ा है।
4. **दण्ड व्यवस्था में परिवर्तन**—बेन्थम ने दण्ड व्यवस्था में सुधार के अनेक उपायों को प्रस्तुत किया है। उसने जेलों में सुधार के अनेक उपायों को प्रस्तुत किया है। उसने जेलों में सुधार की जो योजना सुझाई थी, वह आज भी अनेक देशों में व्यावहारिक रूप ले चुकी है।
5. **समानता का विचार**—बेन्थम ने कहा है कि 'एक व्यक्ति को एक ही गिनना चाहिए।' इस विचार से समानता के सिद्धान्त का जन्म होता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे अमीर हो या गरीब, कानून की दृष्टि में समान है। उसका समानता का विचार प्रतिनिधि लोकतन्त्र का आधार है।
6. **लोकतन्त्र का संस्थापक**—बेन्थम ने गुप्त मतदान, प्रेस की आजादी, वयस्क मताधिकार, धर्मनिरपेक्षता आदि विचारों का समर्थन करके लोकतन्त्र को सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। आधुनिक युग में भी सभी प्रजातान्त्रिक देशों में इनका वही महत्त्व है जो बेन्थम ने सुझाया था। अत: बेन्थम लोकतन्त्र के संस्थापक हैं।

प्र.6. बेन्थम की महत्त्वपूर्ण रचनाओं एवं अध्ययन पद्धति का उल्लेख कीजिए।
Explain the important works and method of study of Bentham.

उत्तर

बेन्थम की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ
(Important Works of Bentham)

बेन्थम निर्बाध रूप से लिखने वाला एक महान विचारक था। उसने तर्कशास्त्र, कानून, दण्डशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विविध क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा के जौहर दिखाए। उसकी अधिकतर रचनाएँ अपूर्ण हैं। उसका सम्पूर्ण लेखन कार्य 148 सन्दूकों में पाण्डुलिपियों के रूप में लन्दन विश्वविद्यालय और ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित रखा हुआ है। उसकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **फ्रेगमेण्टस ऑन गवर्नमेंट** (Fragments on Government)—यह पुस्तक 1776 ई. में प्रकाशित हुई। यह बेन्थम की प्रथम पुस्तक है। इस पुस्तक में बेन्थम ने ब्लैकस्टोन की कानूनी टीकाओं पर तीव्र प्रहार किए हैं। इस पुस्तक ने इंग्लैण्ड के न्यायिक क्षेत्रों में हलचल मचा दी और इससे बेन्थम का सम्मान बढ़ा। इस पुस्तक में बेन्थम ने तत्कालीन इंग्लैण्ड की न्याय-व्यवस्था के दोषों व उन्हें दूर करने के उपायों का वर्णन किया है।
2. **एन इण्ट्रोडक्शन टू दि प्रिन्सिपल्स ऑफ मारल्स एण्ड लेजिस्लेशन** (Introduction to the Principles of Morals and Legislation)—इस पुस्तक का प्रकाशन 1789 ई. में हुआ। इस पुस्तक में उपयोगितावाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। यह बेन्थम की सर्वोत्तम रचना है।

इन दो पुस्तकों के अतिरिक्त भी बेन्थम ने कुछ अन्य रचनाएँ भी लिखीं जो निम्नलिखित हैं—

(i) डिसकोर्सेज आन सिविल एण्ड पेनल लेजिस्लेशन (Discourses on Civil and Penal Legislation, 1802)
(ii) प्रिन्सिपल्स ऑफ इण्टरनेशनल लॉ (Principles of International Law)
(iii) ए थ्योरी ऑफ पनिशमेण्ट एण्ड रिवार्ड्स (A Theory of Punishment and Rewards, 1811)
(iv) ए ट्रीएटाईज ऑन ज्यूडिशियल एवीडेंस (A treatise on Judicial Evidence, 1813)
(v) दॉ बुक ऑफ फैलेसीज (The Book of Fallacies, 1824)
(vi) कॉन्सटीट्यूशनल कोड (Constitutional Code, 1830)

बेन्थम की अध्ययन पद्धति
(Method of Study of Bentham)

बेन्थम ने अपने चिन्तन में प्रयोगात्मक पद्धति का अनुसरण किया है। उसके उपयोगितावाद का सम्बन्ध जीवन के व्यावहारिक मूल्यों से है। इसलिए उसने वास्तविक जगत् के मनुष्यों के व्यवहार को जानने के लिए अनुभवमूलक पद्धति का ही सहारा लिया है। बेन्थम ने निरीक्षण, प्रमाण और अनुभव के आधार पर ही वास्तविक तथ्यों को जानने का प्रयास किया है। वह किसी वस्तु को कल्पना के

TOUCH 'n' PASS

आधार पर स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। उसका विश्वास है कि निरीक्षण-परीक्षण एवं अनुभव पर आधारित परिणाम के अनुसार ही सत्य या असत्य की पहचान हो सकती है। वह प्रत्येक वस्तु को उपयोगिता की कसौटी पर रखता है। यदि कोई वस्तु उपयोगिता की दृष्टि से निरर्थक है, तो वह त्याज्य है। उपयोगिता की धारणा मूलत: प्रयोगात्मक है। बेन्थम उस अनुभव में विश्वास करता है जो वास्तविक तथ्यों से उत्पन्न होता है और जिसका प्रयोग व्यावहारिक जगत् में किया जा सकता है। उसका मानना है कि अनुभव ही ज्ञान का स्रोत है और सत्यता की कसौटी है। यदि किसी तथ्य के बारे में कोई सन्देह होता है तो उसका समाधान अनुभव के द्वारा ही किया जा सकता है। इस प्रकार अनुभव विचारों का अन्तिम स्रोत भी है। इसके अतिरिक्त बेन्थम ने तथ्यों की बौद्धिक व्याख्या एवं वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए इन्द्रिय संसर्ग का होना भी अनिवार्य माना है। इन्द्रिय संसर्ग से संवेदना उत्पन्न होती है और संवेदना से विचार उत्पन्न होते हैं। यही संसर्ग अनुभव को प्रभावित करता रहता है। इस प्रकार बेन्थम की पद्धति संसर्ग, निरीक्षण, अनुभव और प्रमाण पर आधारित होने के कारण आगमनात्मक, अनुभवात्मक, विश्लेषणात्मक व विवेचनात्मक है। बेन्थम की प्रयोगात्मक पद्धति उसकी महत्त्वपूर्ण देन है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. इमैनुएल कांट के नैतिक स्वतंत्रता की संकल्पना का वर्णन कीजिए।
Describe the concept of moral freedom of Immanuel Kant.

उत्तर

नैतिक स्वतंत्रता की संकल्पना
(Concept of Moral Freedom)

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक इमैनुएल कांट (1724-1804) ने अपनी अनेक दार्शनिक कृतियों के माध्यम से दर्शनशास्त्र को समृद्ध किया जिनमें उसके राजनीतिक चिंतन की झलक भी मिलती है। इनमें 'क्रिटीक ऑफ प्योर रीजन' (शुद्ध तर्क मीमांसा) (1781), 'ग्राउंडवर्क ऑफ द मैटाफिजिक ऑफ मॉरल्स' (नैतिक तत्त्वमीमांसा की आधारभूमि) (1785) और 'मैटाफिजिकल ऐलीमेंट्स ऑफ जस्टिस' (न्याय के तत्त्वमीमांसात्मक मूलतत्त्व) (1797) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

नैतिक स्वतंत्रता की संकल्पना कांट के राजनीति-दर्शन का सार-तत्त्व है। यह विचार तात्त्विक इच्छा (Real will) के बारे में ज्यां जाक रूसो (1712-78) की संकल्पना से प्रेरित है, परंतु कांट ने इसे अपने ढंग से विकसित किया है। कांट के विचार से तर्कबुद्धि या विवेक (Reason) मनुष्य के चरित्र का आधार-तत्त्व है। इसकी प्रेरणा से वह यह सीखता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने-आपमें साध्य (End-in-itself) माना जाए—किसी दूसरे के स्वार्थ की पूर्ति का साधन न माना जाए। यह विचार उसे अपने कर्त्तव्य (Duty) का बोध कराता है। इस कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित इच्छा में ही उसकी स्वतंत्रता निहित है। अत: उसकी नैतिक स्वतंत्रता ही उसकी सच्ची स्वतंत्रता है।

चूँकि नैतिक स्वतंत्रता का स्रोत स्वयं व्यक्ति (Individual) है—कोई बाह्य व्यवस्था नहीं, इसलिए कांट का चिंतन व्यक्तिवादी दृष्टिकोण (Individualistic View) का प्रतिनिधित्व करता है। परंतु जब सब व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त करके एक जैसी इच्छा करने लगते हैं, तब वह सार्वजनीन नियम (Universal Rule) के रूप में व्यक्त होती है। उदाहरण के लिए, जब प्रत्येक व्यक्ति की तर्कबुद्धि उसे यह शिक्षा देती है—'चोरी मत कर', तब यह विचार सार्वजनीन नियम का रूप धारण कर लेता है। इस तरह के नियमों का समुच्चय कानून (Law) के रूप में सामने आता है, और उसे लागू करने के लिए राज्य की जरूरत पैदा होती है। अत: नैतिक स्वतंत्रता का विचार ही राज्य के अस्तित्व का कारण है।

इसी तर्क के अनुसार राज्य सामाजिक अनुबंध (Social Contract) का परिणाम है। अनुबंध के माध्यम से मनुष्य अपनी बाह्य स्वतंत्रता (External Freedom) का त्याग कर देते हैं ताकि वे एक 'सार्वजनिक व्यवस्था' (Common-wealth) के सदस्यों के रूप में तुरंत अपनी स्वतंत्रता को फिर से प्राप्त कर सकें। इसके माध्यम से वे अपनी 'अदम्य, नियमविहीन स्वतंत्रता' (Wild, Lawless Freedom) को इसलिए तिलांजलि दे देते हैं ताकि वे उसकी जगह 'परिपूर्ण स्वतंत्रता' (Perfect Freedom) स्थापित कर सकें। यह स्वतंत्रता कभी लुप्त नहीं होती क्योंकि यह उनकी अपनी 'स्वतंत्र विधायी इच्छा' (Free Legislative Will) की देन है।

कांट के अनुसार, मनुष्य केवल अपनी स्वतंत्र इच्छा से ही दूसरों के साथ कोई संबंध स्थापित कर सकते हैं। अत: किसी भी अनुबंध का ध्येय 'परस्पर लाभ' (Mutual Benefit) होना चाहिए—किसी एक पक्ष के स्वार्थ को बढ़ावा देना नहीं। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि समकालीन राजनीति-दार्शनिक जॉन राल्स (1921-2002) ने न्याय के सिद्धांत की नींव रखते समय जिन 'विवेकशील वार्ताकारों' (Rational Negotiators) की कल्पना की है, उनका चरित्र मनुष्य के बारे में कांट की मान्यताओं से मिलता-जुलता है।

व्यावहारिक विवेक और मानव गरिमा (Practical Reason and Human Dignity)

ज्ञानमीमांसा (Epistemology) के क्षेत्र में अपने 'अनुभवातीत आदर्शवाद' (Transcendental Idealism) का निरूपण करते हुए कांट ने यह तर्क दिया है कि सृष्टि के बारे में हमारा ज्ञान केवल ज्ञानेंद्रियों (Sense Organs) से प्राप्त होने वाले गूढ़ और बिखरे हुए संकेतों पर आधारित होता है जिन्हें हमारा मन तर्कसंगत रूप में समन्वित करके सार्थक अनुभव का आकार देता है। अत: हम इस जगत् का जो ज्ञान (Knowledge) प्राप्त करते हैं, उस पर ज्ञाता (Knower) की छाप लगी रहती है। परंतु यह सृष्टि अपने-आपमें क्या है, कैसी है—इसका ज्ञान प्राप्त करना हमारे लिए संभव नहीं है। दूसरे शब्दों में, हम अपने अनुभव के आधार पर सृष्टि के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। इसके लिए हमारे पास एक ही उपाय रह जाता है, और वह यह है कि हम अपने व्यावहारिक विवेक (Practical Reason) का सहारा लेकर 'मन' और 'जगत्' के परस्पर संबंध का पता लगा सकते हैं। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि हमारी सारी संकल्पनाएँ मानवीय गतिविधियों के संदर्भ में जन्म लेती हैं। ये गतिविधियाँ श्रम (Labour), विज्ञान (Science) और सब तरह की कलाओं (Arts) के रूप में व्यक्त होती हैं जो विश्व को मानवीय उद्देश्यों और योजनाओं के अनुरूप ढालना चाहती हैं। अत: दर्शनशास्त्र (Philosophy) की स्थापना इस ज्ञान के आधार पर करनी चाहिए कि मनुष्य अपने जीवन की मुख्य-मुख्य गतिविधियों के द्वारा विश्व को मनचाहा रूप देने के लिए कौन-कौन-से तरीके अपनाते हैं? मनुष्य का व्यावहारिक विवेक भौतिक जगत् के कार्य-कारण संबंध के नियमों से नहीं बँधा है, बल्कि यह 'सद्-असद्' अर्थात् भले-बुरे (Good and Evil) में अंतर करने में समर्थ है। अत: वह 'नैतिक नियम' (Moral Law) से मार्गदर्शन प्राप्त करता है जो कि तत्त्वमीमांसा (Metaphysics) की बुनियाद है। इस तरह कांट ने 'नैतिक नियम' की प्रभुसत्ता का सिद्धांत प्रस्तुत किया है जिसने आदर्शवादी दर्शन को विशेष रूप से आगे बढ़ाया है।

मानव-प्रकृति के संबंध में कांट के यही विचार मानव-गरिमा (Human Dignity) के सिद्धांत का आधार हैं। इसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य केवल मनुष्य होने के नाते विशेष सम्मान का पात्र है, और किसी भी सांसारिक वस्तु के मूल्य (Value) से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। प्रत्येक मनुष्य केवल मनुष्य होने के नाते अपने-आपमें साध्य (End-in-itself) है; वह किसी अन्य साध्य का साधन नहीं हो सकता।

प्रत्येक मनुष्य को इस दृष्टि से देखने की सद्-इच्छा (Goodwill) एक निरपेक्ष आदेश (Categorical Imperative) है, अर्थात् यह ऐसा नियम है जिसके साथ कोई शर्त नहीं जोड़ी जा सकती। सर अर्नेस्ट बार्कर (1874-1960) ने मानव स्वतंत्रता की विस्तृत व्याख्या के लिए कांट की इस मान्यता को एक बुनियादी सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया है।

प्र.2. एडमंड बर्क के रूढ़िवाद के सैद्धांतिक आधार एवं सुधार के महत्त्व की विवेचना कीजिए।
Describe the theoretical basis of conservatism and significance of reform of Edmund Burke.

उत्तर

रूढ़िवाद का सैद्धांतिक आधार
(Theoretical Basis of Conservatism)

एडमंड बर्क (1729-97) अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दौर का प्रसिद्ध ब्रिटिश (आयरिश) राजमर्मज्ञ एवं लेखक था। उसने अपना लेखन एक साहित्यकार के रूप में आरंभ किया, परंतु आगे चलकर उसने राजनीति की समस्याओं पर प्रसिद्ध कृतियाँ प्रस्तुत कीं। बर्क को आधुनिक बौद्धिक रूढ़िवाद (Modern Intellectual Conservatism) का मूल प्रवर्त्तक माना जाता है। अपने राजनीतिक जीवन में बर्क शुरू-शुरू में ह्विग पार्टी के साथ रहा क्योंकि 1765 में उसे ह्विग दलीय प्रधान मंत्री लार्ड रॉकिंघम ने अपना निजी सचिव नियुक्त कर दिया था। परंतु 1790 में जब उसने फ्रांसीसी क्रांति (1789) के बारे में अपने विचार 'रिफ्लैक्शन्स ऑन द रीसेंट रिवोल्यूशन इन फ्रांस' (फ्रांस की नवीन क्रांति की समीक्षा) के अंतर्गत प्रकाशित किए, तब ह्विग पार्टी के साथ उसका नाता टूट गया। इस कृति ने बर्क को फ्रांसीसी क्रांति के आलोचक के रूप में स्थापित कर दिया।

बर्क के राजनीतिक दृष्टिकोण में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Historical Perspective) की प्रधानता है। उसके विचार से राज्य ऐसे ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम है जैसा जीवित प्राणी (Living Organism) के विकास में देखने को मिलता है। जैसे जीवित प्राणी अपने पृथक्-पृथक् अंगों की तुलना में बड़ा और जटिल होता है, और उसके अंगों की चीर-फाड़ करने पर वह जीवित नहीं रह पाता, वैसे ही राज्य अपने संघटक-तत्त्वों की तुलना में अधिक विशाल और जटिल होता है, और उन अंगों को काट देने पर उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।

समाज ऐसे संबंधों का समुच्चय है जो अंतत: अपने सदस्यों के क्रिया-कलाप पर आश्रित हैं। ये क्रियाएँ व्यवहार के तौर-तरीकों (Manners), रीति-रिवाज (Customs) और ऐसे व्यक्त या अव्यक्त नियमों (Expressed or Unexpressed Rules) का

सृजन करती हैं जिनके अंतर्गत हमारा समाजीकरण (Socialization) होता है। बर्क ने इन्हें 'पूर्वाग्रह' (Prejudices) की संज्ञा दी है। बर्क के अनुसार, जो पूर्वाग्रह हमारे स्वभाव का अंग बन जाते हैं, वे उन पूर्वाग्रहों की तुलना में अधिक विश्वस्त होते हैं जिन्हें हम नैतिक, नियमों या सिद्धांतों के रूप में जान-बूझकर अपनाते हैं। बर्क के अनुसार, पूर्वाग्रह मनुष्य के सद्‌गुण (Virtue) को उसका स्वभाव बना देता है। इन पूर्वाग्रहों को एक-के-बाद-दूसरी पीढ़ी 'टुकड़े-टुकड़े' करके अपनाती चलती है। वैसे यह नियम उन सभी समाजों पर लागू होता है जो समय के साथ अपने अस्तित्व को कायम रखते हैं, परंतु इंग्लैंड के संविधान के संदर्भ में यह नियम विशेष रूप से लागू होता है क्योंकि उसमें लोक-विधि (Common Law) के अंतर्गत पूर्वदृष्टांत (Precedent) को प्रधानता दी जाती है। पुराने ह्विग विचारक इंग्लैंड के संविधान को प्राचीन संविधान (Ancient Constitution) के रूप में देखते थे जो कभी बदलता नहीं था, परंतु कभी-कभी उसमें 1688 की गौरवमय क्रांति (Glorious Revolution) जैसे सुधार लाए जा सकते थे। इसके विपरीत बर्क ने यह विचार रखा कि इस संविधान में समय के साथ क्रमिक विकास होता रहा है।

लोक विधि (Common Law)

इंग्लैंड की कानूनी प्रणाली (Legal System) का वह हिस्सा जो प्रचलित प्रथाओं (Conventions) की देन माना जाता है। वहाँ के न्यायाधीश अपनी सूझ-बूझ (Common Sense) और तर्कबुद्धि (Reason) का प्रयोग करके अपने निर्णयों के अंतर्गत इस कानून की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, और ये निर्णय भावी मुकदमों के लिए पूर्वदृष्टांत (Precedent) के रूप में मान्य होते हैं।

एक सक्रिय राजनीतिज्ञ के रूप में बर्क ने यह अनुभव किया कि सामाजिक संस्थाएँ निरंतर ह्रास और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया से गुजरती हैं, और कभी-कभी उनके स्वास्थ्य-लाभ के लिए सुधारात्मक उपाय जरूरी हो जाते हैं। समाज की कौन-कौन-सी संस्थाएँ, रीति-रिवाज और प्रथाएँ कायम रखने के लिए उपयुक्त हैं—इस बारे में किन्हीं सामान्य नियमों का पता नहीं लगाया जा सकता। दूसरे शब्दों में, समाज का विकास अपने आंतरिक नियमों से होता है—इस प्रक्रिया को तार्किक परीक्षण (Logical Test) का विषय नहीं बनाया जा सकता। सामाजिक अनुबंध (Social Contract) के सिद्धांतकारों ने प्राकृतिक अधिकार (Natural Rights) या प्राकृतिक दशा (State of Nature) जैसी संकल्पनाओं के आधार पर नागरिक समाज (Civil Society) की जो समीक्षाएँ प्रस्तुत कीं, उन पर बर्क ने विशेष रूप से प्रहार किया। उसने तर्क दिया कि सभ्य समाज के अस्तित्व से पहले जिन अधिकारों के अस्तित्व की कल्पना की जाती है, उन्हें सभ्य समाज पर लागू करना एक भूल है। यदि 'सामाजिक अनुबंध' जैसी कोई चीज हुई भी है तो वह निश्चय ही तथाकथित प्राकृतिक अधिकारों का त्याग करके संपन्न हुई है। परंतु बर्क ने डेविड ह्यूम (1711-76) की तरह 'सामाजिक अनुबंध' की धारणा को सर्वथा निराधार नहीं माना बल्कि इसे आमूल-परिवर्तनवादी (Radical) धारणा से रूढ़िवादी (Conservative) धारणा में बदल दिया। प्रस्तुत संदर्भ में 'रिफ्लैक्शन्स ऑन द रिवोल्यूशन इन फ्रांस' (फ्रांस की नवीन क्रांति की समीक्षा) (1790) के अंतर्गत बर्क की यह टिप्पणी बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है—'समाज वास्तव में एक अनुबंध है। परंतु यह ऐसी बातों में लोगों की साझेदारी (Partnership) नहीं है जो क्षणिक और क्षणभंगुर हों। यह समस्त विज्ञान और समस्त कलाओं में उनकी साझेदारी है। यह प्रत्येक सद्‌गुण और परिपूर्णता में उनकी साझेदारी है। चूँकि इस साझेदारी के लक्ष्य अनेक पीढ़ियों में भी पूरे नहीं किए जा सकते, इसलिए यह उन लोगों की साझेदारी बन जाती है जो जीवित हैं, जो मर चुके हैं, और जिन्हें अभी जन्म लेना है।'

बर्क के अनुसार 'आदिम प्रकृति' (Primitive Nature) को नैतिक और राजनीतिक श्रेष्ठता का मानदंड नहीं बनाया जा सकता। मनुष्य ने प्रकृति के धरातल पर शिष्टता (Civility) की पर्त चढ़ा दी है। अमूर्त विश्लेषण (Abstract Analysis) और तर्क पर आधारित सुधार योजनाएँ इस पर्त को फाड़ सकती हैं, चाहे उनका उद्‌देश्य कितना ही अच्छा क्यों न हो। कोई भी नियम या सिद्धांत परिस्थिति—विशेष में ही अच्छे या बुरे होते हैं। अत: किसी विशेष समाज के संदर्भ में ही उनकी जाँच-परख करनी चाहिए, अमूर्त स्थिति के संदर्भ में नहीं। जीवंत संविधान (Functioning Constitution) युग-युगांतर के अनेक मस्तिष्कों के चिंतन का परिणाम होते हैं, परंतु शासन के सिद्धांत किसी एक सीमित बुद्धि की देन हैं। बर्क के शब्दों में, 'व्यक्ति नासमझ है, परंतु जाति समझदार होती है' (The individual is foolish but the species is wise)। अत: जिस व्यवस्था के निर्माण में पूरी जाति की सूझ-बूझ लगी है, उसमें 'यथास्थिति' (Status Quo) बनाए रखना ही उपयुक्त है।

सुधार का महत्त्व (Significance of Reform)

बर्क ने 'यथास्थिति' पर बल देते हुए उसके साथ-साथ उपयुक्त 'सुधार' का समर्थन भी किया है। मूलत: उसका रूढ़िवाद 'संशयवाद' (Skepticism) के दर्शन पर आधारित है। इसके अनुसार, समाजों के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया का पता नहीं लगाया जा सकता। अत: किन्हीं काल्पनिक नियमों के आधार पर समाज के पुनर्निर्माण का प्रयास विनाशकारी होगा। बर्क की विचारधारा रूढ़िवाद के उन रूपों से भिन्न है जो अतीत या वर्तमान के किसी आदर्श को पहचान कर निरंतर उसके अनुरूप चलने

की माँग करते हैं। बर्क वर्तमान व्यवस्था को कायम रखना चाहता है, परंतु इसके लिए वह कठोरता (Rigidity) के पक्ष में नहीं है, बल्कि उसे टूटने से बचाने के लिए वह आवश्यक सुधार की गुंजाइश रखता है। देखा जाए तो अपने युग में बर्क की ख्याति एक सुधारक (Reformer) के रूप में थी। उसने तर्क दिया—'हमें सुधार अवश्य करना चाहिए ताकि वर्तमान व्यवस्था को जीवंत रखा जा सके' (We must reform in order to preserve)। उसने आगे कहा—'जिस समाज में सुधार के साधन नहीं पाए जाते, उसमें संरक्षण के साधन भी नहीं पाए जाते।'

राजमर्मज्ञ (Statesman) के गुणों की चर्चा करते हुए बर्क ने जो विचार व्यक्त किए हैं, उनमें उपर्युक्त दृष्टिकोण की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। बर्क के अनुसार, राजमर्मज्ञ को न तो वर्तमान व्यवस्था को अंधाधुंध ध्वस्त कर देना चाहिए, न ही हर कीमत पर परिवर्तन का विरोध करना चाहिए। उसने लिखा है—'संरक्षण की प्रवृत्ति और सुधार की क्षमता–इन दोनों का संयोग मेरे विचार से राजमर्मज्ञ का आदर्श होना चाहिए' (A disposition to preserve, and an ability to improve, taken together, would be my standard of a statesman)। बर्क का यह दृष्टिकोण उसे सच्चा रूढ़िवादी सिद्ध करता है जो स्थिर रूढ़िवादी (Stand-pat Conservative) और प्रतिक्रियावादी (Reactionary) दोनों से भिन्न है। स्थिर रूढ़िवादी यथास्थिति से इतना संतुष्ट होता है कि वह कोई भी परिवर्तन या सुधार करने को तैयार नहीं होता। दूसरी ओर, प्रतिक्रियावादी परिवर्तन तो चाहता है, परंतु वह आगे नहीं बढ़ना चाहता बल्कि पीछे की ओर लौट जाना चाहता है। सच्चा रूढ़िवादी संरक्षण और परिवर्तन के बीच संतुलन कायम रखना चाहता है, हालांकि संरक्षण की ओर उसका ज्यादा झुकाव रहता है।

बर्क के अनुसार, सुधार का काम किसी स्पष्ट और वर्तमान बुराई को हटाने के उद्देश्य से हाथ में लेना चाहिए और उसे इसी ध्येय की पूर्ति तक सीमित रखना चाहिए। इसका उद्देश्य समाज को किन्हीं तर्क-प्रेरित मानदंडों के अनुरूप ढालना नहीं होना चाहिए। बर्क ने फ्रांसीसी क्रांति (1789) की आलोचना इसी आधार पर की, क्योंकि वह अमूर्त सिद्धांतों से प्रेरित थी। इंग्लैंड की 1688 की गौरवमय क्रांति (Glorious Revolution) इससे सर्वथा भिन्न थी। अंग्रेजों ने 1688 की क्रांति में सत्ताधारी व्यक्तियों को तो बदल दिया था, परंतु प्रचलित संस्थाओं को अक्षुण्ण रखा था। इसके विपरीत, फ्रांसीसियों ने 1789 की क्रांति में सम्राट् का समर्थन करने वाली संस्थाओं को ही नष्ट कर दिया था। दूसरी ओर बर्क ने 1776 के अमरीकी क्रांतिकारियों की गतिविधियों को इसलिए सराहा क्योंकि अमेरिकियों के दावे अंग्रेजों के परंपरागत और सकारात्मक अधिकारों (Traditional Positive Rights) पर आधारित थे। इनका सारांश था—'प्रतिनिधित्व नहीं तो कराधान नहीं' (No taxation without representation)। ये दावे मनुष्यों के प्राकृतिक अधिकार जैसी अमूर्त संकल्पनाओं पर आधारित नहीं थे, जैसे कि फ्रांसीसी क्रांतिकारियों ने पेश किए थे।

बर्क ने वर्तमान व्यवस्था की रक्षा करते हुए सुधार लागू करने के ये उपाय सुझाए हैं—(1) धार्मिक व्यवस्था को मत-विरोधियों (Dissenters) की अंतरात्मा (Conscience) का सम्मान करना चाहिए; (2) कुलीनतंत्र (Nobility) को नई प्रतिभाओं के प्रवेश के लिए कुछ गुंजाइश रखनी चाहिए; (3) जब कोई नई परिस्थिति पैदा हो जाए या ऐसी समस्या सामने आ जाए जिसके समाधान का कोई पूर्वदृष्टांत (Precedent) उपलब्ध न हो, तब सावधानी के साथ परंपरा को बदल देना चाहिए; और, (4) कोई साम्राज्यशाली राष्ट्र (Imperial Power) अपने उपनिवेशों (Colonies) की विशिष्ट परंपराओं का सम्मान करते हुए ही शांति और व्यवस्था कायम रख सकता है।

यह बात याद रखने की है कि बर्क ने सीमित सुधार का ही समर्थन किया है, क्रांति का नहीं। उसके अनुसार, क्रांति एक बुराई है—न केवल इसलिए कि वह हिंसा के साथ जुड़ी है, बल्कि इसलिए भी कि क्रांति के द्वारा शक्ति प्राप्त करने वाले लोग न तो इसका सामंजस्यपूर्ण प्रयोग करते हैं, न ही शांतिपूर्वक इसका त्याग करने को तैयार होते हैं। यदि कोई सुधार आमूल परिवर्तनवाद (Radicalism) का रूप धारण कर ले तो वह खतरनाक सिद्ध होता है क्योंकि वह ऐसी समाज-व्यवस्था को जन्म देता है जिसके सदस्य न तो उसे समझ पाते हैं, न स्वीकार कर पाते हैं।

प्र.3. बेन्थम के राजनीतिक विचार का विस्तार से वर्णन कीजिए।

Describe in detail the political thoughts of Bentham.

उत्तर

बेन्थम के राजनीतिक विचार
(Political Thoughts of Bentham)

राजनीतिक दर्शन के इतिहास में यह एक विवादास्पद मुद्दा रहा है कि क्या बेन्थम को एक राजनीतिक दार्शनिक माना जाए या नहीं। कई लेखक उसको राजनीतिक दार्शनिक की बजाय एक राजनीतिक सुधारक मानते हैं। उनके अनुसार बेन्थम का ध्येय किसी राजनीतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करना नहीं था बल्कि अपने सुधारवादी कार्यक्रम की पृष्ठभूमि के लिए राज्य के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत करना था ताकि इंग्लैण्ड की शासन प्रणाली में वांछित सुधार किए जा सकें। उसके प्रमुख राजनीतिक विचार उसके सुधारवादी कार्यक्रम का ही एक हिस्सा हैं। उसके प्रमुख राजनीतिक विचार अग्रलिखित हैं—

1. **राज्य सम्बन्धी विचार** (Views on State)—बेन्थम राज्य को एक कृत्रिम संस्था मानता है। उसने राज्य की उत्पत्ति के 'सामाजिक समझौता सिद्धान्त' का खण्डन किया है। वह राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौते को नकारते हुए कहता है कि इस प्रकार का समझौता कभी हुआ ही नहीं था और यदि हुआ भी हो तो वर्तमान पीढ़ी को इसे स्वीकार करने के लिए बाध्य करना न्यायसंगत नहीं है। उसका कहना है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि समझौता हुआ हो। उसका कहना है कि यदि समझौता होना स्वीकार कर भी लिया जाए तो समझौते द्वारा आज्ञा पालन के कर्त्तव्य की कोई निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। बेन्थम का मानना है कि मनुष्य द्वारा कानून तथा सरकार की अधीनता स्वीकार करने का मुख्य कारण मूल समझौता न होकर वर्तमान हित व उपयोगिता है। सरकारों का अस्तित्व इसलिए है कि वे सुख को बढ़ाती हैं। मनुष्य कानून और राज्य की आज्ञा का पालन इसलिए करते हैं कि वे जानते हैं कि 'आज्ञा पालन से होने वाली संभावित हानि आज्ञा का पालन न करने से होने वाली हानि से कम होती है।' इसलिए राज्य की उत्पत्ति का आधार सामाजिक उपयोगिता है न कि सामाजिक समझौता। उसके अनुसार—'राज्य एक काल्पनिक संगठन है जो व्यक्तियों के हितों का योग मात्र है।' राज्य का हित उसमें रहने वाले व्यक्तियों के हितों का योग मात्र होता है। बेन्थम के मतानुसार—'राज्य व्यक्तियों का एक समूह है जिसका संगठन उपयोगिता अथवा सुख की वृद्धि करने के लिए किया गया है।' उसके अनुसार राज्य का ध्येय या लक्ष्य न तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारना है और न ही समुदाय के सद् और नैतिक जीवन की उन्नति करना है बल्कि वह तो 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' में वृद्धि करना है।

   इस प्रकार बेन्थम राज्य की उत्पत्ति के 'सामाजिक समझौता सिद्धान्त', 'आदर्शवादी सिद्धान्त', 'आंगिक सिद्धान्त', आदि का खण्डन करते हुए राज्य की उत्पत्ति का आधार सामाजिक उपयोगिता को मानते हुए राज्य को एक कृत्रिम संस्था स्वीकार करता है। उसके अनुसार राज्य व्यक्तियों के हितों का योग मात्र है। वह राज्य को एक साध्य न मानकर एक साधन मात्र मानता है जिसका उद्देश्य सार्वजनिक हित में वृद्धि करने के साथ-साथ 'अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख' को खोजना है। अत: राज्य की उत्पत्ति का यह सिद्धान्त सीमित व संकुचित है। इसके अनुसार राज्य व्यक्ति के सुख का साधन मात्र है। यह एक व्यक्तिवादी धारणा है।

   राज्य की विशेषताएँ (Features of the State)—बेन्थम के सिद्धान्त के अनुसार, राज्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

   (i) यह अधिकतम सुख को बढ़ाने वाला एक मानवी अभिकरण है।
   (ii) यह व्यक्ति के अधिकारों का स्रोत है।
   (iii) यह व्यक्ति के हितों में वृद्धि करने का एक साधन है।
   (iv) इसका लक्ष्य अपने नागरिकों के सुख में वृद्धि करना है।
   (v) यह दण्ड-विधान द्वारा नागरिकों को अनुचित कार्यों को करने से रोकने वाला साधन है।

   इस प्रकार राज्य अपने नागरिकों के हितों को अधिकतम सीमा तक बढ़ाने के लिए कानून का सहारा लेता है। वह कानून को ढाल बनाकर 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' में वृद्धि के मार्ग में आने वाली रुकावटों पर अंकुश लगाता है।

   राज्य के कार्य (Functions of the State)—बेन्थम के अनुसार राज्य के कार्य सकारात्मक न होकर नकारात्मक हैं। उसने राज्य को व्यक्ति की अपेक्षा कम महत्त्व प्रदान किया है। उसके अनुसार राज्य के निम्नलिखित कार्य हैं—

   (i) राज्य लोगों के सुख में वृद्धि तथा दु:ख में कमी करने का प्रयास करता है।
   (ii) वह नागरिकों को गलत कार्यों को करने से रोककर उनके आचरण को नियन्त्रित करता है।

   इस प्रकार राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में बेन्थम का दृष्टिकोण नकारात्मक ही रहा है। उसने व्यक्तिवादी और लेसेज-फेरे (Individualist and Laissez-faire) की धारणा पर ही अपने राज्य सम्बन्धी विचारों को खड़ा किया है। उसका राज्य नागरिकों के व्यक्तित्व का विकास करने की बजाय उनके सुख में वृद्धि करना है। अत: बेन्थम की दृष्टि में नागरिकों का स्थान राज्य से उच्चतर है।

2. **सरकार सम्बन्धी विचार** (Views on Government)—बेन्थम के सरकार या शासन सम्बन्धी विचार भी उसके उपयोगितावादी सिद्धान्त पर ही आधारित हैं। बेन्थम राज्य और सरकार में अन्तर करते हुए सरकार को राज्य का एक छोटा सा संगठन मानता है तो कानून तथा अधिकतम सुख के लक्ष्य को कार्यान्वित करता है। बेन्थम उपयोगितावाद के सिद्धान्त की कसौटी पर विभिन्न शासन प्रणालियों को परखकर गणतन्त्रीय सरकार का ही समर्थन करता है। उसका विश्वास है कि 'अन्ततोगत्वा प्रतिनिधि लोकतन्त्र ही एक ऐसी सरकार है जिसमें अन्य सभी प्रकार की सरकारों की तुलना में अधिकतम

लोगों की अधिकतम सुख प्राप्त कराने की क्षमता है।' उसके विचारानुसार गणतन्त्रीय सरकार में कुशलता, मितव्ययिता, बुद्धिमत्ता तथा अच्छाई जैसे गुण पाए जाते हैं। उसके विचार में राजतन्त्र बुद्धिमानों का शासन तो है, परन्तु वह 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' का पालन करने में असक्षम है। गणतन्त्र में कानून बनाने का अधिकार जनता के पास होने के कारण कानून जनता के हित में बनते हैं और 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' का लक्ष्य सरलता से प्राप्त हो सकता है। इसी तरह कुलीनतन्त्र में बुद्धिमत्ता तो पाई जाती है, क्योंकि यह गुणी और अनुभवी व्यक्तियों द्वारा संचालित होती है, लेकिन इसमें ईमानदारी कम पाई जाती है। यह शासन व्यवस्था भी 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' के सिद्धान्त की उपेक्षा करती है। गणतन्त्र में जनता व शासक के हितों में समानता रहती है। इसलिए, 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' का ध्येय गणतन्त्र में ही प्राप्त किया जा सकता है, अन्य शासन-प्रणालियों में नहीं। अत: गणतन्त्रीय सरकार ही सर्वोत्तम सरकार है।

3. **सम्प्रभुता सम्बन्धी विचार** (Views on Sovereignty)—बेन्थम ने राज्य की सम्प्रभुता का समर्थन किया है। उसका मानना है कि शासक सभी व्यक्तियों और सब बातों के सम्बन्ध में कानून बना सकता है। चूँकि कानून आदेश होता है, अतएव यह सर्वोच्च शक्ति का ही आदेश हो सकता है। बेन्थम का मानना है कि राज्य का अस्तित्व तभी तक रहता है, जब तक सर्वोच्च सत्ता की आज्ञा की अनुपालन लोगों द्वारा स्वभावत: की जाती है। बेन्थम के अनुसार राज्य सम्प्रभु होता है, क्योंकि उसका कोई कार्य गैर-कानूनी नहीं होता। कानूनी दृष्टि से सम्प्रभु निरपेक्ष एवं असीमित होता है। उस पर प्राकृतिक कानून एवं प्राकृतिक अधिकार का कोई बन्धन नहीं हो सकता। लेकिन बेन्थम के अनुसार सम्प्रभु निरंकुश, अमर्यादित एवं अपरिमित नहीं हो सकता। बेन्थम के अनुसार व्यक्ति उसी सीमा तक सम्प्रभु की आज्ञा का पालन और कानून का आदर करते हैं, जिस सीमा तक वैसा करना उनके लिए लाभदायक और उपयोगी होता है। बेन्थम के मतानुसार शासक कानून बनाने का अधिकार तो रखता है लेकिन वह उसी सीमा तक कानून बना सकता है जहाँ तक व्यक्तियों के अधिकतम हित के लक्ष्य की प्राप्ति होती हो। यदि कानून व्यक्तियों के लिए लाभदायक व उपयोगी न हों तो जनता का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह शासक व उसके द्वारा बनाए गए कानूनों का प्रतिरोध करे।

   इस प्रकार हॉब्स की तरह बेन्थम भी कानून-निर्माण को सम्प्रभु का सर्वोच्च अधिकार मानता है लेकिन वह कार्यपालिका और न्यायपालिका सम्बन्धी अधिकारों को सम्प्रभु को नहीं सौंपता। वह शासक की असीमित शक्तियों के विरुद्ध है। उसके अनुसार शासक समस्त सामाजिक सत्ता का केन्द्र नहीं है। उसका सम्प्रभु तो कानून निर्माण के क्षेत्र में ही सर्वोच्च है, अन्य में नहीं।

4. **प्राकृतिक अधिकारों सम्बन्धी धारणा** (Views on Natural Rights)—बेन्थम ने प्राकृतिक अधिकारों की धारणा का खण्डन करते हुए प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त को मूर्खतापूर्ण, काल्पनिक, आधारहीन व आडम्बरपूर्ण बताया है। उसने कहा है—'प्राकृतिक अधिकार बकवास मात्र हैं—प्राकृतिक और हस्तान्तरणीय अधिकार आलंकारिक बकवास हैं—शब्दों के ऊपर भी बकवास है।' उसके मतानुसार प्रकृति एक अस्पष्ट शब्द हैं, इसलिए प्राकृतिक अधिकारों की धारणा भी निरर्थक है। उसके मतानुसार अधिकार प्राकृतिक न होकर कानूनी हैं जो सम्प्रभु की सर्वोच्च इच्छा का परिणाम हैं। उसके अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से असम्भव है, इसलिए अधिकार प्राकृतिक न होकर कानूनी हैं।

   बेन्थम ने टामस पेन तथा गॉडविन जैसे प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त के समर्थक विचारकों का खण्डन करते हुए कहा कि प्राकृतिक अधिकार केवल एक प्रलाप और मूर्खता का नंगा नाच हैं। उसका मानना है कि प्राकृतिक अधिकारों का निर्माण केवल सामाजिक परिस्थितियों में होता है। वे अधिकारों का निर्माण केवल सामाजिक परिस्थितियों में होता है। वे अधिकार ही उचित हो सकते हैं जो 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' के लक्ष्य को प्राप्त कराने में सहायक हों। बेन्थम ने कहा है—'अधिकार मानव जीवन के सुखमय जीवन के वे नियम हैं जिन्हें राज्य के कानून मान्यता प्रदान करते है।'

   अत: अधिकार प्रकृति-प्रदत्त न होकर समाज-प्रदत्त होते हैं। वे मनुष्य के सुख के लिए हैं जिन्हें राज्य मान्यता देता है और उनके अनुसार अपनी नीति बनाता है। राज्य ही अधिकारों का स्रोत है। नागरिक प्राकृतिक अधिकारों के लिए राज्य के विरुद्ध किसी प्रकार का दावा नहीं कर सकते, क्योंकि अधिकारों के साथ कुछ कर्त्तव्य भी बँधे हैं जिनके अभाव में अधिकार निष्प्राण व निरर्थक हैं।

   इस प्रकार कहा जा सकता है कि बेन्थम ने प्राकृतिक अधिकारों की धारणा को कोरी मूर्खता बताया है। उसके अनुसार अधिकार कानून की देन है और अच्छे कानून की परख 'अधिकतम लोगों की अधिकतम सुख' प्रदान करने के लक्ष्य को प्राप्त करने पर ही हो सकती है। इस तरह बेन्थम ने प्राकृतिक अधिकारों की धारणा का खण्डन करते हुए उन्हें काल्पनिक कहा है।

TOUCH 'n' PASS

5. **कानून सम्बन्धी विचार** (Views on Law)—बेन्थम का विचार है कि मनुष्य एक स्वार्थी प्राणी होने के नाते सदैव अपने सुख की प्राप्ति में लगा रहने के कारण दूसरों के हितों के रास्ते में बाधा उत्पन्न कर सकता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए कुछ बन्धनों का होना जरूरी है। इसलिए राज्य के पास कानून की शक्ति होती है जो परस्पर विरोधी हितों से उत्पन्न संघर्ष से अधिक कारगर ढंग से निपटने में सक्षम होती है। बेन्थम का मत है—'विभिन्न अनुशस्तियों (Sanctions) के द्वारा व्यक्ति के हित और समुदाय के हितों के मध्य तालमेल बैठाया जाना चाहिए।' बेन्थम का मानना है कि इन अनुशस्तियों में सबसे अधिक कारगर अनुशस्ति कानून की होती है। राज्य मूलत: कानून का निर्माण करने वाला संगठन है और यह अपने व्यक्तियों पर कानून के द्वारा ही नियन्त्रण रखता है।

   बेन्थम के मतानुसार—'कानून सम्प्रभु का आदेश है। कानून सम्प्रभुता की इच्छा का प्रकटीकरण है। समाज के व्यक्ति स्वाभाविक रूप से कानून की आज्ञा का पालन करते हैं। कानून न तो विवेक का और न ही किसी अलौकिक शक्ति की आज्ञा है । सामान्य रूप से यह उस सत्ता का आदेश है, जिसका पालन समाज के व्यक्ति अपनी आदत के कारण करते है।'' कानून व्यक्ति की मनमानी पर अंकुश है। यह व्यक्ति व समुदाय के हितों में तालमेल बैठाने का साधन है जो अपना कार्य दण्ड व पुरस्कार के माध्यम से करता है। कानून का सम्बन्ध व्यक्ति के समस्त कार्यों से न होकर केवल उन्हीं कार्यों का नियमन करने से है जो व्यक्ति के अधिकतम सुख के लक्ष्य को प्राप्त कराने के लिए आवश्यक है।

   बेन्थम का मानना है कि कानून इच्छा की अभिव्यक्ति है। ईश्वर और मनुष्य के पास तो इच्छा होती है लेकिन प्रकृति के पास कोई इच्छा नहीं होती। इसलिए दैवी कानून और मानवीय कानून तो हो सकते हैं, लेकिन प्राकृतिक कानून नहीं हो सकते। दैवी कानून भी अनिश्चित होता है। अत: मानवीय कानून ही सर्वोच्च कानून होता है जो समाज व व्यक्ति के सम्बन्धों का सही दिशा निर्देशन व नियमन कर पाने में सक्षम होता है।

   कानून का उद्देश्य—बेन्थम का मानना है कि कानून का उद्देश्य भी सामाजिक उपयोगिता है। कानून व्यक्ति के आचरण को अनुशासित करता है जिससे समाज में 'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख' में वृद्धि होती है। बेन्थम के अनुसार कानून के चार उद्देश्य हैं—सुरक्षा, आजीविका, सम्पन्नता तथा समानता। बेन्थम का कहना है कि सार्वजनिक आज्ञा पालन ही कानून को स्थायित्व प्रदान करके उसे प्रभावी बनाता है और उसे अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख को प्राप्त करने में योगदान देता है। इसलिए कानून की भाषा स्पष्ट व सरल होनी चाहिए ताकि साधारण व्यक्ति भी उसका ज्ञान प्राप्त कर सके।

   कानून के प्रकार (Types of Law)—बेन्थम ने कानून का वर्गीकरण करते हुए उसे चार भागों में बाँटा है—

   (i) नागरिक कानून (Civil Law)
   (ii) फौजदारी कानून (Criminal Law)
   (iii) संवैधानिक कानून (Constitutional Law)
   (iv) अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Law)

   इस प्रकार बेन्थम ने कानून को सम्प्रभु का आदेश मानते हुए उसे व्यक्तियों के अधिकतम सुख प्राप्त करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना है। उसने मानवीय कानून को सर्वोच्च कानून माना है। अपने अन्य सभी सिद्धान्तों की तरह बेन्थम ने कानून को भी उपयोगितावादी आधार प्रदान किया है।

6. **न्याय सम्बन्धी विचार** (Views on Justice)—अपने अन्य विचारों की ही तरह बेन्थम ने न्याय को भी उपयोगिता के आधार पर परिभाषित किया है। बेन्थम का कहना है कि कानून पर आधारित होने के कारण न्याय का परिणाम उपयोगिता होना चाहिए। बेन्थम ने अपने न्याय सम्बन्धी विचारों में तत्कालीन इंग्लैण्ड की न्याय व्यवस्था की कटु आलोचनाएँ की हैं। उसने कहा है कि मुकद्दमे में वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षों के लिए न्याय प्राप्ति के मार्ग में दुर्गम बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। उन्हें न्याय प्राप्त करने के लिए भारी फीसें वकीलों को देनी पड़ती हैं। साथ में ही समय अधिक लगता है। न्याय प्राप्त करने के लिए न्यायपालिका के कर्मचारियों को कदम कदम पर सुविधा शुल्क देने पड़ते हैं। इसलिए बेन्थम के तत्कालीन न्याय-व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—'इस देश में न्याय बेचा जाता है, बहुत महँगा बेचा जाता है और जो व्यक्ति इसके विक्रय मूल्य को नहीं चुका सकता है, न्याय पाने से वंचित रह जाता है।' बेन्थम न्यायधीशों को एक कम्पनी की संज्ञा देता है। यह कम्पनी अपने लाभ के लिए उन कानूनों का सहारा लेती है जिन्हें अपने लाभ के लिए न्यायधीशों ने बनाया है।

इस प्रकार बेन्थम ने तत्कालीन न्याय-व्यवस्था के दोषों पर भली-भान्ति विचार करके उन्हें अपने दर्शन में प्रस्तुत किया है। उसके न्याय-सम्बन्धी विचार आज भी प्रासंगिक है। जैसे दोष उसने उस समय बताए थे, वे आज भी विद्यमान हैं।

प्र.4. 'बेन्थम : एक सुधारक के रूप में' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
'Bentham : as a reformer', explain this statement.

उत्तर

बेन्थम : एक सुधारक के रूप में
(Bentham : as a Reformer)

अनेक लेखकों ने बेन्थम को एक राजनीतिक दार्शनिक की बजाए एक महान् सुधारवादी विचारक माना है। उसने तत्कालीन इंग्लैण्ड की न्याय-व्यवस्था, जेलखानों, विधि, शासन-प्रणाली, शिक्षा-पद्धति, धार्मिक व्यवस्था आदि में जो सुधार किए, उन पर ही आगामी सुधारों की प्रक्रिया आश्रित हो गई। उनके सुधारवादी विचारों के सुझावों से ही सारे संसार में सुधारों की लहर चल पड़ी। सेबाइन ने कहा है—'सामाजिक दर्शन के इतिहास में ऐसे विचारक कम ही हुए हैं, जिन्होंने इतना व्यापक और इतना उपयोगी प्रभाव डाला हो, जितना बेन्थम ने।' इसी तरह मैक्सी ने कहा है—'यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिन सुधारों का बेन्थम में इतनी तत्परता और लाभ के साथ समर्थन किया था, उनमें से अनेक सुधार आज विभिन्न देशों में विधि का रूप पा चुके हैं।' बेन्थम के प्रमुख सुधारवादी विचार निम्नलिखित हैं—

1. **न्याय व्यवस्था में सुधार** (Reforms in Judicial System)—बेन्थम ने तत्कालीन इंग्लैण्ड की न्याय-व्यवस्था को दोषपूर्ण मानते हुए उसमें वांछित सुधारों का सुझाव दिया है। उसने महँगी व जटिल न्याय-व्यवस्था की कटु आलोचना की है। उसने तत्कालीन इंग्लैण्ड की अदालतों की कार्य-विधि को आसान बनाने व उसकी कार्यक्षमता बढ़ाने के सुझाव दिए हैं। उसके प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं—
   (i) किसी मुकद्दमे का निर्णय एक ही न्यायधीश के द्वारा ही होना चाहिए, तीन या चार न्यायधीशों द्वारा नहीं। उसका मत है कि अधिक संख्या से उत्तरदायित्व में कमी आती है। पूर्ण उत्तरदायित्व की भावना केवल एक न्यायाधीश में ही हो सकती है। अनेक न्यायाधीशों में परस्पर मतभेद की सम्भावना होने के कारण न्याय निरपेक्ष नहीं रह जाता है। अत: पूर्ण न्याय की प्राप्ति के लिए न्यायाधीशों की संख्या सीमित होनी चाहिए।
   (ii) प्रत्येक व्यक्ति को अपना वकील स्वयं बनना चाहिए ताकि वह मध्यस्थ की औपचारिक कार्यवाही से बच सके।
   (iii) न्याय-व्यवस्था में दक्षता, निपुणता और निष्पक्षता लाने के लिए यह आवश्यक है कि न्यायधीशों की नियुक्ति योग्यता, गुण और प्रशिक्षण के आधार पर होनी चाहिए, वंश या कुल के आधार पर नहीं। इससे न्याय-व्यवस्था में अज्ञान व पक्षपात को बढ़ावा मिलता है।
   (iv) मुकद्दमे का निर्णय कठोर नियमों के अनुसार न करके न्यायिक विवेक (Judicial Discretion) के अनुसार किया जाना चाहिए।
   (v) न्याय-व्यवस्था सस्ती होनी चाहिए।
   (vi) न्याय शीघ्र मिलना चाहिए।
   (vii) न्यायिक प्रक्रिया में ज्यूरी पद्धति का प्रयोग करना चाहिए ताकि न्यायधीशों की निरंकुशता को रोका जा सके।
   (viii) न्याय-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए कानूनों की भाषा सरल व स्पष्ट होनी चाहिए।
   (ix) प्रत्येक न्यायालय का क्षेत्राधिकार अलग-अलग होना चाहिए ताकि अतिक्रमण को रोका जा सके।
   (x) जनमत की अभिव्यक्ति के लिए न्याय-व्यवस्था में प्रेक्षक नियुक्त किए जाने चाहिए।
2. **जेल-व्यवस्था में सुधार** (Reforms in Prison System)—बेन्थम के समय में जेलों में कैदियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। उन्हें अन्धेरी कोठरियों व तहखानों में रखा जाता था। उन्हें गन्दा भोजन दिया जाता था। बालक और वयस्क अपराधियों को एक साथ रखा जाता था। जेल अपराधियों व अपराधों का अखाड़ा मात्र थे। जेल में जाने के बाद वहाँ से बाहर आने वाला प्रत्येक अपराधी भयानक व कुख्यात अपराधी की संज्ञा प्राप्त कर लेता था। इस व्यवस्था से दु:खी होकर बेन्थम ने इंग्लैण्ड की जेल व्यवस्था में निम्न सुधारों का सुझाव दिया—
   (i) जेल में ही अपराधियों को औद्योगिक शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे बाहर आकर समाज की आमधारा से जुड़ जाएँ।
   (ii) उसने 'गोलाकार कारावास' (Panopticon) के निर्माण का सुझाव दिया ताकि उसमें रहकर कैदी ईमानदार और परिश्रमी बन सकें। उसने इस योजना के तहत अर्ध-चन्द्राकार इमारतें बनाने का सुझाव दिया ताकि जेल के अधिकारी अपने निवास स्थान से इन इमारतों पर नजर रख सके।
   (iii) अपराधियों को आत्मिक उत्थान हेतु नैतिक व धार्मिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए ताकि वे जेल से बाहर जाने पर अच्छे नागरिक साबित हों।

TOUCH 'n' PASS

(iv) कारावास से मुक्त होने पर उनके लिए उस समय तक नौकरी देने की व्यवस्था की जाए जब तक वे समाज की अभिन्न धारा से न जुड़ जाएँ।

आगे चलकर जेलों में जो भी सुधार हुए उन पर बेन्थम का ही व्यापक प्रभाव पड़ा।

3. **दण्ड-व्यवस्था में सुधार** (Reforms in Punishment)—बेन्थम ने दण्ड-विधान के क्षेत्र में भी अपने उपयोगिता के सिद्धान्त को लागू करके उस समय में प्रचलित दण्ड-व्यवस्था के अनेक दोषों पर विचार किया है। उस समय छोटे-छोटे अपराधों के लिए अमानवीय व कठोर दण्ड दिया जाता था। बेन्थम ने महसूस किया कि छोटे से अपराध के लिए कठोर सजा देने से अपराधों में वृद्धि होती है। दण्ड का लक्ष्य समाज में अपराधों को रोकना होना चाहिए। इसलिए उसने दण्ड-व्यवस्था में कुछ सुधारों के उपाय सुझाए हैं।

(i) दण्ड समान भाव से देना चाहिए ताकि अपराधी को अनावश्यक पीड़ा उत्पन्न न हो। अर्थात् समान अपराध के लिए समान दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।

(ii) अपराधी को दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। उसका मानना था कि दण्ड की निश्चितता अपराधों को रोकती है।

(iii) दण्ड की पीड़ा अपराध की बुराई से थोड़ी ही अधिक होनी चाहिए ताकि अपराध की पुनरावृत्ति न हो।

(iv) अपराधों का वर्गीकरण किया जाना चाहिए।

(v) दण्ड का उद्देश्य अपराधी को सुधारना होना चाहिए।

(vi) दण्ड का स्वरूप अपराधी की आयु व लिंग के आधार पर निर्धारित होना चाहिए।

(vii) दण्ड देने से पहले अपराधी की मानसिक स्थिति व अपराध के कारणों पर अच्छी तरह विचार करना चाहिए।

(viii) कानून द्वारा दण्ड को कम करने या क्षमा करने की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए।

इस प्रकार बेन्थम ने अपने दण्ड विधान में सुधारों को प्रतिरोध सिद्धान्त (Deterrent Theory) तथा सुधारात्मक सिद्धान्त (Reformative Theory) के मिश्रण से तैयार किया है। उसके द्वारा सुझाए गए उपाय आज भी प्रासंगिक हैं। उसके सुझावों को आगे चलकर अनेक देशों ने स्वीकार किया है।

4. **कानून-व्यवस्था में सुधार** (Reforms in Law)—बेन्थम ने अपने समय के कानून को अव्यावहारिक व अनुपयोगी मानते हुए उसकी आलोचना की है। उसने महसूस किया कि सभी कानून गरीबों को दबाने वाले हैं और अमीरों का पोषण करने वाले हैं। उसने तत्कालीन कानून-व्यवस्था में निम्न सुधारों के सुझाव दिए—

(i) कानूनों का संहिताकरण (Codification) किया जाना चाहिए ताकि उनके मध्य क्रमबद्धता कायम की जा सके। इसके लिए कानूनों को विभिन्न श्रेणियों व वर्गों में बाँटा जाना चाहिए।

(ii) सरकार को कानून की अनभिज्ञता को दूर करने के लिए अपने नागरिकों को अनिवार्य शिक्षा के माध्यम से प्रशिक्षित करना चाहिए। इसके लिए सरकार को सस्ते मूल्यों पर पुस्तकें जनता तक पहुँचानी चाहिए।

(iii) कानून की भाषा सरल व स्पष्ट होनी चाहिए ताकि आम व्यक्ति भी उसको समझ सके। कानून में प्रयुक्त होने वाले कठिन शब्दों का सरलीकरण किया जाना चाहिए।

(iv) कानून जनता के हित को ध्यान में रखकर ही बनाए जाने चाहिए।

इस प्रकार बेन्थम ने कानून को ऐसा बनाने का सुझाव दिया जिससे व्यक्तियों के सुखों में वृद्धि हो।

5. **शासन व्यवस्था में सुधार** (Reforms in Administrative System)—बेन्थम ने सरकार या शासन का उद्देश्य अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख को प्रदान करना माना है। उसने सभी शासन-प्रणालियों में गणतन्त्रीय शासन-प्रणाली का ही समर्थन किया है। लेकिन उसने तत्कालीन ब्रिटिश-पद्धति को अपूर्ण मानकर उसमें कुछ सुधारों की योजना प्रस्तुत की है।

(i) उसने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का समर्थन किया है। उसने इसके लिए थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा होना भी आवश्यक बताया है। उस समय संसद का सदस्य चुनने का अधिकार कम ही व्यक्तियों को प्राप्त था।

(ii) उसने संसद के चुनाव प्रतिवर्ष समय पर कराने का सुझाव दिया है। इससे सदस्य क्रियाशील होंगे व निर्वाचकों को उनकी योग्यता परखने का अवसर प्राप्त होगा।

(iii) उसने गुप्त मतदान प्रणाली का समर्थन किया है। इससे निष्पक्ष चुनावों को बढ़ावा मिलेगा।

(iv) उसने संसद के उपरि सदन को समाप्त करने का भी सुझाव दिया है ताकि इसके अनावश्यक हस्तक्षेप का निम्न सदन पर दुष्प्रभाव न पड़ सके।

TOUCH 'n' PASS

उसने राजतन्त्र को समाप्त करके गणतन्त्रीय शासन प्रणाली अपनाने का सुझाव दिया है। उसका सोचना है कि गणतन्त्रीय शासन-प्रणाली ही लोकहित में कार्य करेगी। इससे जनता की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहेगी। उसका गणतन्त्रीय व्यवस्था का समर्थन करना राजतन्त्र की आलोचना को दर्शाता है। उसके सुझावों को आज अनेक लोकतन्त्रीय देशों में अपनाया जा चुका है। आज इंग्लैण्ड में उपरि सदन का महत्त्व गौण हो चुका है। इससे बेन्थम की राजनीतिक दूरदर्शिता का पता चलता है।

6. **शिक्षा में सुधार** (Reforms in Education)—बेन्थम ने मनुष्य जाति के उत्थान के लिए शिक्षा को आवश्यक माना है। उसका मानना है कि शिक्षा व्यक्ति की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है और आनन्द में भी वृद्धि करती है। इसलिए उसने तत्कालीन शिक्षा योजना को समाज के लिए अनुपयोगी बतलाया। उसने कहा कि यह शिक्षा-पद्धति अमीरों के एकाधिकार के रूप में उनके हितों का ही पोषण करती है। अत: इसे जनतान्त्रिक बनाने के लिए इसमें कुछ परिवर्तन करने जरूरी हैं। उसने शिक्षा में निम्न सुधार किए—
   (i) उसने मतदान के लिए पढ़ने की योग्यता को आवश्यक माना।
   (ii) उसे जेल में रहने वाले अपराधियों की औद्योगिक व नैतिक शिक्षा पर जोर दिया।
   (iii) उसने निर्धन वर्ग के छात्रों के लिए विशेष रूप से शिक्षा पर बल दिया। इसके लिए उसने अपने शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव में दो प्रकार की शिक्षा-व्यवस्थाओं का सुझाव दिया। एक निर्धन वर्ग के लिए तथा दूसरी मध्यम तथा समृद्ध वर्ग के बच्चों के लिए।
   (iv) उसने शिक्षा में बौद्धिक विकास के विषयों के अध्ययन पर बल दिया।
   (v) अपने छात्रों के लिए जीवन में उपयोगी तथा लाभदायक विषयों के अध्ययन पर जोर दिया।
   (vi) उसने छात्रों की नैसर्गिक क्षमता या स्वाभाविक रुचि के अनुसार ही शिक्षा प्रदान करने का समर्थन किया।
   (vii) उसने उच्च वर्ग के लिए अलग शिक्षा पद्धति का सुझाव दिया। इसे 'Monitorial System' कहा जाता है।
   बेन्थम के समय में सार्वजनिक शिक्षा के प्रति कोई रुचि नहीं थी। सत्तारूढ़ वर्ग को भय था कि यदि गरीब वर्ग शिक्षित हो गया तो वह उनकी सत्ता को चुनौती देकर उखाड़ फेंकेगा। इससे सरकारी खर्च में भी वृद्धि होगी। इसके बावजूद भी बेन्थम ने शिक्षा सुधारों की योजना प्रस्तुत की जो आगे चलकर इंग्लैण्ड की शिक्षा योजना का आधार बनी। अमेरिका, कनाडा तथा अन्य प्रगतिशील देशों ने भी बेन्थम के ही सुझावों को स्वीकार करके उसके महत्त्व को बढ़ाया है। अत: आधुनिक समय में शिक्षा-प्रणाली बेन्थम की बहुत ऋणी है। बेन्थम के शाश्वत महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।
7. **अन्य सुधार** (Other Reforms)—बेन्थम ने उपर्युक्त सुधारों के अतिरिक्त भी सुधार प्रस्तुत किए हैं। उसने अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया है। उसने उपनिवेशों को आर्थिक हित के लाभदायक नहीं माना है। उसने स्वतन्त्र व्यापार नीति का समर्थन किया है। उसने धर्म के क्षेत्र में चर्च की कटु आलोचना की है। वह चर्च को एक ऐसी संस्था बनाने का सुझाव देता है जो मनुष्य मात्र का हित पूरा करने में सक्षम हो। उसने गरीबों की भलाई के लिए (Poor Law) बनाने का सुझाव दिया है। उसने स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में भी अपनी योजनाएँ प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिस पर बेन्थम ने अपने सुधारवादी विचार प्रस्तुत न किए हों। अत: बेन्थम को राजनीतिक दार्शनिक की अपेक्षा एक सुधारवादी विचारक मानना सर्वथा सही है।

प्र.5. बेन्थम के उपयोगितावाद के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
Discuss the theory of utilitarianism of Bentham.

उत्तर

उपयोगितावाद का सिद्धान्त
(Theory of Utilitarianism)

उपयोगितावाद का सिद्धान्त बेन्थम की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं अमूल्य देन है। उसके अन्य सभी राजनीतिक विचार उसके उपयोगितावाद पर ही आधारित हैं। लेकिन उसे इसका प्रवर्तक नहीं माना जा सकता। रोचक बात यह है कि बेन्थम ने कहीं भी उपयोगितावाद शब्द का प्रयोग नहीं किया। बेन्थम के उपयोगितावादी दर्शन का वर्णन उसकी दो पुस्तकों—'फ्रैग्मेण्ट्स ऑन दि गवर्नमेंट' (Fragments on the Government) तथा 'इण्ट्रोडक्शन टू दॉ पिंसिपल्स ऑफ मॉरल्स एण्ड लेजिस्लेशन' (Introduction to the Principles of Morals and Legislation) में मिलता है।

उपयोगितावाद का विकास (Development of Utilitarianism)

उपयोगितावाद के सर्वप्रथम आचारशास्त्र के एक सिद्धान्त के रूप में प्राचीन यूनान के एपीक्यूरियन सम्प्रदाय में ही दर्शन होते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार मनुष्य पूर्णतया सुखवादी है। वह सुख की ओर भागता है तथा दु:खों से बचना चाहता है। इसके बाद

सामाजिक समझौतावादियों ने भी 17वीं शताब्दी में इसका कुछ विकास किया। हॉब्स ने कहा कि मनुष्य पशुवत आचरण करने वाला एक सुखवादी प्राणी है। लॉक तथा पाश्चात्य दर्शन के सिरेनाक वर्ग के प्रचारकों ने भी उपयोगितावाद का विकास किया। डेविड ह्यूम ने भी इसका विकास किया। आगे चलकर ह्वेसन ने अपनी पुस्तक 'नैतिक दर्शन पद्धति' (System of Moral Philosophy) में उपयोगितावाद के मूलमन्त्र 'अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख' (The Greatest Happiness of the Greatest Number) का प्रथम बार प्रयोग किया। आगे प्रीस्टले ने भी इसी मूलमन्त्र का प्रयोग किया। इसके बाद बेन्थम ने भी प्रीस्टले के निबन्ध 'Priestley's Essay on Government' से उपयोगितावाद की प्रेरणा ग्रहण की। बेन्थम ने बताया कि राज्य की सार्थकता तभी है जब वह अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख की व्यवस्था करे।

उपयोगितावाद का अर्थ (Meaning of Utilitarianism)

उपयोगितावाद राजनीतिक सिद्धान्तों का ऐसा कोई संग्रह नहीं है जिसमें राज्य और सरकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया हो। यह मानव आचरण की प्रेरणाओं से सम्बन्धित एक नैतिक सिद्धान्त है। उपयोगितावाद 18वीं शताब्दी के आदर्शवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है जो इन्द्रियानुभववाद की स्थापना करता है। उपयोगितावादियों की दृष्टि में उपयोगितावाद का अर्थ 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' है। इसका अर्थ 'किसी वस्तु का वह गुण है जो लाभ, सुविधा, आनन्द, भलाई या सुख प्रदान करता है तथा अनिष्ठ, कष्ट बुराई या दुख को पैदा होने से रोकता है। बेन्थम के मतानुसार 'उपयोगिता किसी कार्य या वस्तु का वह गुण है जिससे सुखों की प्राप्ति तथा दु:खों का निवारण होता है।' बेन्थम ने आगे कहा है कि उपयोगितावाद की अवधारणा हमें यह बताती है कि हमें क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए। यह हमारे जीवन के समस्त निर्णयों की आधारशिला है। उपयोगितावाद का वास्तविक अर्थ सुख है। व्यक्ति ही नहीं सम्पूर्ण समाज का लक्ष्य भी सुख की प्राप्ति है।

उपयोगितावाद की विशेषताएँ (Features of Utilitarianism)

बेन्थम के उपयोगितावाद के सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. **सुख और दु:ख पर आधारित** (Based on Pleasure and Pain)—बेन्थम का उपयोगितावादी सिद्धान्त सुख और दु:ख के दो आधारों पर आधारित है। बेन्थम का मानना है कि जो कार्य हमें सुख देता है, उपयोगी है तथा जो कार्य दु:ख पहुँचाता है, उपयोगी नहीं। बेन्थम का मानना है कि प्रकृति ने मनुष्य को सुख और दु:ख की दो शक्तियों के अधीन रखा है। यही शक्तियाँ हमें बताती हैं कि मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या नहीं। सही और गलत के मानदण्ड उन शक्तियों से बँधे हुए हैं।
2. **सुख की प्राप्ति और दु:ख का निवारण** (Attainment of Pleasure and Avoidance of Pain)—बेन्थम का मत है कि जो वस्तु सुख प्रदान करती है, वह अच्छी है और उपयोगी है। जिस कार्य या वस्तु से मनुष्य को दु:ख प्राप्त होता है वह अनुपयोगी है। मानव के समस्त कार्यों की कसौटी उपयोगितावाद है। बेन्थम का मानना है कि जिस कार्य से प्रसन्नता या आनन्द में वृद्धि होती है तो वह कार्य उपयोगी है। उससे सुख की प्राप्ति होती है और दु:ख का निवारण होता है। अत: उपयोगितावाद का सिद्धान्त सुख की प्राप्ति और दु:ख के निवारण का सिद्धान्त है।
3. **सुख व दु:ख का वर्गीकरण** (Classification of Pleasure and Pain)—बेन्थम ने सुख-दु:ख को दो भागों—सरल व जटिल में विभाजित किया है। उसके अनुसार सरल सुख 14 प्रकार के तथा सरल दु:ख 12 प्रकार के हैं। सरल सुखों या दु:खों को परस्पर मिलाने से जटिल सुख या दु:ख का जन्म होता है।
   (i) **सरल सुख**—(1) मित्रता का सुख (2) इन्द्रिय सुख (3) सहायता का सुख (4) सम्पर्क सुख (5) दया का सुख (6) स्मरण शक्ति का सुख (7) आशा का सुख (8) सत्ता का सुख (9) धार्मिकता का सुख (10) ईर्ष्या का सुख (11) उदारता का सुख (12) सम्पत्ति का सुख (13) कुशलता का सुख (14) यात्रा का सुख।
   (ii) **सरल दु:ख**—(1) अपमान का दु:ख (2) धर्मनिष्ठा का दु:ख (3) सम्पर्क का दु:ख (4) कल्पना का दु:ख (5) शत्रुता का दुख (6) इन्द्रिय दु:ख (7) अभाव का दु:ख (8) स्मरण शक्ति का दु:ख (9) उदारता का दु:ख (10) आशा का दु:ख (11) ईर्ष्या का दु:ख (12) अकुशलता का दु:ख।
4. **सुख-दु:ख के स्रोत** (Sources of Pleasure and Pain)—बेन्थम ने सुख-दु:ख के चार स्रोत धर्म, राजनीति, नैतिकता तथा भौतिक मानते हैं। धार्मिक सुख धर्म में आस्था रखने से व धार्मिक व्यवस्था को स्वीकार करने से प्राप्त होता है। जैसे कुम्भ के मेले में स्नान करना। यदि वहाँ कोई अनहोनी हो जाए तो उसे धार्मिक दु:ख कहा जाएगा। राजनीतिक सुख राज्य की नीतियों व कार्यों से प्राप्त होता है। जैसे सरकार द्वारा धर्मनिरपेक्ष नीति का पालन करना । यदि सरकार कोई ऐसा कार्य करे जो जन-कल्याण के विपरीत हो तो उससे प्राप्त दु:ख राजनीतिक दु:ख होगा । व्यक्ति को नैतिक सुख उसके

नैतिक आचरण से प्राप्त होता है। जैसे दूसरों की सहायता करना। यदि आवश्यकता पड़ने पर तुम्हें कोई सहायता न मिले तो उससे प्राप्त दु:ख नैतिक दु:ख कहलाएगा। भौतिक सुख प्राकृतिक वस्तुओं से प्राप्त होता है। जैसे सन्तुलित वर्षा का होना सभी को सुख प्रदान करता है। यदि वर्षा अत्यधिक मात्रा में होकर जनजीवन को अस्त-व्यस्त कर दे तो इससे प्राप्त दु:ख भौतिक या प्राकृतिक दु:ख कहलाएगा।

5. **सुखों में मात्रात्मक अन्तर** (Quantitative difference between Pleasures)—बेन्थम का मानना है कि सभी सुख गुणों में एक जैसे होते हैं। इसलिए उनमें गुणात्मक की बजाय मात्रात्मक अन्तर पाया जाता है, उसका कहना है कि 'पुष्पिन (बच्चों का खेल) उतना ही अच्छा है जितना कविता पढ़ना' खेलने से भौतिक-सुख प्राप्त होता है जबकि कविता पढ़ने से मानसिक सुख। दोनों सुखों की मात्रा को मापा जा सकता है। इनकी गणना सम्भव है। बेन्थम ने कहा है कि एक कील भी उतना ही दर्द करती है जितना कर्कश आवाज। अत: सुखों में मात्रात्मक अन्तर है, गुणात्मक नहीं।
6. **सुखों-दु:खों का मापन** (Measurement of Pleasures and Pains)—बेन्थम के अनुसार सुखों व दु:खों को परिमाणिक तौर पर मापा जा सकता है। इससे कोई अपने सुख या दु:ख को माप सकता है। यह मापन ही किसी वस्तु या कार्य को सुख-दु:ख के आधार पर अच्छा या बुरा प्रमाणित कर सकता है। ये सुख-दु:ख मानवीय क्रियाओं के आचार व उद्देश्य होते हैं। इन सुखों को फेलिसिफिक केलकुलस द्वारा मापा जा सकता है।
7. **सुखवादी मापक यन्त्र** (Felicific Calculus)—बेन्थम का विचार है कि सुख-दु:ख को तुलनात्मक आधार पर परखा जा सकता है। बेन्थम ने सुख-दु:ख के मापन की जो पद्धति सुझाई है, उसे सुखवादी मापक यन्त्र (Felicific Calculus) का नाम दिया गया है। बेन्थम का मानना है कि सुख-दु:ख का गणित के सहारे पारिमाणिक नापतोल (Mathematical Computation), सम्भव है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत तीव्रता (Intensity), अवधि (Duration), निश्चिन्तता (Certainty), अनिश्चित्तता (Uncertainty), सामीप्य (Propinquity), अन्य सुख उत्पन्न करने की क्षमता (Fecundity), विशुद्धता (Purity) व विस्तार (Extent) के आधार पर सुख-दु:ख का मापन किया जाता है। बेन्थम ने स्पष्ट किया है कि जो सुख तीव्र होता है, वह अधिक समय तक टिका रहता है। कम तीव्र सुख कम समय तक रहते हैं। निश्चित सुख अनिश्चित की तुलना में अधिक मात्रा वाला होता है। इस प्रकार अन्य तथ्यों के आधार पर भी सुख-दु:ख का निरूपण किया जा सकता है। बेन्थम ने सुख-दु:ख की गणना करते समय सुखों के समस्त मूल्यों को एक तरफ तथा दु:खों के समस्त मूल्यों को दूसरी तरफ जोड़ने का सुझाव दिया है। यदि एक-दूसरे को आपस में घटाने से सुख बच जाए तो वह कार्य उचित है अन्यथा अनुचित। इस प्रकार इस सिद्धान्त के द्वारा बेन्थम ने यह सिद्ध किया है कि कोई कार्य उचित है या अनुचित।
8. **परिणामों पर जोर** (Emphasis on Results)—बेन्थम का उपयोगितावाद का सिद्धान्त परिणामों पर आधारित है, नीयत (Motive) पर नहीं। बेन्थम का मानना है कि सुख और दु:ख स्वयं ही उद्देश्य हैं। इनके होते हुए अच्छे या बुरे इरादों को मानने की आवश्यकता नहीं। किसी भी कार्य की अच्छाई या नैतिकता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि वह किस उद्देश्य को लेकर किया जाता है, बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि उसके परिणाम क्या निकलते हैं। बेन्थम का मानना है कि किसी भी विधि या संस्था की उपयोगिता की जाँच इस आधार पर ही हो सकती है कि स्त्रियों या पुरुषों पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है। बेन्थम नीयत (Motive) को उसी सीमा तक स्वीकार करता है, जहाँ तक वह परिणाम को निर्धारित करती है। इस प्रकार उसने नैतिक बुद्धि, ईश्वरीय इच्छा, कानून के नियम आदि को तिलांजलि दे दी। उसने किसी वस्तु के परिणाम को ही सत्य-असत्य, अच्छाई-बुराई का मापदण्ड स्वीकार किया है।
9. **राज्य का उद्देश्य अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख है** (Greatest Happiness of the Greatest Number is the Aim of the State)—बेन्थम के अनुसार राज्य के वे कार्य ही उपयोगी हैं जो व्यक्तियों को लाभ पहुँचाते हैं। सभी व्यक्ति राज्य के आदेशों का पालन इसलिए करते हैं, क्योंकि वे उनके लिए उपयोगी हैं। राज्य का उद्देश्य किसी एक व्यक्ति को सुख प्रदान करना नहीं है बल्कि अधिक से अधिक व्यक्तियों को सुख प्रदान करना है। इसलिए बेन्थम कहता है कि व्यक्ति को अधिक से अधिक लोगों के कल्याण में राज्य को सहयोग देना चाहिए।
10. **अनुशस्तियों का सिद्धान्त** (Theory of Sanctions)—बेन्थम का मानना है कि व्यक्ति के अधिकतम सुख तथा व्यक्तियों के अधिकतम सुख के मध्य संघर्ष की सम्भावना को देखते हुए व्यक्ति पर अंकुश लगाना आवश्यक होता है ताकि वह दूसरों के सुख को कोई हानि नहीं पहुँचाए। इसलिए दूसरों के सुखों का ध्यान रखने में व्यक्ति को प्रेरित करने के लिए कुछ अनुशस्तियों (Sanctions) की आवश्यकता पड़ती है। सुख की अनुशस्तियाँ शारीरिक, नैतिक, धार्मिक और

TOUCH 'n PASS

राजनीतिक 4 प्रकार की होती है। धार्मिक अनुशस्ति व्यक्ति के आचरण को ठीक करती है। नैतिक अनुशस्ति व्यक्ति के मन को अनुशासित करती है। यह सदैव उपयोगी होती है। राजनीतिक अनुशस्ति राज्य द्वारा पुरस्कार और दण्ड के रूप में व्यक्तियों पर लगाई जाती है। इसे कानून अनुशस्ति भी कहा जाता है।

उपयोगितावाद की आलोचनाएँ (Criticism of Utilitarianism)

बेन्थम ने अपने उपयोगितावाद के सिद्धान्त को सरल और सुबोध बनाने का इतना अधिक प्रयास किया कि इस सिद्धान्त में अनेक दोष उत्पन्न हो गए। आलोचकों ने उसके इस सिद्धान्त को भ्रम एवं विरोधाभास का पिटारा कह दिया। इसकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं—

1. **मौलिकता का अभाव** (Lack of Originality)—यह सिद्धान्त बेन्थम की मौलिक देन नहीं है। बेन्थम ने प्रीस्टले के विचारों को ही नया रूप देने का प्रयास किया है। बेन्थम ने भी प्रीस्टले के ही इस विचार को उधार लिया है कि राज्य का उद्देश्य 'अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख' प्रदान करना है। 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' का विचार प्रीस्टले के माध्यम से बेन्थम तक पहुँचा। अत: इसमें मौलिकता का अभाव है।
2. **अमनोवैज्ञानिक सिद्धान्त** (Unpsychological Theory)—बेन्थम ने मानव-प्रकृति को कोरा सुखवादी माना है। उसके अनुसार मनुष्य घोर स्वार्थी और अपने सुख के लिए प्रयास करने वाला प्राणी है। किन्तु सत्य तो यह है कि मनुष्य स्वार्थी न होकर परोपकारी भी है। वह दूसरों के लिए भी जीवन जीता है। वह सुख की भावना से नहीं बल्कि देश-प्रेम, बलिदान, त्याग आदि भावनाओं से भी प्रेरित होकर कार्य करता है। ईसा मसीह ने मृत्यु को गले क्यों लगाया? राम वन में क्यों गए? इन सबके पीछे एक ही कारण था—परोपकार। इस प्रकार बेन्थम ने आध्यात्मिक विकास एवं उच्च आदर्शों की अवहेलना करके केवल सुख को ही महत्त्व दिया है। अत: यह सिद्धान्त अमनोवैज्ञानिक है जो मानव-प्रकृति का गलत चित्रण करता है।
3. **स्पष्टता का अभाव** (Lack of Clarity)—बेन्थम ने सब कार्यों का आधार 'अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख' के विचार को माना है। बेन्थम ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि प्रधानता व्यक्तियों की संख्या को दी जाएगी या सुख की मात्रा को उदाहरण के लिए हम मान लें कि कानून बनाने से 10 मिल मालिकों में से प्रत्येक को 1000 रुपये का लाभ होता है किन्तु मजदूरों की मजदूरी में 2 रुपये प्रति मजदूर के हिसाब से 1000 मजदूरों को 2000 रुपये की हानि होती है। मालिकों को कुल 10000 रुपये का लाभ होता है। इसमें देखा जाए तो 10 मालिकों का लाभ 1000 मजदूरों की हानि से अधिक है। अत: कानून बनाना उपयोगी है। यदि अधिकतम लोगों की दृष्टि से देखा जाए तो 1000 मजदूरों की हानि को महत्त्व देकर कानून बनाया जाए। ऐसी अवस्था में अधिकतम संख्या व अधिकतम सुख में अन्तर्विरोध उत्पन्न होता है। इसलिए उपयोगिता का सिद्धान्त यह स्पष्ट नहीं करता कि कानून किसके पक्ष में बनाया जाए। अत: इस विषय में यह सिद्धान्त पद-प्रदर्शन न कर पाने के कारण अस्पष्ट व दोषपूर्ण है।
4. **सुखवादी मान्यता दोषपूर्ण है**—बेन्थम केवल सुख को ही मानवीय क्रियाओं का एकमात्र प्रेरक कारण मानते हैं। आलोचकों का कहना है कि यदि संसार में केवलमात्र सुख को ही प्रेरक मान लिया जाए तो सुखों की प्राप्ति की होड़ लग जाएगी। इससे कर्त्तव्य व स्वार्थ का संघर्ष समाप्त हो जाएगा। यदि भौतिक सुख ही सब कुछ होता तो कवि कविता की रचना क्यों करता? महात्मा बुद्ध राजसी ठाठबाट का त्याग क्यों करते? जिस प्रकार सुख की खोज मानव-स्वभाव का अंग है, वैसे ही देशभक्ति, त्याग, परोपकार आदि उदात्त भावनाएँ भी उसके स्वभाव का अंग है। मानव जीवन आदर्शों पर आधारित है, न कि सुखवादी दृष्टिकोण पर।
5. **सुखवादी मापन यन्त्र दोषपूर्ण है**—बेन्थम द्वारा बताई गई इस विधि से सुखों का मात्रा को सही ढंग से मापना असम्भव है। बेन्थम ने सुख मापन के विभिन्न तत्त्वों की तुलना करने का मूल्यांकन करने की निश्चित पद्धति नहीं बताई है। उदाहरण के लिए यदि एक सुख की प्रगाढ़ता (Intensity) कम तथा अवधि (Duration) अधिक हो तथा दूसरे की प्रगाढ़ता (Intensity) अधिक तथा अवधि (Duration) कम हो तो दोनों सुखों की मात्रा और तारतम्य का निर्धारण कैसे हो? इस विषय पर बेन्थम कुछ नहीं कह सका। अत: यह अनुपयोगी पद्धति है । व्यक्तियों की रुचि, समय और परिस्थितियों के कारण सुख-दु:ख में भी परिवर्तन आता रहता है। एक समय पर सुख देने वाली वस्तु दूसरे समय दु:ख भी प्रदान कर सकती है। रुचि वैचित्र्य के कारण अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। अत: सुखवादी मापन यन्त्र में अस्पष्टता तथा अनिश्चितता है।
6. **बहुसंख्यकों की निरंकुशता**—बेन्थम का सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति के सुख पर नहीं बल्कि बहुसंख्या के सुख पर जोर देता है। यदि बहुसंख्यक अपने आनन्द के लिए अल्पसंख्यकों को दास भी बनाना चाहें तो उचित है। इस दशा में अल्पसंख्यकों

का सुख बहुसंख्यकों के सुख के नीचे हमेशा दफन रहेगा। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से यह सिद्धान्त बहुसंख्यकों के अत्याचार को उचित व न्यायपूर्ण ठहराता है। इसलिए यदि सुख स्वाभाविक प्रवृत्ति है तो उसे प्राप्त करने का अधिकार सभी को मिलना चाहिए। अत: यह सिद्धान्त बहुसंख्यकों के अत्याचार व अन्याय को प्रोत्साहन देता है।

7. **नैतिकता की उपेक्षा**—बेन्थम ने केवल भौतिक सुखों के आधार पर अपना सिद्धान्त खड़ा किया हैं उसने सुख को ही जीवन का चरम लक्ष्य माना है। उसकी दृष्टि में उच्च नैतिक भावना, अन्त:करण और धर्म-अधर्म का कोई महत्त्व नहीं है। उदाहरणार्थ पाँच डाकू एक सज्जन पुरुष को लूटकर उसे जान से मार दें तो इससे अधिकतम का ही लाभ हुआ। उस सज्जन व्यक्ति की हानि का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। किन्तु नैतिक रूप से ऐसा नहीं होना चाहिए। अत: बेन्थम ने नैतिकता की घोर उपेक्षा करके अव्यवस्था को ही जन्म देने वाली स्थिति पैदा की है।
8. **सुखों के गुणात्मक भेद की उपेक्षा**—बेन्थम की दृष्टि से विभिन्न वस्तुओं और कार्यों से प्राप्त सुख मात्रात्मक होता है, गुणात्मक नहीं। उसका कहना है कि आनन्द का जितनी मात्रा घर पर रहने से मिलती है, उतनी ही घूमने से नहीं मिलती है। दोनों सुखों में मात्रात्मक अन्तर होता है। लेकिन सत्य तो यह है कि एक चित्रकार को चित्र बनाने में जो आनन्द प्राप्त होता है, वह उस चित्र को देखने वाले के आनन्द से अलग होता है। स्वादिष्ट वस्तुओं से मिलने बाला आनन्द, खेलने से प्राप्त होने वाले आनन्द से भिन्न है। इन सबमें मात्रात्मक भेद के साथ-साथ गुणात्मक भेद भी होता है। घर पर लेटे रहना एक निकृष्ट कोटि का आनन्द है, एवरेस्ट पर चढ़ना एक उत्कृष्ट कोटि का आनन्द है । अत: बेन्थम का सिद्धान्त गुणों की उपेक्षा करने के कारण दोषपूर्ण है। बेन्थम के अनुयायी जे.एस. मिल ने भी इस भूल को स्वीकार किया।
9. **शासन विषयक सिद्धान्त**—बेन्थम ने राज्य और सरकार में कोई अन्तर नहीं किया है। वह व्यक्ति द्वारा सुख की प्राप्ति के लक्ष्य पर बल देता है। वह मनुष्य के और राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन नहीं करता। वह केवल इतना कहता है कि राज्य को न्यूनतम हस्तक्षेप करना चाहिए। वह केवल शासन कार्यों का विवेचन करता है, राज्य के सैद्धान्तिक पक्ष का नहीं।
10. **अतर्कसंगत**—बेन्थम ने एक सुख से दूसरे सुख की उत्पत्ति की बात तो कही है लेकिन इस सुख के जनक की अवहेलना की है। प्रत्येक सुख की उत्पत्ति के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बेन्थम इसका कारण बताने में असफल रहे हैं। अत: यह सिद्धान्त तर्कसंगत नहीं है।
11. **सभी सुख समान नहीं होते**—बेन्थम ने भौतिक सुख और मानसिक सुखों को समान माना है। शरीर और आत्मा की अनुभूति के उद्देश्य और मात्रा असमान होते हैं। बेन्थम ने मात्रात्मक आधार पर सुखों में अन्तर मानकर मनुष्य को पशु स्तर तक गिरा दिया है। मैक्सी का कहना है—'बेन्थम की धारणा के अनुसार मनुष्य सूअर है।'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बेन्थम का उपयोगितावाद का दर्शन गलत धारणाओं पर आधारित है। बेन्थम ने सुख और आनन्द को समानार्थी मान लिया है। यह अन्तर्विरोधों से ग्रस्त है। यह गुणात्मक पहलू की उपेक्षा करता है। उसका सुखवादी मापन यन्त्र वैज्ञानिक तरीका नहीं है। 'सबसे बड़ा सुख' और 'सबसे बड़ी संख्या' के मध्य कोई तार्किक सम्बन्ध नहीं है। यह सिद्धान्त बहुमत की निरंकुशता को बढ़ावा देता है। अत: यह सिद्धान्त भ्रान्त, भौतिक व एकांगी है। इसमें यथार्थवाद व मनोवैज्ञानिकता का पुट नहीं है। इसलिए यह सिद्धान्त अस्पष्ट व अपूर्ण है। लेकिन अनेक दोषों के बावजूद भी यह सिद्धान्त लोक-कल्याणकारी राज्य की उदात्त भावना से प्रेरित है। आधुनिक प्रजातन्त्र में इसका विशेष महत्त्व है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. उपयोगितावाद का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है–

या **सर्वप्रथम उपयोगितावाद सिद्धान्त का वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन किया–**

(क) जे०एस० मिल (ख) बेन्थम (ग) डेविड ह्यूम (घ) एडमंड बर्क

उत्तर (ख) बेन्थम

प्र.2. किसने बेन्थम के दर्शन को 'सूअर का दर्शन' बताया?

(क) जे०एस० मिल (ख) सेबाइन (ग) डनिंग (घ) कांट

उत्तर (क) जे०एस० मिल

प्र.3. 'स्वतन्त्रता पर निबन्ध' के लेखक कौन हैं?
(क) बेन्थम (ख) बोदां (ग) जे०एस० मिल (घ) कांट
उत्तर (ग) जे०एस० मिल

प्र.4. कांट के अनुसार नैतिकता की प्रेरणा कहाँ से आती है?
(क) दूसरो से (ख) कानून से (ग) 'सद-इच्छा' से (घ) दण्ड के भय से
उत्तर (ग) 'सद-इच्छा' से

प्र.5. एडमंड बर्क का जन्म कहाँ हुआ?
(क) डबलिन (ख) लन्दन (ग) ओस्लो (घ) ब्रुसेल्स
उत्तर (क) डबलिन

प्र.6. कौन 'मनुष्य के अधिकारों' का हनन करता है?
(क) राजनीतिक राजसत्ता (ख) वैधानिक राजसत्ता (ग) सर्वशक्तिमान शासक (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) सर्वशक्तिमान शासक

प्र.7. एडमंड के अनुसार कौन मनुष्य को स्वतंत्र नहीं करता अपितु उनके पाँवों में बेड़िया डाल देता है?
(क) अभिरुचि (Aptitude) (ख) अधिकार (Right)
(ग) मनोवेग (Passions) (घ) जागरुकता (Awareness)
उत्तर (ग) मनोवेग (Passions)

प्र.8. वंशागत अभिजाततंत्र का अधिक विकसित रूप है–
(क) गणतंत्र (ख) राजतंत्र (ग) कुलीनतंत्र (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) राजतंत्र

प्र.9. बर्क ने सामाजिक जीवन के क्षेत्र में सर्वथा आवश्यक बताया है–
(क) मार्गदर्शन और नेतृत्व (ख) युद्ध कौशल और कानूनी ज्ञान
(ग) उपकार और धैर्य (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) मार्गदर्शन और नेतृत्व

प्र.10. किसने गरीबों के लिए 'Poor law' बनाने का सुझाव दिया?
(क) बोदां (ख) मैकियावेली (ग) एक्विनास (घ) बेन्थम
उत्तर (घ) बेन्थम

प्र.11. बेन्थम ने कहा कि "एक व्यक्ति को एक ही गिनना चाहिए"। इस कथन से किस सिद्धान्त का उद्भव होता है?
(क) संख्या के सिद्धान्त का (ख) समानता के सिद्धान्त का
(ग) विभाजन के सिद्धान्त का (घ) सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का
उत्तर (ख) समानता के सिद्धान्त का

प्र.12. "एक व्यक्ति को एक ही गिनना चाहिए" बेन्थम के इस कथन का तात्पर्य है–
(क) व्यक्तियों को गिनने में भूल नहीं होनी चाहिए (ख) अमीर या गरीब दोनों कानून की दृष्टि से समान हैं
(ग) पद के अनुसार व्यक्ति को गिनना चाहिए (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) अमीर या गरीब दोनों कानून की दृष्टि से समान हैं

प्र.13. मनुष्य का व्यावहारिक विवेक भौतिक जगत् के कार्य-कारण संबंध के नियमों से नहीं बँधा है, बल्कि यह 'सद-असद्' में अंतर करने में समर्थ है। यहाँ 'सद-असद्' का अर्थ है–
(क) भला-बुरा (ख) ऊँचा-नीचा
(ग) बड़ा-छोटा (घ) सच-झूठ
उत्तर (क) भला-बुरा

TOUCH 'n PASS

प्र.14. एडमंड बर्क के बताये तथ्यों में निम्नलिखित में से कौन-सा सही नहीं है?
(क) हमें सुधार अवश्य करना चाहिए ताकि वर्तमान व्यवस्था को सुरक्षित रखा जा सके।
(ख) जिस समाज में सुधार के साधन नहीं पाए जाते, उसमें संरक्षण के साधन भी नहीं पाए जाते।
(ग) संरक्षण की प्रवृत्ति और सुधार की क्षमता इन दोनों का संयोग मेरे विचार से राजमर्मज्ञ का आदर्श होना चाहिए।
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

प्र.15. फ्रांसीसी क्रान्ति कब प्रारम्भ हुई थी–
(क) 1787 ई० में (ख) 1789 ई० में (ग) 1792 ई० में (घ) 1765 ई० में

उत्तर (ख) 1789 ई० में

प्र.16. इंग्लैण्ड में 'गौरवपूर्ण क्रान्ति' हुई थी?
(क) 1688 ई० में (ख) 1689 ई० में (ग) 1660 ई० में (घ) 1670 ई० में

उत्तर (क) 1688 ई० में

प्र.17. अमेरिका की क्रान्ति कब हुई थी?
(क) 1775 ई० में (ख) 1776 ई० में (ग) 1875 ई० में (घ) 1765 ई० में

उत्तर (ख) 1776 ई० में

प्र.18. 'प्रतिनिधित्व नहीं तो कराधान नहीं' किस क्रान्ति में कहा गया?
(क) फ्रांसीसी क्रांति में (ख) इंग्लैण्ड की क्रांति में
(ग) अमेरिकी क्रांति में (घ) रूसी क्रान्ति में

उत्तर (ग) अमेरिकी क्रांति में

प्र.19. बर्क द्वारा वर्तमान व्यवस्था की रक्षा करते हुए सुधार लागू करने के जो उपाय सुझाए उनमें निम्नलिखित में कौन-सा सही है?
(क) धार्मिक व्यवस्था को मत-विरोधियों की अंतरात्माक का सम्मान करना चाहिए।
(ख) कुलीनतंत्र को नई प्रतिभाओं के प्रवेश के लिए कुछ गुंजाइश रखनी चाहिए।
(ग) कोई साम्राज्यशाली राष्ट्र (Imperial Power) अपने उपनिवेशों की विशिष्ट परंपराओं का सम्मान करते हुए ही शांति और व्यवस्था कायम रख सकता है।
(घ) उपरोक्त सभी

उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

प्र.20. ''अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख'' बेन्थन के इस कथन का तात्पर्य किससे है?
(क) न्याय से (ख) योजनाओं से (ग) राज्य से (घ) शासन से

उत्तर (ग) राज्य से

प्र.21. ''राज्य व्यक्तियों का एक समूह है जिसका संगठन उपयोगिता अथवा सुख की वृद्धि करने के लिए किया गया है।'' यह कथन किसका है?
(क) कार्ट (ख) कांट (ग) बेन्थम (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) बेन्थम

प्र.22. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन बेन्थम के लिए सत्य है?
(क) 'सामाजिक समझौता सिद्धान्त' का खण्डन करता है।
(ख) गणतन्त्रीय सरकार का समर्थन करता है।
(ग) बेन्थम राज्य की सम्प्रभुता का समर्थन करता है।
(घ) उपरोक्त सभी

उत्तर (घ) ये सभी

TOUCH 'n' PASS

प्र.23. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन बेन्थम की धारणाओं को गलत साबित करता है?
(क) प्राकृतिक अधिकार नाम मात्र है
(ख) मानवीय कानून को सर्वोच्च कानून माना है
(ग) इंग्लैण्ड की न्याय व्यवस्था की कटु आलोचनाएँ की है
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
उत्तर (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

प्र.24. बेन्थम ने कानून के चार उद्देश्य बताए हैं, निम्न में से कौन-सा गलत है?
या **बेन्थम के अनुसार कानून का उद्देश्य नहीं है–**
(क) सुरक्षा (ख) आजीविका (ग) सम्पन्नता (घ) सम्प्रभुता
उत्तर (घ) सम्प्रभुता

प्र.25. बेन्थम ने कानून का वर्गीकरण कितने भागों में किया था?
(क) 3 (ख) 4 (ग) 6 (घ) 10
उत्तर (ख) 4

प्र.26. बेन्थम द्वारा न्याय व्यवस्था में दिये सुझावों में कौन-सा तथ्य सही है?
(क) प्रत्येक व्यक्ति को अपना वकील स्वयं बनना चाहिए।
(ख) न्याय-व्यवस्था सस्ती होनी चाहिए।
(ग) न्याय शीघ्र मिलना चाहिए।
(घ) उपरोक्त सभी
उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

प्र.27. बेन्थम ने सुख-दुःख की संख्या क्रमशः बताई है–
(क) 14, 10 (ख) 12, 14 (ग) 14, 12 (घ) 10, 14
उत्तर (ग) 14, 12

प्र.28. बेन्थम ने सुख-दुःख के कितने स्त्रोत बताए?
(क) 4 (ख) 5 (ग) 10 (घ) 3
उत्तर (क) 4

प्र.29. निम्नलिखित में से बेन्थम के उपयोगितावाद की आलोचना में कहा गया तथ्य सही है–
(क) इसमें स्पष्टता का अभाव है (ख) बहुसंख्यकों की निरंकुशता है
(ग) राज्य और सरकार में कोई अन्तर नहीं किया गया (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.30. 'उपयोगितावाद' किसकी रचना है?
(क) जे०एस० मिल (ख) बेन्थम (ग) लॉक (घ) हॉब्स
उत्तर (क) जे०एस० मिल

प्र.31. 'अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख' प्रथम बार किस पुस्तक में देखने को मिलता है?
(क) नैतिक दर्शन पद्धति (System of Moral Philosophy)
(ख) द बुक ऑफ फैलेसीज (The Book of Fallacies)
(ग) फ्रेगमेण्टस ऑन गवर्नमेंट (Fragments on Government)
(घ) कॉन्सटीट्यूशनल कोड (Constitutional Code)
उत्तर (क) नैतिक दर्शन पद्धति (System of Moral Philosophy)

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VI

ग्रीन, हीगल और मार्क्स
Green, Hegel and Marx

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हीगल के राजनीतिक विचार को संक्षेप में लिखिए।
Write in short the political thoughts of Hegel.

उत्तर हीगल सर्वाधिक प्रमुख रूप में एक आदर्शवादी विचारक है और आदर्शवाद का चरम रूप हीगल के दर्शन में ही मिलता है। हीगल के राजनीतिक दर्शन को सही रूप में समझने के लिए 'आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धान्तों' का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

प्र.2. हीगल के द्वन्द्वात्मक पद्धति की क्या उपयोगिता है?
What is the utility of dialectical method of Hegel?

उत्तर इस पद्धति में इन विभिन्न दोषों के होते हुए भी इसकी बहुत उपयोगिता है क्योंकि यह वस्तुओं के स्वरूप को स्पष्ट करने में बड़ी सहायक है। यह तथ्य है कि विरोधी तत्त्वों को जाने बिना हम सत्य को ठीक-ठीक नहीं पहचान पाते। जीवन संघर्षों का रंगमंच है और इन विरोधों तथा संघर्षों में समन्वय का कितना महत्त्व है, यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। हीगल का द्वन्द्ववाद इसी सत्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसेल के अनुसार, 'हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति मानव मन की कार्य प्रणाली को सुचारु रूप से चित्रित करती है क्योंकि कई बार मानव मन इसी प्रकार के विरोधों के मार्ग से आगे बढ़ता है।''

प्र.3. 'दास कैपिटल' पुस्तक का लेखक कौन है?
Who is the autor of the book 'Das Capital'?

उत्तर 'दास कैपिटल' का लेखक कार्ल मार्क्स है।

प्र.4. कार्ल मार्क्स की मुख्य पुस्तकों के नाम लिखिए।
Name the main books of Karl Marx.

उत्तर कार्ल मार्क्स की निम्नलिखित मुख्य पुस्तकें हैं—

1. द पॉवरटी ऑफ फिलॉसफी
2. द इकॉनोमिक एण्ड फिलॉसफिकल मेन्युस्क्रिप्ट्स
3. द कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो
4. क्लास स्ट्रगल इन फ्रांस
5. द क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकॉनोमी
6. वेल्यु, प्राइज एण्ड प्रोफिट
7. कैपिटल (3 वॉल्यूम)
8. द सिविल वार इन फ्रांस।

प्र.5. कार्ल मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त क्या है?
What is the class conflict theory of Karl Marx?

उत्तर वर्ग संघर्ष का आशय है कि समाज में दो वर्गों का अस्तित्व है तथा इन वर्गों के हित, एक-दूसरे के विपरीत हैं। इस कारण इनमें संघर्ष चलता रहता है। मार्क्स का कथन है कि वर्ग संघर्ष आधुनिक युग में पूँजीपतियों और श्रमिकों के बीच मुख्य रूप में पाया जाता है और 'इस संघर्ष के परिणामस्वरूप ही समाज मानवीय आशाओं के अनुरूप उन्नति नहीं कर पाता है, इसलिए वर्ग संघर्ष ही राज्य तथा समाज की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. द्वन्द्ववाद भौतिकवाद की किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Mention any two features of dialectical materialism.

उत्तर द्वन्द्ववाद भौतिकवाद की दो विशेषताएँ हैं—(1) विपरीतों की एकता तथा संघर्ष का नियम, (2) निषेध के निषेध का नियम।

प्र.7. ग्रीन की दो पुस्तकों के नाम लिखिए।
Name the two books of Green.

उत्तर ग्रीन की दो रचनाएँ हैं—(1) प्रोलेगोमेन्स ऑफ इथिक्स, (2) लेक्चर्स ऑन दि प्रिन्सिपिल्स ऑफ पॉलिटिकल ऑब्लीगेशन।

प्र.8. ग्रीन के अनुसार राज्य के दो कार्य लिखिए।
Write two functions of state according to Green.

उत्तर ग्रीन के अनुसार राज्य के रचनात्मक कार्य निम्नलिखित हैं—

1. राज्य को चाहिए कि वह अपने नागरिकों के नैतिक विकास के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था करे।
2. राज्य को अपने क्षेत्र में अज्ञानता और बर्बरता का उन्मूलन करना चाहिए।
3. राज्य को मद्य निषेध लागू करना चाहिए क्योंकि मद्यपान सामान्य इच्छा और हित के विरुद्ध है।
4. राज्य का एक मुख्य कार्य उन बाधाओं का निराकरण करना है जो व्यक्ति की नैतिकता के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हैं।
5. राज्य का यह कर्त्तव्य भी है कि वह व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा करे क्योंकि व्यक्ति के विकास के लिए सम्पत्ति आवश्यक है।
6. ग्रीन का मत है कि राज्य का कर्त्तव्य है कि वह 'स्वतन्त्र व्यापार नीति' का अनुसरण करे, नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा का प्रबन्ध करे और श्रमिकों के हितार्थ कानूनों का निर्माण करे।

प्र.9. टी०एच० ग्रीन के अनुसार स्वतन्त्रता के प्रकार लिखिए।
Write the types of freedom according to T.H. Green.

उत्तर ग्रीन ने स्वतन्त्रता के दो रूपों का उल्लेख किया है—(1) सकारात्मक स्वतन्त्रता (2) निश्चयात्मक स्वतन्त्रता।

प्र.10. लास्की के अनुसार स्वतन्त्रता के रूप लिखिए।
Write the form of freedom according to Laski.

उत्तर लास्की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थक था। वह स्वतन्त्रता के तीन रूप मानता है—(1) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, (2) राजनीतिक स्वतन्त्रता, (3) आर्थिक स्वतन्त्रता।

लास्की के स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचार ग्रीन (Green) के विचारों से मिलते-जुलते हैं। वह स्वतन्त्रता और समानता को एक-दूसरे का पूरक मानता है। उसका कहना है कि स्वतन्त्रता के अभाव में समानता की कल्पना करना भी निरर्थक है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हीगल के जीवन परिचय व रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the life sketch and works of Hegel.

उत्तर

हीगल का जीवन परिचय
(Life Sketch of Hegel)

हीगल का जन्म जर्मनी के एक नगर स्टुटगार्ट में सन् 1770 ई. में हुआ था। एक उच्च राज कर्मचारी का पुत्र होने के कारण हीगल का पालन-पोषण तथा शिक्षा व्यवस्थित ढंग से हुई। अपने अध्ययन काल में उस पर यूनानी दार्शनिक के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। उसका कहना था कि 'यूनान का नाम सुनते ही सुसंस्कृत जर्मन प्रफुल्लित हो उठता है।' जब वह विद्यार्थी था, तभी फ्रांस में राज्य क्रान्ति हुई और उससे भी वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने उसे 'शानदार बौद्धिक उषाकाल' की संज्ञा दी। रूस के दर्शन का उसने विस्तृत अध्ययन किया और उसने ईसामसीह का जीवन चरित्र लिखकर ईसाई धर्म की नैतिक असत्यताओं का उल्लेख किया।

1793 ई. में स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद उसने विभिन्न शैक्षणिक पदों पर कार्य किया। न्यूरेम्बर्ग के एक स्कूल में प्रधानाध्यापक पद पर रहते हुए उसने कठिन परिश्रम करके अपने ग्रन्थ 'Science of Logic' को पूर्ण किया। इस ग्रन्थ के

TOUCH n PASS

प्रकाशन के साथ ही उसकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गयी और वह महान दार्शनिकों में गिना जाने लगा। फलस्वरूप 1816 ई. में उसकी हीडलबर्ग विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति हो गयी। यहाँ 1818 ई. में उसने अपना प्रसिद्ध एवं विशाल ग्रन्थ 'Encyclopaedia of the Philosophical Sciences' लिखा, जिसने उसकी ख्याति को और बढ़ा दिया। फलत: उसे विश्व प्रसिद्ध बर्लिन विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर पद पर नियुक्ति मिली। इस स्थिति में उसने बहुत प्रतिष्ठित और ख्यातिपूर्ण दार्शनिक जीवन व्यतीत किया। बाद में वह इस विश्वविद्यालय का प्रधान बन गया। अपने ग्रन्थों 'Philosophy of Right' और 'Philosophy of History' के आधार पर उसने एशिया के निरंकुश राजतन्त्र का दार्शनिक आधार पर उग्र समर्थन किया। निरंकुश राजतन्त्र के इस गुणगान के फलस्वरूप वह 'सरकारी दार्शनिक' के रूप में जाना जाने लगा। 61 वर्ष की आयु में उसका आकस्मिक देहावसान हो गया।

रचनाएँ (Works)

अपने विभिन्न दार्शनिक और राजनीतिक विचारों के प्रतिपादन के लिए हीगल ने निम्नलिखित प्रमुख ग्रन्थों की रचना की—

1. Philosophy of Law या Philosophy of Right.
2. Philosophy of History.
3. Science of Logic.
4. The Phenomenology of Spirit.
5. Encyclopaedia of Philosophical Sciences.
6. Constitution of Germany.

हीगल के इन ग्रन्थों में प्रकट दार्शनिक विचार बहुत दुर्बोध, अस्पष्ट और क्लिष्ट हैं। वेपर ने इस ओर संकेत करते हुए कहा है कि, 'हीगल जितना महत्त्वपूर्ण दार्शनिक है, दुर्भाग्यवश उसे समझना उतना ही अधिक कठिन है।' इन ग्रन्थों की दुर्बोधता और क्लिष्टता का मुख्य कारण यह था कि उन दिनों जर्मनी में इसे 'विद्वत्ता का लक्षण' माना जाता था। लेकिन इस विलष्टता के बावजूद हीगल और उसके चिन्तन की बौद्धिक महानता सन्देह के परे है।

प्र.2. हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली की व्याख्या कीजिए।
Explain Hegel's dialectical method.

उत्तर

हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली
(Hegel's Dialectical Method)

प्रो. सेबाइन का विचार है कि, हीगल की राजनीतिक विचारधारा का महत्त्व दो बिन्दुओं पर केन्द्रित है और वे हैं : द्वन्द्वात्मक प्रणाली तथा राष्ट्रीय राज्य का आदर्श स्वरूप।

हीगल के अनुसार मानवीय सभ्यता की प्रगति या विकास कभी भी एक सीधी रेखा के समान नहीं होता। जिस प्रकार प्रचण्ड तूफान में थपेड़े खाता हुआ एक जहाज अपना मार्ग बनाता है, उसी प्रकार से मानव सभ्यता भी अनेक टेड़-मेढ़े रास्तों से होती हुई आगे बढ़ती है। राज्य एक जड़ वस्तु न होकर विकसित संस्था है, अत: इसका अध्ययन विकासवादी दृष्टिकोण के आधार पर ही किया जाना चाहिए। विकास की इस प्रक्रिया में निम्नकोटि की वस्तुएँ उच्चकोटि की वस्तुओं में विकसित होकर पूर्णता प्राप्त करती हैं और उनकी निम्नता नष्ट न होकर उच्चता ग्रहण कर लेती है। विकसित होने के पश्चात कोई भी वस्तु वह नहीं रहती, जो पहले थी, वरन् वह कुछ आगे बढ़ जाती है। इसी विकासवादी प्रक्रिया को हीगल ने 'द्वन्द्वात्मक पद्धति' का नाम दिया है।

सर्वप्रथम यूनानी लोगों ने अपने विचार-विमर्श में द्वन्द्वात्मक प्रणाली को अपनाया था। इस प्रणाली के आधार पर वे आपसी कथोपकथन, तर्क और प्रति तर्क द्वारा सत्य को प्रमाणित करते एवं नवीन सत्य की खोज करते थे। हीगल द्वन्द्व की इस प्रणाली को विचारों के क्षेत्र में लागू करते हुए कहता है कि सर्वप्रथम प्रत्येक वस्तु का एक मौलिक रूप 'वाद' (Thesis) होता है, विकासवाद के अनुसार वह बढ़ता और इसका विकसित रूप कालान्तर में उसके मौलिक रूप का बिल्कुल विपरीत हो जाता है, इस विपरीत रूप को प्रतिवाद (Antithesis) कहते हैं। ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता है, विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार यह मौलिक रूप तथा विपरीत रूप आपस में मिलते हैं और इन दोनों के मेल से वस्तु का नया समन्वित रूप 'समवाद' (Synthesis) बन जाता है। यह समन्वित रूप थोड़े दिनों में फिर मौलिक रूप ग्रहण कर लेता है और इसी प्रक्रिया की निरन्तर आवृत्ति होती रहती है।

इसी द्वन्द्वात्मक प्रणाली के आधार पर हीगल समाज तथा राज्य के विकास का अध्ययन करता है। वह मानता है कि यूनानी राज्य 'वाद' थे, 'धर्म राज्य' उसके प्रतिवाद' और 'राष्ट्रीय राज्य' उनका एक 'समवाद' होगा। 'कला', 'धर्म' तथा 'दर्शन' को भी वह इस प्रकार वाद, प्रतिवाद तथा समवाद मानता है। हीगल के अनुसार, द्वन्द्व की इस पद्धति से ही विश्व के सभी विचार विकसित होते हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. हीगल की इतिहास की दार्शनिक व्याख्या को बताइए।
State Hegel's philosophical interpretation of history.

उत्तर

हीगल की इतिहास की दार्शनिक व्याख्या
(Hegel's Philosophical Interpretation of History)

अपने द्वन्द्ववादी सिद्धान्त के अनुसार हीगल ने विश्व इतिहास की विभिन्न घटनाओं को एक विकास क्रम में जोड़कर विकास के एक अनवरत क्रम की बात कही और यह सिद्ध किया कि इतिहास विश्व इतिहास की अभिव्यक्ति की कहानी है। उसके अनुसार इतिहास में घटित होने वाली सभी घटनाएँ विश्वात्मा के निरन्तर विकास के विभिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उसने सभ्यता के आदि काल से विकास की ओर उन्मुख इस विश्व आत्मा के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते हुए यह घोषित किया कि अतीत के उसके सारे रूप अधूरे थे तथा जर्मन राष्ट्र के उत्थान में वह अपना अन्तिम रूप प्राप्त कर ईश्वर इच्छा को पूर्ण करेगी। इस तरह इतिहास विश्व आत्मा के द्वारा अपना अन्तिम स्वरूप प्राप्त करने के उद्देश्य से ही जाने वाली महायात्रा है। यह सारा विश्व, विश्व-आत्मामय है और उसकी शक्ति से प्रेरित एवं संचालित है। इसलिए मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इस रहस्य को समझे और अपनी संकीर्ण इच्छाओं तथा वासनाओं को छोड़कर इस रहस्य के प्रयोजन के अनुसार कार्य करे क्योंकि सच्चा मनुष्यत्व और सच्ची स्वतन्त्रता विश्वात्मा के प्रयोजन के अनुसार कार्य करने में ही निहित है।

हीगल का इस सम्बन्ध में आगे कथन है कि विश्वात्मा इतिहास में अपने विकास के लिए विभिन्न रूप ग्रहण करती है। द्वन्द्वात्मक पद्धति के अनुसार इसके प्रत्येक अगले रूप में पिछला रूप बीज रूप में विद्यमान रहता है और इस प्रकार इसके विकास में एक मौलिक एकता और अनवरतता बनी रहती है। यह विकास यद्यपि शनैः शनैः होता है, लेकिन परिस्थितियोंवश इसमें कभी-कभी विस्फोट भी होता नजर आता है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति एक ऐसा ही विस्फोट थी। लेकिन उसके विकास के इस क्रान्तिकारी तरीके से भी उसकी अनवरतता नष्ट नहीं होती है और विस्फोट के शान्त होने के बाद अनवरतता का वह टूटा हुआ तार फिर जुड़ जाता है और द्वन्द्वात्मक पद्धति के अनुसार पुरानी व्यवस्था की अच्छी बातें नयी व्यवस्था के द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं। इस तरह विश्वात्मा की पूर्णता प्राप्त करने की यात्रा निरन्तर जारी रहती है।

द्वन्द्वात्मक पद्धति के अनुसार हीगल विश्व-आत्मा के विकास को तीन स्थितियों में विभाजित करता है। पहली स्थिति पूर्वी देशों की थी, दूसरी यूनानी और रोमन राज्यों की स्थिति थी एवं तृतीय जर्मन राज्य के उत्थान की स्थिति होगी। हीगल विश्व-आत्मा के विकास का प्रारम्भ चीन में मानता है। वहाँ पर विश्व-आत्मा अपने स्थूलतम रूप में थी, क्योंकि वहाँ का सारा सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन एक ही व्यक्ति के द्वारा नियन्त्रित था, लोगों को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। वहाँ से विश्व-आत्मा अपने विकास की यात्रा में भारत की ओर उन्मुख हुई तथा यहाँ पर राजा और ब्राह्मण दोनों मिलकर शासन का संचालन करने लगे। जनता इनके द्वारा किये जाने वाले शोषण के सम्मुख असहाय थी। इसके पश्चात् विश्वात्मा अपने विकास के क्रम यूनान और रोम पहुँची। इस अवस्था में जनता ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए निरंकुश राजाओं से संघर्ष किया। फलस्वरूप उसको कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त हुई लेकिन यह स्वतन्त्रता अत्मिक नहीं, राजनीतिक थी। इसकी वजह से निरंकुश राजतन्त्र वैधानिक राजतन्त्रों में बदल गये। इस विकास के पश्चात् विश्व-आत्मा का अन्तिम विकास जर्मन राज्य में होगा, जिसमें सभी को आत्मिक उत्थान की पूर्णता प्राप्त होगी तथा शासक और जनता के बीच में अब तक विद्यमान खाई पट जायेगी तथा दोनों के हित और उद्देश्य एकीकृत हो जायेंगे। अतः उसने विश्वात्मा के विकास के इस क्रम का उल्लेख करते हुए घोषणा की कि, 'प्रशिया (जर्मनी) शीघ्र ही एक प्रबल शक्तिशाली राज्य के रूप में विकसित होगा और वह यूरोप के समूचे महाद्वीप का अधीश्वर बन जायेगा।

इस प्रकार हीगल के अनुसार चीन में सभ्यता का जन्म हुआ, भारत में उसका बचपन बीता, यूनान और रोम में उसने तरुणाई प्राप्त की ओर जर्मनी में पहुँचते-पहुँचते वह वृद्ध हो गयी और उसका पार्थिव शरीर नष्ट हो गया और उसकी शारीरिक चेतना के अन्त के साथ ही उसकी आत्मिक चेतना जाग्रत हो गयी।

उसका स्वरूप स्थूलता से मुक्त होकर पूर्ण चैतन्यमय हो गया। यही उसका पूर्ण विकसित और सही स्वरूप है, प्रबुद्ध रूप है।

प्र.4. हीगल के अनुसार निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।
Comment on the following according to Hegel :

1. **राज्य और नैतिकता (State and Ethics)**
2. **राज्य और समाज (State and Society)**

TOUCH 'n PASS

उत्तर

1. राज्य और नैतिकता
(State and Ethics)

हीगल के अनुसार, राज्य नैतिक दृष्टि से भी पूर्ण निरंकुश है। वह स्वयं नैतिकता का संस्थापक होने के कारण उस पर नैतिकता के किन्हीं नियमों को लागू नहीं किया जा सकता है। अपने 'आचारशास्त्र' (Ethics) नामक ग्रन्थ में वह लिखता है "राज्य स्वनिश्चित निरपेक्ष बुद्धि है जो कि अच्छे-बुरे और नीचता तथा छल-कपट के किसी अमूर्त नियम को नहीं मानता।'

हीगल का यह विचार समस्त राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में अभूतपूर्व है। हीगल के पूर्व किसी भी दार्शनिक ने राज्य की नैतिक निरंकुशता का प्रतिपादन नहीं किया था और वे मानते कि राज्य को प्राकृतिक या नैतिक कानून के उल्लंघन का अधिकार नहीं हो सकता। हीगल की विचारधारा के नितान्त विपरीत उन्होंने तो यह बात मानी थी कि प्राकृतिक विधि, नैतिक मान्यताएँ या अन्त:करण के आदेश पर राज्य का विरोध कर सकता है। किन्तु हीगल प्राकृतिक विधि, सामान्य नैतिक मान्यताएँ या अन्त: करण इनमें से किसी को भी स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार, ये तो नैतिकता की 'आत्मनिष्ठ' (Subjective) धाराएँ हैं, जो समय और स्थान के अनुसार बदलती रहती हैं। नैतिकता की कोई वस्तुगत (Objective) कसौटी होनी चाहिए और राज्य के कानून ही वे कसौटी हैं। अत: राज्य नैतिकता से उच्च है और नैतिकता राज्य के कानूनों के पालन में ही निहित है।

2. राज्य तथा समाज
(State and Society)

हीगल की राज्य सम्बन्धी विचारधारा की एक अन्य विशेषता यह है कि वह राज्य को समाज से भी उच्च तथा श्रेष्ठ मानता है। हीगल के द्वारा द्वन्द्वात्मक पद्धति के आधार पर राज्य की उत्पत्ति का वर्णन करने के लिए जो विचार-क्रम अपनाया गया है उसके अन्तर्गत परिवार 'वाद', नागरिक समाज 'प्रतिवाद' और राज्य समवाद है। इस प्रकार समाज सार्वभौम आत्मा के विकास में राज्य से पहले की अवस्था है और उसका आधार स्वार्थ तथा प्रतियोगिता है, लेकिन राज्य सार्वभौम आत्मा के विकास की सर्वोच्च अवस्था है और इस दृष्टि से समाज की तुलना में उच्च है।

इसका अभिप्राय यह है कि राज्य सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को अपनी इच्छानुसार निर्धारित और नियमित कर सकता है। हीगल की इसी धारणा के कारण उसके दर्शन को सर्वाधिकारवादी कहा जाता है।

हीगल का यह सिद्धान्त चिन्तन के इतिहास में नवीन था। प्लेटो को छोड़कर सभी राजनीतिक विचारकों ने राज्य की तुलना में समाज को प्रधानता दी थी। हीगल के युग के उदारवादी विचारक राज्य की तुलना में समाज को बहुत उच्च संस्था को मानते थे। हीगल ने उसकी विचारधारा के नितान्त विपरीत विचारों का प्रतिपादन किया।

प्र.5. मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
Explain the theory of surplus value of Marx.

उत्तर

मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त
(Theory of Surplus Value of Marx)

कार्ल मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त' का विवेचन अपनी पुस्तक 'Das Capital' में किया है। मार्क्स ने पूँजीवाद का विशद अध्ययन किया था और पूँजीवाद के सम्बन्ध में उसका एक महत्त्वपूर्ण विचार 'अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त' है, लेकिन इसे समझने के लिए 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त' को जानना होगा।

मूल्य का श्रम सिद्धान्त—मार्क्स के अनुसार प्रत्येक वस्तु के साथ दो प्रकार के मूल्य की बात जुड़ी हुई होती है—(1) उपयोग मूल्य (Use Value), और (2) विनिमय मूल्य (Exchange Value)। व्यक्ति के लिए वस्तु की उपयोगिता और आवश्यकता के आधार पर उसका उपयोग मूल्य निर्धारित होता है। जैसे प्यासे के लिए पानी का निश्चित रूप से बहुत अधिक उपयोग मूल्य है जबकि एक अन्य व्यक्ति के लिए, जो प्यास का अनुभव नहीं कर रहा है, पानी का कोई उपयोग मूल्य नहीं है। विनिमय मूल्य का प्रश्न तब उपस्थित होता है, जब किसी वस्तु को बाजार में बेचा जाता है। जिस मूल्य पर खरीदार विक्रेता से उस वस्तु को खरीदता है, उसे उसका 'विनिमय मूल्य' कहते हैं। उदाहरणतया, यदि 1 टन गेहूं के बदले 2 थान कपड़ा या एक हजार रुपए की धनराशि प्राप्त की जा सकती है, तो यह 1 टन गेहूँ का विनिमय मूल्य है।

मार्क्स के अनुसार अर्थव्यवस्था की विवेचना की दृष्टि से विनिमय मूल्य का ही महत्त्व है। सभी वस्तुएँ बाजार में बेची और खरीदी जाती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि कोई ऐसा सामान्य तत्त्व अवश्य है जो इन सभी वस्तुओं में विद्यमान रहता है। वह तत्त्व श्रम ही हो सकता है, जो सभी वस्तुओं में न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान है। अत: किसी वस्तु का विनिमय मूल्य मानव श्रम की उस मात्रा से निर्धारित होता है, जो किसी विशेष समाज में उसके निर्माण के लिए खर्च किया जाना आवश्यक है, यही मूल्य का श्रम सिद्धान्त है।

TOUCH 'n' PASS

अपने 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त' के आधार पर मार्क्स ने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। उसका विचार है कि प्रत्येक वस्तु का वास्तविक मूल्य, उस पर खर्च किए गए केवल श्रम के अनुसार होता है, किन्तु बाजार में यह वस्तु काफी ऊँचे मूल्य पर बेची जाती है और उसके बेचने से प्राप्त होने वाला अतिरिक्त धन पूँजीपति के द्वारा अपने पास रख लिया जाता है। मार्क्स का कथन है कि 'पूँजीपति द्वारा अपने पास रख लिया गया यह धन ही अतिरिक्त मूल्य है।'' स्वयं मार्क्स के शब्दों में, 'यह उन दो मूल्यों का अन्तर है जिसे मजदूर पैदा करता है और जिसे वह वास्तव में पाता है।' दूसरे शब्दों में, यह वह मूल्य है जिसे पूँजीपति मजदूर के श्रम से प्राप्त करता है, जिसके लिए उसने मजदूर को कोई 'मूल्य नहीं चुकाया है'। मैक्सी के शब्दों में, 'यह वह मूल्य है जिसे पूँजीपति श्रमिकों के खून-पसीने की कमाई पर 'पथकर' के रूप में वसूल करता है।

उदाहरण के लिए, किसी फैक्टरी में यदि एक मजदूर एक साड़ी बनाता है तो उसे 6 रुपये मिलते हैं और मान लीजिए उस साड़ी में लगने वाली सामग्री की कीमत 8 रुपये है, किन्तु वह साड़ी बाजार में 20 रुपये में बिकती है। इस प्रकार लागत मूल्य 14 रुपए निकाल देने के बाद 6 रुपए ऐसा अतिरिक्त मूल्य है, जिसे पूँजीपति बिना किसी प्रकार का परिश्रम किए ही प्राप्त कर लेता है।

कार्ल मार्क्स का मत था कि यह अतिरिक्त मूल्य वस्तुत: श्रमिकों के श्रम का ही परिणाम होता है, अत: न्याय की माँग है कि वह उसे ही प्राप्त होना चाहिए। चूँकि श्रमिक लोग वर्तमान उत्पादन व्यवस्था में उत्पादन के साधनों के स्वामी नहीं होता, इसलिए उन्हें उनके श्रम से उत्पन्न यह अतिरिक्त मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता तथा वह उन पूँजीपतियों द्वारा हड़प लिया जाता है, जो उन साधनों के स्वामी होते हैं। मार्क्स के अनुसार, पूँजीपतियों द्वारा इस प्रकार अतिरिक्त मूल्य का हड़प लिया जाना आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था का बड़ा अन्याय है तथा इस व्यवस्था में श्रमिकों की स्थिति दासों से नाममात्र के लिए ही अच्छी है। दासों तथा श्रमिकों की स्थिति में यदि कोई अन्तर है तो वह यही है कि दास प्रथा में दास व्यक्ति को दासता के कारण उसके उचित पारिश्रमिक से वंचित रखा जाता था और आधुनिक अर्थव्यवस्था में श्रमिक अपनी असहाय दशा से बाध्य होकर पूँजीपति के साथ ऐसी शर्त पर नौकरी करने के लिए राजी हो जाता है कि उसे अपने श्रम का उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता। क्योंकि श्रमिकों के पास उत्पादन के साधनों को खरीदने की शक्ति नहीं होती, वे बाध्य होकर अपना श्रम पूँजीपतियों को नाममात्र की कीमत पर बेच देते हैं तथा इस प्रकार उनके श्रम से उत्पन्न अतिरिक्त मूल्य पूँजीपतियों की जेबों में चला जाता है।

प्र.6. ''कार्ल मार्क्स एक प्रथम वैज्ञानिक समाजवादी है'' इसकी विवेचना कीजिए।
"Karl Marx is the first scientific socialist." Discuss it.

उत्तर

कार्ल मार्क्स : प्रथम वैज्ञानिक समाजवादी
(Karl Marx : First Scientific Socialist)

''निष्पक्ष रूप से उस व्यक्ति के विषय में कुछ कहना बहुत कठिन हो जाता है, जिसे लाखों व्यक्ति ईश्वर की भाँति पूजते हों और अन्य लाखों पिशाच मानकर घृणा करते हों.....यदि मार्क्स के अध्ययन की आवश्यकता का प्रश्न हटाया जा सके, तो इन कटु आलोचनाओं से बचा जा सकता है। परन्तु उस व्यक्ति को कैसे भुलाया जा सकता है, जिसके विचारों ने विश्व को प्रतिद्वन्द्वी शिविरों में बाँट दिया हो। ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में विचार करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि भावुकता को मस्तिष्क की खिड़की से बाहर फेंककर उसे समझने की चेष्टा की जाए।'' **–मैक्सी**

मार्क्स समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादन या सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन की बात कहने वाला प्रथम विचारक नहीं था और मार्क्स से पूर्व अनेक ब्रिटिश व फ्रेंच विचारक हुए, जिनके द्वारा समाजवादी विचार व्यक्त किए जा चुके थे। इनमें मुख्य थे—फ्रांस में नॉयल बाबेफ, सेण्ट साइमन, चार्ल्स फोरियर और लुई ब्लांक तथा इंग्लैण्ड में जॉन दि सिसमोण्डी, डॉ. हॉल, विलियम थॉम्पसन और रॉबर्ट ओवन। ये विचारक पूँजीवादी व्यवस्था में विद्यमान धन की विषमता, स्वतन्त्र प्रतियोगिता और आर्थिक क्षेत्र में राज्य की अहस्तक्षेप नीति के कटु आलोचक थे।

ये विचारक आर्थिक विषमता के स्थान पर समाज में धन के न्यायोचित वितरण पर बल देते थे, किन्तु उन्होंने यह नहीं बताया था कि यह विषमता किन कारणों से उत्पन्न होती है और उसका उत्पादन की विधियों के साथ क्या सम्बन्ध है। उन्होंने समाज की प्रगति और विकास के नियमों को समझने का प्रयत्न नहीं किया था। इन लेखकों द्वारा न तो परिवर्तित घटनाचक्र की कोई व्याख्या प्रस्तुत की गयी थी और न ही विद्यमान अवस्था को सुधारने के लिए क्रियात्मक व्यावहारिक दर्शन प्रदान किया गया था। वेपर ने इसके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि 'उन्होंने सुन्दर गुलाब के फूलों की कल्पना तो की, परन्तु गुलाब के वृक्षों के लिए कोई धरती तैयार नहीं की।' इसलिए मार्क्स से पूर्व के समाजवादियों को 'स्वप्नलोकीय समाजवादी' (Uptopian Socialists) कहा जाता है। मार्क्स लिखता है कि अभी तक सभी दार्शनिक जगत का विश्लेषण करने में लगे रहे हैं, परन्तु दार्शनिकों का मुख्य कार्य जगत का विश्लेषण करना नहीं वरन् उसे बदलना है। अत: मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद एक काल्पनिक विचारधारा मात्र न होकर विधिवत् रूप से प्रतिपादित एक व्यावहारिक दर्शन है। इस दृष्टि से मार्क्स को वैज्ञानिक समाजवादी कहा जा सकता है।

मार्क्स का समाजवाद इतिहास के गूढ़ अध्ययन पर आधारित है। मार्क्स उन इतिहासकारों से बिलकुल सहमत नहीं है, जिन्होंने इतिहास को कुछ महान व्यक्तियों के कार्यों का परिणाम मात्र समझा है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हीगल के आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

Describe the main principles of idealism of Hegel.

उत्तर

आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धान्त
(Main Principles of Idealism)

19वीं और 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध की राजनीतिक विचारधारा में आदर्शवाद का बहुत अधिक प्रभाव रहा है। राज्य के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण के आधार पर आदर्शवाद के 'उग्रवादी आदर्शवाद' और 'उदारवादी आदर्शवाद' इस प्रकार के दो पक्ष रहे हैं। आदर्शवाद के इन दो पक्षों के विचारों में कुछ भेद होते हुए भी उनकी मूल विचारधारा एक ही है और आदर्शवाद विचारधारा के मूल सिद्धान्तों का संक्षिप्त उल्लेख अग्रलिखित रूपों में किया जा सकता है—

1. **राज्य एक नैतिक संस्था है**—आदर्शवादी राज्य को प्रकृतिवादी तथा बुद्धिवादी विचारकों की भाँति, भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र न मानकर उसका अस्तित्त्व एक नैतिक संस्था के रूप में मानते हैं। जिस प्रकार समाज में परिवार, मन्दिर आदि संस्थाएँ व्यक्ति को नैतिक दृष्टि से पूर्ण बनाने का प्रयत्न करती हैं, उसी प्रकार राज्य का भी यह कर्त्तव्य है कि वह व्यक्ति को सामाजिक जीवन तथा कार्य व्यापार में उपयुक्त स्थान प्रदान करे और इसे इस योग्य बनाये कि वह अपनी सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित कर्त्तव्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सके। आदर्शवादियों का विचार है कि 'राज्य हमारे नैतिक विचार का ही प्रत्यक्षीकरण' (Realisation of Moral Idea) है और राज्य की सदस्यता अनैतिक एवं मूर्ख मानव को नैतिक, योग्य तथा विवेकशील बनाती है।
2. **राज्य साध्य है, साधन नहीं**—व्यक्तिवाद, समाजवाद और दूसरी अन्य विचारधाराएँ राज्य को व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के विकास का एक साधन मात्र बनाती हैं, परन्तु आदर्शवादी राज्य को साध्य मानते हैं। आदर्शवादियों के अनुसार राज्य एक ऐसा साध्य है, जिसके विकास हेतु व्यक्ति को अपना बलिदान करके भी प्रयत्नशील रहना चाहिए। राज्य की तुलना में व्यक्ति की कोई सत्ता नहीं है, व्यक्ति तो राज्य रूपी ध्येय के साधन मात्र हैं, अत: उनके द्वारा पूर्ण रूप से राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में बार्कर ने लिखा है, 'आदर्शवादी साधारणतया अपनी विचारधारा का केन्द्र व्यक्ति के स्थान पर राज्य को बनाते हैं। वास्तव में उनकी विचारधारा का प्रारम्भ ही केन्द्रीय सामाजिक व्यवस्था से होता है जिसमें व्यक्ति को अपना निर्दिष्ट स्थान खोज लेना चाहिए अर्थात् उनके अनुसार समाज व्यक्ति के लिए नहीं है।''
3. **राज्य का अपना लक्ष्य तथा व्यक्तित्त्व**—आदर्शवाद के अनुसार राज्य का अपना पृथक् व्यक्तित्त्व तथा इच्छा होती है। राज्य की यह इच्छा व्यक्ति की व्यक्तिगत व सामूहिक इच्छा से पृथक और उच्चतर होती है। राज्य व्यक्तियों का समुदाय मात्र नहीं होता, वरन् उसकी सत्ता उन व्यक्तियों की समष्टि से भिन्न तथा उच्चतर होती है, जिनसे वह बनता है। फिक्टे (Fichte) ने लिखा है कि 'जिस प्रकार एक तैल चित्र तेल कणों का केवल समूह ही नहीं, वरन् उससे अधिक है। जिस प्रकार एक पत्थर की मूर्ति संगमरमर के कणों का समूह मात्र नहीं है, जिस प्रकार एक मनुष्य घटकों तथा रक्त धमनियों का समूह मात्र न होकर उससे अधिक है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्र व्यक्तियों का समूह मात्र न होकर उससे अधिक है।''
4. **राज्य सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है**—रूसो का सामान्य इच्छा का सिद्धान्त आदर्शवादी दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। इस विचारधारा के अनुसार रूसो की सामान्य इच्छा, जो सदैव नि:स्वार्थ, स्थायी तथा लोकोपकारक होती है, राज्य के रूप में साकार अथवा मूर्तरूप ग्रहण करती है। इस सामान्य इच्छा में व्यक्तिगत इच्छाओं का उस सीमा तक प्रतिनिधित्व होता है, जिस सीमा तक व्यक्तिगत इच्छाएं सार्वजनिक हित से प्रेरित होती हैं। राज्य का कोई भी कार्य व्यक्ति की इच्छा के विपरीत नहीं होता, क्योंकि राज्य उस सामान्य इच्छा के अनुकूल कार्य करता है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति की 'आदर्श इच्छा' (Real Will) भी सम्मिलित होती है। सामान्य इच्छा का प्रतिनिधि होने के कारण राज्य के सभी कार्य आवश्यक रूप से उचित, विवेकपूर्ण तथा नैतिकतापूर्ण होते हैं।
5. **राज्य आन्तरिक और बाह्य दृष्टि से सर्वशक्तिमान है**—आदर्शवाद के अनुसार राज्य सर्वशक्तिमान, अजर, अमर, सर्वाधिकारसम्पन्न तथा नैतिकता का संरक्षक है। अत: व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह राज्य के समस्त आदेशों और कानूनों

TOUCH 'n PASS

का पालन करे। राजसत्ता किसके हाथ में है, इसका व्यक्ति के लिए कोई महत्त्व नहीं होना चाहिए। उसका प्रयोग चाहे कोई निरंकुश राजा करे या कोई विशेष श्रेणी, व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह राजाज्ञा का पूर्णत: पालन करे। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी राज्य की शक्ति असीम है और अन्तर्राष्ट्रीय कानून को भी राज्य की कार्य-नीति नियन्त्रित करने का कोई अधिकार नहीं है। राज्य अपने उत्कर्ष के लिए अपनी इच्छानुसार किन्हीं भी साधनों का प्रयोग कर सकता है। उग्र आदर्शवादियों के अनुसार तो यह युद्ध भी कोई बुरी बात न होकर एक अनिवार्य वस्तु और राज्य के उत्कर्ष का एक उपयोगी साधन है। इस प्रकार हीगल जैसे आदर्शवादी राज्य को उपासना की श्रेणी में प्रतिष्ठित करते हुए लिखते हैं कि 'राज्य पृथ्वी पर परमेश्वर की अवतारणा है। यह पृथ्वी पर विद्यमान एक दैवीय विचार है।"

6. **राज्य का आधार बल नहीं, इच्छा है**—आदर्शवाद के अनुसार राज्य का आधार शक्ति या बल नहीं, वरन् इच्छा है। व्यक्ति राज्य के कानूनों का पालन इसलिए नहीं करते कि राज्य उन्हें बलपूर्वक मनवाता या मनवा सकता है, वरन् इसलिए करते हैं कि वास्तव में राज्यशक्ति, राज्य के कानून व उसके आदेश उस सामान्य इच्छा के मूर्त रूप होते हैं, जिसमें व्यक्ति की अपनी औचित्यपूर्ण इच्छा भी सम्मिलित होती है। इस प्रकार राज्य के कानूनों व आदेशों का पालन करते समय हम अपनी ही सद्इच्छा का पालन कर रहे होते हैं। ग्रीन के अनुसार यदि राज्य भय उत्पन्न करके अपनी आज्ञाओं का पालन कराता है, तो वह राज्य कभी भी स्थायी नहीं हो सकता।
7. **मानव स्वतन्त्रता राज्य के आज्ञापालन में ही निहित है**—आदर्शवादी राजकीय बन्धनों के अभाव को स्वतन्त्रता नहीं समझते और इस सम्बन्ध में उनका विचार है कि जिस प्रकार कुरूपता के अभाव का अर्थ सुन्दरता नहीं है, उसी प्रकार बन्धनों के अभाव का अर्थ स्वतन्त्रता नहीं है। ये सकारात्मक स्वतन्त्रता के उपासक हैं और उनका विचार है कि वास्तविक स्वतन्त्रता राजकीय बन्धनों के आधार पर ही प्राप्त की जा सकती है। स्वतन्त्रता का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के विकास के लिए अधिकाधिक अवसर प्रदान करना है और ये अवसर राज्य के द्वारा ही प्रदान किये जा सकते हैं। अत: मानव की वास्तविक स्वतन्त्रता राज्य की आज्ञापालन में ही निहित है। बन्धनों के अभाव में तो स्वतन्त्रता केवल शक्तिशाली व्यक्तियों का विशेषाधिकार मात्र बनकर रह जाती है। स्वतन्त्रता की राज्य पर निर्भरता के सम्बन्ध में आदर्शवादी दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए प्रो. बार्कर अपनी तार्किक शैली में लिखते हैं कि 'मानवीय चेतना स्वतन्त्रता को जन्म देती है, स्वतन्त्रता में अधिकार का भाव निहित है और अधिकार (अपनी रक्षा हेतु) राज्य की मांग करते हैं।"
8. **राज्य अधिकारों का जन्मदाता है**—आदर्शवादी, व्यक्तिवादियों या अनुबन्धवादियों की भाँति राज्य से पूर्व प्राकृतिक अधिकारों के अस्तित्त्व को स्वीकार नहीं करते हैं। वे अधिकारों को मानव जीवन की ऐसी बाह्य परिस्थितियाँ मानते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति का आन्तरिक विकास सम्भावित होता है और राज्य ही एक मात्र ऐसी संस्था है जो व्यक्ति के आन्तरिक विकास हेतु आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकती है। आदर्शवादी राज्य को ही अधिकारों का जन्मदाता और नैतिक अभिभावक मानते हैं तथा उनका विश्वास राज्य के द्वारा ही उनके अधिकारों के संरक्षण में है।
9. **व्यक्ति और राज्य में कोई विरोध नहीं**—आदर्शवादी व्यक्ति और राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय पर सावयव सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं और उनका विचार है कि जिस प्रकार अंग और शरीर के हितों में कोई विरोध नहीं होता, उसी प्रकार व्यक्ति और राज्य में भी विरोध सम्भव नहीं है। आदर्शवाद के अनुसार व्यक्ति के वास्तविक हित वही हैं जिन्हें राज्य द्वारा उनका हित समझा जाय। व्यक्ति व राज्य के हितों में विरोध केवल भ्रमवश ही हो सकता है और ऐसी स्थिति में जब कभी भी व्यक्ति और राज्य के हित परस्पर विरोधी रूप में उपस्थित हों तो राज्य के हितों को उत्कृष्ट व महत्त्वपूर्ण समझते हुए प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
10. **राजनीतिक और नैतिक कर्त्तव्यों में कोई अन्तर नहीं**—आदर्शवादी राजनीतिक और नैतिक कर्त्तव्यों में कोई अन्तर नहीं मानते हैं। काण्ट (Kant) के अनुसार कर्त्तव्य का सम्बन्ध मानव की आन्तरिक चेतना से है और राज्य मानव की आन्तरिक चेतना की ही व्यापक अभिव्यक्ति है, अत: राज्य के प्रति हमारे प्रत्येक कर्त्तव्य का नैतिक होना आवश्यक है। जो वस्तु नैतिक रूप से गलत है, वह कभी भी कानूनी रूप से सत्य नहीं हो सकती है।

प्र.2. हीगल का शासन सम्बन्धी सिद्धान्त क्या है? हीगल के दर्शन की आलोचना किन बिन्दुओं के आधार पर की जाती है? राजनीतिक चिन्तन में हीगल के योगदान का भी उल्लेख कीजिए।

What is Hegel's principle of governance? On the basis of what points is Hegel's philosophy criticized? Also, mention the contribution of Hegel in political thought.

TOUCH 'n' PASS

उत्तर

हीगल का शासन सम्बन्धी सिद्धान्त
(Hegel's Principle of Governance)

शासन व्यवस्था के क्षेत्र में हीगल लोकतन्त्र का विरोधी और राजतन्त्र का समर्थक था। अपनी द्वन्द्वात्मक पद्धति के आधार पर बताता है कि निरंकुशतन्त्र (वाद), प्रजातन्त्र (प्रतिवाद) और दोनों के द्वन्द्व व सत्यांशों को मिलाकर 'संवैधानिक राजतन्त्र' (समवाद) बनता है, जो प्रथम दो शासन व्यवस्थाओं से अधिक विकसित और पूर्ण है।

इस प्रकार शासन व्यवस्था के क्षेत्र में हीगल का आदर्श 'संवैधानिक राजतन्त्र' है, किन्तु हीगल का आदर्श इंग्लैण्ड का राजतन्त्र होने के स्थान पर एशिया का राजतन्त्र था, जिसमें राजा मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार तो कार्य करता था, किन्तु मन्त्रियों की नियुक्ति और पदच्युति राजा की इच्छा पर निर्भर करती थी, व्यवस्थापिका में बहुमत पर नहीं। इसके अतिरिक्त हीगल के संवैधानिक राजतन्त्र में राजा को प्रशासकीय वित्तीय तथा विधायी शक्तियाँ प्राप्त थीं।

हीगल सरकार के परम्परागत तीन अंगों—व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के स्थान पर तीन अंग-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और राजपद—बताता है। न्यायपालिका को वह कार्यपालिका का ही अंग मानता है और राजा के पद को वह राज्य की सर्वोच्च संस्था तथा व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में समन्वय स्थापित करने वाली इकाई के रूप में देखता है।

हीगल कार्यपालिका की तुलना में व्यवस्थापिका को बहुत कम महत्त्व प्रदान करता है, क्योंकि शासन संचालन की मुख्य शक्ति उसी के हाथों में केन्द्रित होती है। वह व्यवस्थापिका को कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने की कोई शक्ति प्रदान नहीं करता है। इस प्रसंग में उसकी मान्यता थी कि, 'राज्य के संगठन और आवश्यकताओं को समझने में उच्चतम सरकारी अधिकारियों में अधिक गम्भीर और व्यापक दृष्टि होती है।' अत: वे व्यवस्थापिका की सहायता के बिना भी अच्छी तरह से शासन का संचालन करने में समर्थ होते हैं। इसलिए सामान्य रूप से कानून निर्माण का कार्य राज्य कर्मचारियों के हाथ में ही केन्द्रित होना चाहिए। उसके अनुसार, इस दृष्टि से व्यवस्थापिका को निम्नलिखित दो कार्य करने चाहिए। पहला, राज्य कर्मचारियों के सम्मुख समाज की ऐसी माँगों को प्रस्तुत करना जो उनकी दृष्टि में न आयें और दूसरा, शासन की जनता द्वारा की जाने वाली आलोचनाओं की ओर राज्य कर्मचारियों का ध्यान आकर्षित करना। इन दो कार्यों के अतिरिक्त अन्य सभी कार्य राज्य कर्मचारियों के करने के लिए छोड़ दिए जाने चाहिए।

हीगल के द्वारा द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की कल्पना की गई है, जिसका प्रथम सदन तो ब्रिटिश लार्ड सभा की भाँति कुलीनतन्त्रीय है और द्वितीय सदन निर्वाचित । उसका विचार था कि मताधिकार बहुत-थोड़े से ही शिक्षित और धनी व्यक्तियों को मिलना चाहिए तथा वह प्रादेशिक प्रतिनिधित्व के विरुद्ध था। प्रतिनिधित्व का सही आधार वह विभिन्न व्यवसायों को मानता था और उसके अनुसार व्यवस्थापिका में विभिन्न वर्गों और नियमों के प्रतिनिधि होने चाहिए। लंकास्टर के अनुसार हीगल की यह व्यवस्था मध्ययुगीन ब्रिटिश संसद की व्यवस्था से मिलती-जुलती है। मध्य युग में ब्रिटिश संसद के उच्च सदन लार्ड सभा (House of Lords) में बड़े भूमिपति और पादरी सदस्य होते थे तथा निम्न सदन 'हाउस ऑफ कॉमन्स' में नगरों के व्यापारी, अन्य नगरवासी और जिलों तथा देहातों में रहने वाले 'नाइट' (Knight) शामिल होते थे। हीगल द्वारा प्रस्तावित इस शासन व्यवस्था को बाद में उसके मानस पुत्र इटली के तानाशाह मुसोलिनी द्वारा अपने फासीवादी राज्य की रचना में प्रयुक्त किया गया था।

वास्तव में, हीगल का शासन सिद्धान्त लोकतन्त्र से बहुत दूर था। वह पूर्णत: सत्तावादी शासन में ही विश्वास करता था।

हीगल के दर्शन की आलोचना
(Criticism of Hegel's Philosophy)

हीगल द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त विचारों की कड़ी आलोचना की गयी है। इस आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं—

1. **हीगल एक सर्वशक्तिमान व निरंकुश राज्य का उपासक है**—हीगल सर्वाधिकारवादी राज्य की धारणा में विश्वास रखने वाला उग्र राष्ट्रवादी है जो व्यक्ति तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता को बिल्कुल तुच्छ मानकर उन्हें राज्य की वेदी पर बलिदान कर देता है। उसके राज्य के सिद्धान्त से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि व्यक्ति को राज्य की आलोचना करने, उसका विरोध करने अथवा उसकी अवज्ञा करने का कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है। बार्कर के अनुसार, 'हीगल ने राष्ट्रीय राज्य को एक रहस्यात्मक स्तर तक पहुँचा दिया है।'' ब्राउन के शब्दों में, 'व्यावहारिक दृष्टि से हीगल के सिद्धान्त का अर्थ है आत्मिक दासता, शारीरिक अधीनता, अनिवार्य सैनिक भर्ती, राष्ट्रीय हितों के लिए युद्ध, शान्तिकाल में मनुष्यों द्वारा राज्य रूपी लेवायथन दैत्य की सेवा और युद्धकाल में मोलोक दैत्य की उपासना।''

आलोचकों के अनुसार हीगल के इन विचारों ने ही बीसवीं सदी को दो सर्वाधिकारवादी विचारधाराओं—फासीवाद और साम्यवाद को जन्म दिया। एबेन्स्टाइन ने लिखा है कि 'यद्यपि उसने अपने राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन बड़ी शब्दाम्बरपूर्ण दार्शनिक परिभाषाओं में किया है, किन्तु उसमें फासीवाद के सभी तत्त्व मिलते हैं।'

2. **हीगल राज्य और समाज में अन्तर नहीं करता**—राज्य और समाज में अन्योन्याश्रितता का सम्बन्ध होते हुए भी ये दो भिन्न इकाइयाँ हैं। लेकिन हीगल का उद्देश्य राज्य की निरंकुशता का प्रतिपादन करना था और इसलिए वह राज्य और समाज को एक मान बैठा है जो बहुत बड़ी भूल है।
3. **हीगल द्वारा प्रतिपादित स्वतन्त्रता वस्तुतः परतन्त्रता है**—हीगल के अनुसार, स्वतन्त्रता का अर्थ यह है कि व्यक्ति स्वेच्छा से राज्य के आदेशों का पालन करें। दूसरे शब्दों के हीगल का आशय है कि व्यक्ति राज्य के पराधीन रहकर ही सच्ची स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता है। वस्तुस्थिति यह है कि राज्य के प्रत्येक आदेश विवेकपूर्ण नहीं होता और इस कारण हीगल की यह स्वतन्त्रता वास्तविक रूप में परतन्त्रता का रूप ग्रहण कर लेती है। वेपर के अनुसार, 'हीगल के सिद्धान्त में स्वतन्त्रता आज्ञाकारिता हो गयी है, समानता अनुशासन बन गयी है और व्यक्तित्त्व राज्य बन गया है।'
4. **हीगल के युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचार भयंकर हैं**—हीगल ने युद्ध को राज्य की सर्वशक्तिशालिता का परिचय देने और मानव सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक माना है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून और नैतिकता की उपेक्षा का उपदेश देने के कारण उसका दर्शन मृत्यु, संहार तथा विनाश का सन्देश वाहक बन गया है।
5. **हीगल का दर्शन अत्यधिक बुद्धिवादी और रूढ़िवादी है**—हीगल एक निराश दार्शनिक है और अनुभवशून्य दार्शनिक होने के कारण वह मान बैठा है कि 'विवेकशीलता ही वास्तविकता है और वास्तविकता सदैव विवेकपूर्ण होती है।'' अति दार्शनिकता के कारण उसका दर्शन एक कल्पना-मात्र बनकर रह गया है।

   हीगल की विचारधारा अत्यधिक रूढ़िवादी भी है। इतने गम्भीर तथा व्यापक राजनीति दर्शन की व्याख्या करने के उपरान्त हीगल ने यही अन्तिम निर्णय निकाला कि तत्त्कालीन जर्मन व्यवस्था ही सर्वोत्कृष्ट तथा आदर्श है। इसके अतिरिक्त हीगल के विश्व के विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया राज्य पर आकर रुक जाती है, जिसे वह सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन का सर्वोच्च तथा सबसे अधिक पूर्ण रूप समझता है।
6. **हीगल का आदर्शवाद क्रूरतावाद या पशुवाद है**—तत्त्कालीन जर्मन व्यवस्था को ही आदर्श मान लेने के कारण हीगल के आदर्शवाद को क्रूरतावाद या पशुवाद कहा जाता है। वास्तव में तत्त्कालीन व्यवस्था की प्रशंसा करने के आवेश में हीगल कुछ इतनी अधिक सीमाएँ लांघ गया प्रतीत होता है कि आलोचकों के मत में 'वह बर्बरता को इसलिए दैवीय रूप दे देता है क्योंकि वह सफल हो गई है।'
7. **हीगल के दर्शन ने राष्ट्रीय और जातीय अहंकार को अनुचित प्रोत्साहन दिया है**—हीगल ने तत्त्कालीन राज व्यवस्था को आदर्श घोषित कर उसे 'विश्वात्मा की अभिव्यक्ति का माध्यम' बताया है। हीगल की इस धारणा ने जर्मन जनता में राष्ट्रीय एवं जातीय अहंकार की भावना का विकास किया और वह अपनी सर्वोच्चता तथा श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए युद्धोन्मादी होकर निरंकुश एवं बर्बर हो गई। हीगल ने जिस राष्ट्रीय और जातीय अहंकार को जन्म दिया, उसके कुपरिणाम समस्त विश्व ने भुगते हैं। हीगल का दर्शन राष्ट्रीय और जातीय अहंकार को जिस प्रकार से प्रेरित करता है, उससे यही स्पष्ट होता है कि उसमें 'चिन्तक के लिए आवश्यक व्यापक दृष्टिकोण की कहीं भारी कमी थी।'
8. **राष्ट्रीय राज्य राजनीतिक विकास का अन्तिम चरण नहीं है**—हीगल की मान्यता यह है कि राष्ट्रीय राज्य के उदय के साथ राज्य के विकास का अन्त हो जाता है अर्थात् राष्ट्रीय राजनीतिक विकास का अन्तिम चरण है। उसकी यह धारणा ऐतिहासिक दृष्टि और राजनीतिक आदर्श की दृष्टि से पूर्णतया गलत है। आज सर्वत्र ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है जो इन राष्ट्रीय राज्यों को नियन्त्रित कर सके। राजनीतिक चिन्तन में हमारा आदर्श 'विश्व राज्य' होना चाहिए, 'राष्ट्रीय राज्य' नहीं।

   हीगल की आलोचना करते हुए हॉबहाऊस ने कहा है, 'हीगल ने राज्य की जो गौरव गाथा गायी है उसे एक आध्यात्मवादी विचार तरंग मान लेना भूल है। उसके मिथ्या एवं भयानक सिद्धान्त ने, जिसके अनुसार ईश्वरीय राज्य की कल्पना की गई है उन्नीसवीं सदी के 'बुद्धिवादी प्रजातान्त्रिक मानवतावाद' (Rational Democratic Humanitarianism) के सबसे भयानक विरोध के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।'

TOUCH 'n PASS

राजनीतिक चिन्तन में हीगल का योगदान
(Hegel's Contribution of Political Thought)

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी हीगल की राजनीतिक चिन्तन को कुछ विशिष्ट देन है जिसके कारण उसका नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

उसकी सर्वप्रथम देन द्वन्द्वात्मक पद्धति है। 'द्वन्द्वात्मक पद्धति के रूप में उसने विश्व में होने वाले महान परिवर्तनों को समझने के लिए एक नवीन दार्शनिक साधन प्रस्तुत किया है। वास्तव में ऐतिहासिक प्रणाली को भली-भाँति समझने वाला यह प्रथम विचारक है। हीगल की यह पद्धति आगे चलकर बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुई।

उसकी दूसरी महत्त्वपूर्ण देन राष्ट्रीय राज्य का विचार है। उसे राष्ट्रीयता का अग्रदूत, व्याख्याता और प्रबल प्रचारक कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में हैलोवेल ने लिखा है, 'हीगल की अपेक्षा किसी अन्य व्यक्ति ने राष्ट्रीयता का अधिक उदात्त रूप में वर्णन नहीं किया है।'' मैक्सी लिखते हैं, 'वर्तमान युग में पाये जाने वाले राष्ट्रीयता के अति उत्कृष्ट सिद्धान्तों का पोषण हीगल के विचारों से ही हुआ है।

उसकी तीसरी देन राजनीतिक क्षेत्र में इस सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करना है कि राज्य व्यक्ति की उन्नति के लिए आवश्यक है और व्यक्ति राज्य का ही एक अनिवार्य अंग है। इस प्रकार उसने व्यक्ति और राज्य के बीच आंगिक एकता पर बल दिया है। व्यक्ति और राज्य के सम्बन्धों के सन्दर्भ में हीगल द्वारा प्रतिपादित यह विचार लगभग सर्वमान्य है।

चौथी देन राजनीति तथा नीतिशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्ध को सबसे अधिक स्पष्ट रूप से समझकर प्रतिपादित करना है। वेपर के शब्दों में, 'हीगल ने राजनीति को विभिन्न हितों के समन्वय से ऊँचा उठाया, उसने कानून को कोरी आज्ञा से अधिक उत्कृष्ट वस्तु बनाया। उसका यह सिद्धान्त कम महत्त्व नहीं रखता है कि राज्य को शान्ति बनाये रखने से, पुलिस का कार्य करने वाले संगठन से अधिक उच्च तथा मनुष्य के नैतिक विकास का साधन समझा जाना चाहिए।'

विश्व की क्रियात्मक राजनीति पर जितना गहरा प्रभाव हीगल का पड़ा है, उतना बहुत ही कम दार्शनिकों का पड़ा है। उसके सिद्धान्तों ने विभक्त और पराधीन जर्मन राज्यों में एकता और राष्ट्रीयता की अभूतपूर्व भावना उत्पन्न की। मैक्गवर्न के अनुसार, 'बिस्मार्क का प्रेरणा स्रोत हीगल था।'' इसके अतिरिक्त अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में भी हीगल के दर्शन का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। उदार आदर्शवाद, साम्यवाद तथा फासीवाद सभी ने किसी न किसी रूप में उससे प्रेरणा ली है। बर्ट्रेण्ड रसेल ने हीगल का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, '19वीं सदी के अन्त में अमेरिका में तथा ग्रेट ब्रिटेन में सभी प्रमुख दार्शनिक हीगल के अनुयायी थे। सामाजिक और राजनीतिक दर्शन पर हीगल के प्रभाव का उल्लेख करते हुए सेबाइन लिखते हैं, 'हीगल के दर्शन को कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान कहकर तिरस्कृत कर देना आसान है, तथापि वह एक ऐसा बीज था जिसने अच्छाई और बुराई दोनों ही दिशाओं में आगे चलकर 19वीं सदी के सामाजिक दर्शन के प्रत्येक पक्ष पर भारी प्रभाव डाला।'

प्र.3. मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताएँ बताइए तथा इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

What do you understand by dialectical materialism of Marx? State its features and critically evaluate it.

उत्तर

मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
(Dialectical Materialism of Marx)

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मार्क्स के विचारों का मूल आधार है। उसके अनुसार विश्व की सभी समस्याओं के समाधान में यह हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दो शब्द हैं, इनमें प्रथम शब्द तो उस प्रक्रिया को स्पष्ट करता है, जिसके अनुसार सृष्टि का विकास हो रहा है और दूसरा तत्त्व सृष्टि के मूल तत्त्व को सूचित करता है।

द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया-मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक प्रणाली को हीगल से ग्रहण किया है। हीगल यह मानकर चलता है कि समाज की प्रगति प्रत्यक्ष रूप से न होकर एक टेढ़े-मेढ़े तरीके से हुई है जिसके तीन अंग हैं—वाद (Thesis), प्रतिवाद (Anti-thesis) और समवाद (Synthesis)। मार्क्स की द्वन्द्वात्मक पद्धति का आधार हीगल का यही द्वन्द्ववादी दर्शन है।

मार्क्स के अनुसार वाद समाज की एक साधारण स्थिति है, जिसमें कोई अन्तर्विरोध नहीं पाया जाता है। थोड़े समय बाद वाद से असन्तुष्ट होकर उसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप में प्रतिवाद उत्पन्न हो जाता है। यह निषेधात्मक स्थिति वाद की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील मानी जाती है। प्रतिवाद में अन्तर्विरोध चलता है अर्थात् प्रतिवाद का भी प्रतिवाद उत्पन्न होता है और दो प्रतिवादों के संयोग से समवाद (Synthesis) की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वाद, प्रतिवाद और समवाद की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

TOUCH 'n' PASS

द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को मार्क्स तथा उसके अनुयायियों ने गेहूँ के पौधे के दृष्टान्त से समझाया है। गेहूँ का एक दाना लीजिए। यह दाना वाद है। भूमि में बो देने के उपरान्त इसके विरुद्ध भूमि की प्रक्रिया आरम्भ होती है। यह गलकर या नष्ट होकर अंकुरित होता है और पौधा बनता है। यह पौधा विकास की दूसरी कड़ी अर्थात् प्रतिवाद है। तीसरी कड़ी पौधे में बाली का आना, इसके पकने पर गेहूँ के दाने का बनना तथा पौधे का सूखकर नष्ट होना है। तीसरी दशा समवाद या विपरिणाम (Negation of negation) है। आर्थिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के सन्दर्भ में इस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को इस प्रकार समझाया जा सकता है। पूँजीवाद या व्यक्तिगत सम्पत्ति की व्यवस्था वाद है जिसमें यह असंगति रहती है कि समाज शक्तिशाली व सर्वहारा लोगों के दो वर्गों में बंट जाता है। इस असंगति या दोष के कारण समाज में संघर्ष होता है तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति की सामाजिक व्यवस्था के प्रतिवादस्वरूप समाज के विकास की वह व्यवस्था आती है जिसे 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तन्त्र' (Dictatorship of the Proletariat) की अवस्था कहा जाता है। इन दोनों अवस्थाओं के समवादस्वरूप वह अवस्था आती है जिसे साम्यवाद की अवस्था कहा जाता है तथा जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्थान पर सार्वजनिक स्वामित्व की अवस्था होती है।

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक प्रणाली हीगल से ग्रहण की है परन्तु मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद हीगल के द्वन्द्व से बहुत अधिक भिन्न है। स्वयं मार्क्स के ही शब्दों में, 'मेरी द्वन्द्वात्मक पद्धति न केवल हीगलवादी पद्धति से भिन्न है वरन् वह उसके बिल्कुल विपरीत है। मैंने हीगल में द्वन्द्वात्मक तर्क अपने सिर के बल पर खड़ा पाया, मैंने उसे सीध कर पैरों के बल पर खड़ा कर दिया।''

हीगल और मार्क्स के द्वन्द्ववाद में प्रमुख अन्तर यह है कि हीगल एक आदर्शवादी था और वह विश्वात्मा या सूक्ष्मतम आत्मतत्त्व को समाज का नियामक कारण मानता था। हीगल की दृष्टि में इतिहास विश्वात्मा की क्रमिक अभिव्यक्ति है और वह भी एक दैवी आयोजन के द्वारा, जो सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त है। परन्तु मार्क्स ने हीगल के विश्वात्मा सिद्धान्त को काल्पनिक कहकर छोड़ दिया और उसके स्थान पर विशुद्ध भौतिक तत्त्व की महत्ता स्वीकार की, क्योंकि वह न केवल प्रत्यक्ष सत्य या वास्तविक ज्ञान है, वरन् सुस्पष्ट शाश्वत रूप भी है। मार्क्स का कहना है कि हम आत्म का अनुभव प्रत्यक्ष में नहीं कर सकते और इसलिए हमारे लिए उसका होना नहीं के बराबर है। परन्तु इसके विपरीत भौतिक पदार्थ; जैसे मिट्टी, पत्थर, हड्डी, माँस, आदि हमें प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं और हमारे लिए वे सर्वथा सत्य हैं। इस कारण निश्चित और स्पष्ट भौतिक वस्तुओं को छोड़कर आत्मा जैसी मृग मरीचिका को अपने दर्शन का आधार कैसे बनाये। ऐसे दर्शन में वास्तविकता नहीं हो सकती। इस प्रकार मार्क्स ने हीगल के विपरीत भौतिकवाद को अपने दर्शन का आधार बनाया। हीगल के मत में भौतिक वस्तुएँ: प्रकृति आदि, आत्मा के विकार अर्थात् उससे उत्पन्न हैं परन्तु मार्क्स के मत में, जिसे हम आत्मा, मन अथवा मस्तिष्क कहते हैं, वह उसी प्रकार भौतिक शरीर से उत्पन्न वस्तुएँ हैं, जैसे घड़ी के पुर्जों को एक निश्चित क्रम से संयुक्त कर देने पर उसमें गति उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार हीगल विचारों को प्रधान मानते हुए पदार्थ को विचारों का प्रतिबिम्ब मानता है किन्तु मार्क्स पदार्थ को प्रधान मानता है और उसका विचार है कि पदार्थ ही विचारों के स्रोत होते हैं। मार्क्स के ही शब्दों में, 'मानवीय चेतना उसके सामाजिक अस्तित्त्व का निर्धारण नहीं करती। इसके विपरीत उसका सामाजिक अस्तित्त्व उसकी चेतना का निर्धारण करता है।'

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएँ
(Features of Marx's Dialectical Materialism)

सोवियत रूस के भूतपूर्व (1924-53) सर्वेसर्वा जे. स्टालिन के द्वारा अपनी रचना 'Philosophy of Marxism' में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विस्तार के साथ विवेचना की गयी है। मार्क्स की विचारधारा के अध्ययन तथा स्टालिन की व्याख्या के आधार पर ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी जा सकती हैं—

1. द्वन्द्ववाद के अनुसार विश्व स्वतन्त्र और असम्बद्ध वस्तुओं का ढेर या संग्रह मात्र नहीं है, वरन् समग्र इकाई है, जिसकी समस्त वस्तुएँ सम्बद्ध और परस्पर निर्भर हैं। इसलिए हमारे द्वारा किसी वस्तु को दूसरी वस्तुओं के साथ उनके सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है।
2. द्वन्द्ववाद के अनुसार प्रकृति अस्थिर, गतिशील और निरन्तर परिवर्तनशील है। प्रकृति के अन्दर सदैव कुछ नयी चीजें उत्पन्न और विकसित होती तथा पुरानी चीजें नष्ट होती रहती हैं। अत: हमारे द्वारा विश्व तथा उसकी प्रकृति को समझने के लिए उसकी गतिशीलता को दृष्टि में रखना होगा।
3. द्वन्द्ववाद के अनुसार वस्तुओं में विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया सरल नहीं है। वे केवल अपनी दिशा में आगे नहीं बढ़तीं वरन् उनमें गुणात्मक परिवर्तन भी होता है, जिसके परिणामस्वरूप ये अपने पुराने गुण छोड़कर नवीन गुण धारण कर लेती हैं।

4. वस्तुओं में गुणात्मक परिवर्तन धीरे-धीरे न होकर शीघ्रता के साथ तथा अचानक होते हैं।
5. वस्तुओं में गुणात्मक परिवर्तन क्यों होते हैं, इसका उत्तर मार्क्स हीगल की विचारधारा के आधार पर ही देता है। उसके अनुसार वस्तुओं में शाश्वत अन्तर्विरोध पाया जाता है और वस्तुओं में निहित इन परस्पर विरोधी तत्त्वों के संघर्ष के फलस्वरूप ही वस्तु में गुणात्मक परिवर्तन होता है।
6. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्राकृतिक जगत की आर्थिक तत्त्वों के आधार पर व्याख्या करता है और पदार्थ को समस्त विश्व की नियन्त्रक शक्ति के रूप में स्वीकार करता है।

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना
(Criticism of Marx's Dialectical Materialism)

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रमुखतया निम्न प्रकार से आलोचनाएँ की गयी हैं—

1. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अत्यधिक अस्पष्ट**—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अपने आप नितान्त अस्पष्ट और थोथी दार्शनिक मान्यता है। मार्क्स ने इसका पूर्ण और आवश्यक विवेचन नहीं किया है। इस सम्बन्ध में वेपर का कथन है कि 'द्वन्द्ववाद की धारणा अत्यन्त गूढ़ और अस्पष्ट है। यद्यपि मार्क्स और ऐंजिल्स के समस्त लेखन का यह आधार है लेकिन इसे कहीं पर भी स्पष्ट नहीं किया गया।
2. **असंगतिपूर्ण धारणा**—मार्क्स की द्वन्द्ववादी धारणा असंगतिपूर्ण भी है। एक स्थान पर मार्क्स कहता है कि, 'व्यक्ति अपना इतिहास स्वयं बनाता है। इसके अतिरिक्त मजदूरों को जाग्रत करने के लिए उसके द्वारा जिस प्रकार से उद्बोधन दिया गया है, उससे भी यही स्पष्ट होता है कि उसे मानवीय चेतना और क्षमता में विश्वास है। लेकिन द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को अपनाते हुए उसके द्वारा वाद, प्रतिवाद और समवाद की पद्धति के आधार पर मानवीय इतिहास के भविष्यकालीन विकास को निर्धारित कर दिया गया है। असंगति यह है कि यदि मानव स्वयं इतिहास का निर्माता है तो भविष्यकालीन विकास को निर्धारित कैसे किया जा सकता है। ऐसे किसी यन्त्र का आविष्कार तो अभी तक नहीं हो पाया है, जो भविष्य में मानव मस्तिष्क की समस्त गति को निर्धारित कर सके।
3. **अत्यन्त भौतिकवादी दर्शन**—मार्क्स की विचारधारा अत्यधिक और अनावश्यक रूप से भौतिकवादी है। मार्क्स का विचार है कि मानवीय चेतना भौतिक तत्त्वों के अधीन होती है, मानव जीवन में भौतिक सन्तुष्टि ही मानसिक सन्तुष्टि की आधारशिला और मानव जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है। किन्तु मार्क्स द्वारा किया गया मानवीय प्रकृति का मूल्यांकन अत्यन्त संकुचित और त्रुटिपूर्ण है। केवल भौतिकवादी दर्शन के आधार पर एक आदर्शवादी दर्शन की सृष्टि की ही नहीं जा सकती। वस्तुत: मनुष्य में जो कुछ चेतना है, उसी का महत्त्व उसके क्रियाकलापों में अधिक दृष्टिगोचर होता है। संसार में सर्वत्र चेतना शक्ति द्वारा जड़ शक्ति के संचालन के उदाहरण देखे जाते हैं। वस्तुत: जड़ पदार्थ में स्वयंमेव कोई गति उत्पन्न ही नहीं हो सकती। यदि विवेकपूर्वक देखा जाए, तो मार्क्स जिस सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति का प्रतिपादन करता है, उसका प्रेरक तत्त्व भी श्रमिक वर्ग में उत्पन्न वह मानवीय चेतना ही होती है जो उनमें पूँजीपतियों के विरुद्ध उत्पन्न होती है।
4. **द्वन्द्वात्मक पद्धति दोषपूर्ण**—मार्क्स द्वारा अपनायी गयी द्वन्द्वात्मक पद्धति दोषपूर्ण भी है। इतिहास एक अविरल धारा है, जिसमें न तो हमें कोई अन्तिम अवस्था दिखाई देती है और न कोई क्रान्ति द्वारा हुए भिन्न-भिन्न परिवर्तनों की अवस्थाएँ। मार्क्स ने जो विभिन्न सामाजिक अवस्थाएँ बतायी हैं, वे किसी एक निर्दिष्ट समय पर अचानक नहीं आयीं। एक अवस्था दूसरी अवस्था में सैकड़ों वर्षों के पश्चात् परिवर्तित हुई है, इसलिए मार्क्स की वाद, प्रतिवाद और समवाद की दशाएँ केवल कल्पना मात्र हैं।
5. **द्वन्द्वात्मक पद्धति खतरनाक**—द्वन्द्वात्मक पद्धति खतरनाक भी है, क्योंकि इसमें हम इस बात को मानकर चलते हैं कि मनुष्य बाहरी शक्तियों का अर्थात् आर्थिक शक्तियों का दास है और उसमें इतिहास के क्रम को बदलने की शक्ति नहीं है। यदि हम मार्क्स की विचार पद्धति को स्वीकार कर ले, तो मानवीय दर्शन और विचार में आदर्श और नए समाज की कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा। वास्तव में, मार्क्स ने हमें एक प्रकार के भाग्यवाद से निकालकर दूसरे प्रकार के भाग्यवाद का रास्ता बताने का कार्य किया है।
6. **मानवीय इतिहास उत्थान का ही लेखा नहीं**—द्वन्द्वात्मक पद्धति इस दृष्टि से भी दोषपूर्ण है कि इसके अन्तर्गत यह मान लिया जाता है कि इतिहास का क्रम सदैव उन्नति की ओर ही रहा है। वास्तव में, स्थिति ऐसी नहीं है। मानवीय इतिहास मात्र उत्थान का नहीं, वरन् उत्थान और पतन का इतिहास रहा है।

TOUCH 'n PASS

प्र.4. कार्ल मार्क्स की विचारधारा में इतिहास की आर्थिक व्याख्या का वर्णन कीजिए तथा इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर

कार्ल मार्क्स की इतिहास की आर्थिक व्याख्या
(Karl Marx's Economic Interpretation of History)

मार्क्स की विचारधारा के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की भांति ही 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' या 'आर्थिक नियतिवाद' का सिद्धान्त भी महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त को सामयिक विकास के सम्बन्ध में प्रयुक्त करना इतिहास की आर्थिक व्याख्या है। मार्क्स उन इतिहासकारों से सहमत नहीं है जिन्होंने इतिहास को कुछ विशेष और महान् व्यक्तियों के कार्यों का परिणाम मात्र समझा है। मार्क्स के विचार में इतिहास की सभी घटनाएँ आर्थिक अवस्था में होने वाले परिवर्तनों का परिणाम मात्र हैं और किसी भी राजनीतिक संगठन अथवा उसकी न्याय व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके आर्थिक ढाँचे का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। मानवीय क्रियाएँ नैतिकता, धर्म या राष्ट्रीयता से नहीं, वरन् केवल आर्थिक तत्त्वों से प्रभावित होती हैं। स्वयं मार्क्स के शब्दों में, 'सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक सम्बन्ध, सभी धार्मिक तथा कानूनी पद्धतियाँ, सभी बौद्धिक दृष्टिकोण जो इतिहास के विकास-क्रम में जन्म लेते हैं वे सब जीवन की भौतिक अवस्थाओं से उत्पन्न होते हैं।'

अपने विचार-क्रम को स्पष्ट करते हुए मार्क्स कहता है कि उत्पत्ति के सिद्धान्त का निरन्तर विकास होता रहता है। वे गतिमान और परिवर्तनशील हैं और उनकी परिवर्तनशीलता का ही यह परिणाम होता है कि हमारे जीवनयापन के ढंग में परिवर्तन होता रहता है। मार्क्स ने अपनी इस आर्थिक व्याख्या के आधार पर अब तक की और भावी मानवीय इतिहास की 6 अवस्थाएँ बतायी हैं। इनमें से प्रथम चार अवस्थाओं से समाज गुजर चुका है और शेष दो अवस्थाएँ अब आनी हैं। मानवीय इतिहास की ये 6 अवस्थाएँ निम्न प्रकार हैं—

आदिम साम्यवादी अवस्था—सामाजिक विकास की इस पहली अवस्था में उत्पादन के तरीके बहुत सरल थे। पत्थर के औजार और धनुष-बाण उत्पादन के मुख्य साधन थे और शिकार करना, मछली मारना तथा वनों से कन्द-मूल एकत्रित करना उनका मुख्य व्यवसाय था। भोजन प्राप्त करने और जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिए सामूहिक शक्ति जरूरी भी थी। इसलिए मनुष्य झुण्ड बनाकर साथ-साथ रहते थे। इस अवस्था में उत्पादन के साधन समस्त समाज की सामूहिक सम्पत्ति हुआ करते थे। इस अवस्था में न निजी सम्पत्ति थी, न विवाह प्रथा और न परिवार। सब समान थे, कोई किसी का शोषण करने की स्थिति में नहीं था, इसलिए मार्क्स के द्वारा इसे 'साम्यवादी अवस्था' कहा गया है।

दास अवस्था—धीरे-धीरे भौतिक परिस्थिति में परिवर्तन हुआ। अब व्यक्ति खेती और पशु-पालन करने लगे और दस्तकारियों का उदय हुआ। इससे समाज में निजी सम्पत्ति के विचार का उदय हुआ और श्रम-विभाजन भी उठ खड़ा हुआ। जिन व्यक्तियों के द्वारा उत्पादनों के साधनों (भूमि आदि) पर अधिकार कर लिया गया, वे दूसरे व्यक्तियों को अपना दास बनाकर उनसे बलपूर्वक काम कराने लगे। इस प्रकार आदिम समाज की स्वतन्त्रता और समानता समाप्त हो गयी, समाज स्वामी और दास के दो अलग-अलग वर्गों में विभाजित हो गया और शोषण प्रारम्भ हुआ। आर्थिक क्षेत्र में, इस अवस्था के अनुरूप ही राजनीतिक संगठन स्थापित हुए और दर्शन तथा साहित्य की रचना हुई।

सामन्ती अवस्था—अब उत्पादन के साधनों में और उन्नति हुई। लोहे के हल और करघे आदि का चलन हुआ और कृषि, बागवानी तथा कपड़ा बनाने के उद्योगों का विकास हुआ। उत्पादन के इन साधनों के सफल प्रयोग के लिए जरूरी था कि श्रमिक अपना कार्य रुचि और योग्यता के साथ करें, अत: दास प्रथा के स्थान पर नवीन प्रकार के उत्पादन सम्बन्ध कायम हुए, जो सामन्ती व्यवस्था के नाम से जाने जाते हैं। इस सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत सामन्त समस्त भूमि आदि उत्पादन साधनों के स्वामी होते थे, किन्तु भूमि पर खेती और दस्तकारियों का कार्य किसान और श्रमिक करते थे। किसानों पर सामन्तों का नियन्त्रण दास प्रथा की तुलना में अपेक्षाकृत कम था, किन्तु इस अवस्था में भी शोषण इतना ही भयंकर था; जितना कि दास अवस्था में। इस अवस्था में शोषकों और शोषितों का संघर्ष निरन्तर चलता रहा।

पूँजीवादी अवस्था—अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक क्रान्ति हुई, जिसने उत्पादन के साधनों में आमूल परिवर्तन कर दिया। इस अवस्था में पूँजीपति उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है, लेकिन वस्तुओं के उत्पादन का कार्य श्रमिकों द्वारा किया जाता है। वस्तुओं का उत्पादन बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है और श्रमिक इस अर्थ में तो स्वतन्त्र होते हैं कि पूँजीपति उन्हें बेच और खरीद नहीं सकते। किन्तु श्रमिकों के पास उत्पादन न होने के कारण उनकी वास्तविक स्थिति दासों से अच्छी नहीं होती और वे पूँजीपतियों के भयंकर शोषण के शिकार होते हैं। इस शोषण के परिणामस्वरूप दो वर्गों (बुर्जुआ शोषक वर्ग और सर्वहारा शोषित वर्ग) के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर पूँजीवाद को समाप्त कर देती है।

मार्क्स का कथन है कि पूँजीवादी युग के उत्पादन सम्बन्धों के अनुरूप ही इस युग की राजनीतिक व्यवस्था, नैतिकता, कला, साहित्य और दर्शन होता है।

श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व की अवस्था—मार्क्स का विचार है कि पूँजीवादी अवस्था में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रतिक्रिया होगी और उसके परिणामस्वरूप ऐतिहासिक विकास की पाँचवीं अवस्था (श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व की अवस्था) आएगी। इस युग में श्रमिक वर्ग उत्पादन के समस्त साधनों पर अधिकार करके पूँजीवाद का अन्त कर देगा और श्रमिक वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित हो जाएगा। पूर्व अवस्थाओं और इस अवस्था में अन्तर केवल यह होगा कि दास अवस्था, सामन्तवादी अवस्था और पूँजीवादी अवस्था में तो अल्पमत वर्ग (उत्पादन साधनों का स्वामी वर्ग) बहुमत वाले श्रमिक वर्ग का शोषण करता है, लेकिन इस अवस्था में बहुमत श्रमिक वर्ग के द्वारा पूँजीवादी वर्ग के अवशेष तत्त्वों के विरुद्ध राज्य शक्ति का प्रयोग करके उसे पूर्णतया समाप्त कर दिया जाएगा।

साम्यवादी अवस्था—पूँजीवादी तत्त्वों के पूर्ण विनाश के पश्चात् मानवीय इतिहास की अन्तिम अवस्था (साम्यवादी अवस्था या राज्यविहीन और वर्गविहीन समाज की अवस्था) आएगी। मार्क्स द्वारा इस साम्यवादी अवस्था को विस्तार के साथ चित्रण न कर, उसके केवल दो लक्षण बताए गए हैं। प्रथमत:, यह समाज राज्यविहीन और वर्गविहीन होगा। इसके अन्तर्गत शोषक और शोषित इस प्रकार के दो वर्ग नहीं वरन् केवल एक वर्ग श्रमिकों का वर्ग होगा। राज्य एक वर्गीय संस्था है। अत: वर्गविहीन समाज में राज्य स्वत: ही लुप्त हो जाएगा। द्वितीयत:, इस समाज के अन्दर वितरण का सिद्धान्त होगा 'प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करे और उसे आवश्यकता के अनुसार प्राप्ति हो।' (From each according to his ability, to each according to his needs)।

इतिहास की आर्थिक व्याख्या के निष्कर्ष
(Conclusions of the Economic Interpretation of History)

मार्क्स द्वारा इतिहास की जो आर्थिक व्याख्या की गयी है, उसके प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

1. सामाजिक जीवन के परिवर्तन ईश्वर की इच्छा अथवा महापुरुषों के विचारों और कार्यों के परिणाम नहीं होते और न वे संयोगवश होते हैं। वे सामाजिक विकास के निश्चित नियम हैं।
2. प्रत्येक युग की समस्त सामाजिक अवस्था पर उसी वर्ग का आधिपत्य होता है, जिसे उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व प्राप्त हो।
3. समस्त सामाजिक व्यवस्था उत्पादन स्थिति और उत्पादन के साधनों पर निर्भर करती है। उत्पादन स्थिति में परिवर्तन हो जाने पर विद्यमान राज्य शोषक वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता और इसलिए राज्य की प्रकृति में ही परिवर्तन हो जाता है।
4. वर्ग-संघर्ष मानवीय इतिहास की कुंजी है और दास युग से लेकर श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व तक वर्ग-संघर्ष ने सामाजिक व्यवस्थाओं को परिवर्तित करने का कार्य किया है, लेकिन साम्यवादी युग में वर्गविहीन समाज की स्थापना से वर्ग संघर्ष की यह प्रक्रिया समाप्त हो जाती है।
5. मार्क्स अपनी इतिहास की आर्थिक अवस्था के आधार पर पूँजीवाद के अन्त और साम्यवाद के आगमन की अवश्यम्भावना व्यक्त करता है।

इतिहास की आर्थिक व्याख्या की आलोचना
(Criticism of the Economic Interpretation of History)

इसकी प्रमुख आलोचनाएँ निम्न प्रकार की जाती हैं—

1. **आर्थिक तत्त्व पर अत्यधिक और अनावश्यक बल**—आलोचकों के अनुसार मार्क्स ने समाज के राजनीतिक, सामाजिक और वैधानिक ढाँचे में आर्थिक तत्त्व को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है। यह सत्य है कि वर्तमान समय में आर्थिक तत्त्व अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है, लेकिन ऐसा होते हुए भी सामाजिक व्यवस्था केवल आर्थिक तत्त्व पर ही आधारित नहीं होती है। आर्थिक तत्त्व के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में अन्य तत्त्वों के द्वारा भी कार्य किया जाता है और सामाजिक जीवन को निर्धारित करने वाले इन दूसरे तत्त्वों में भौगोलिक तत्त्व, सामाजिक वातावरण, मानवीय विचारों और अनुभूतियों का नाम लिया जा सकता है। प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसेल के शब्दों में, 'राजनीतिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भौतिक स्थितियों और मानवीय भावनाओं की पारस्परिक क्रिया से निर्धारित होती हैं।

2. **आर्थिक आधार पर सभी ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या सम्भव नहीं**—प्रत्येक ऐतिहासिक घटना का आधार आर्थिक तत्त्व नहीं माना जा सकता और यह कहना उचित नहीं है कि प्रत्येक ऐतिहासिक संघर्ष उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था का परिणाम होता है। सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध का कारण आर्थिक साम्राज्यवाद अवश्य था, किन्तु इसमें राष्ट्रीय विचारों का संघर्ष भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। महाभारत का युद्ध आर्थिक तत्त्वों का परिणाम नहीं वरन् इसका मूल कारण द्रोपदी के वे व्यंगात्मक शब्द ही थे कि 'अन्धों का पुत्र एक सफेद चिकने संगमरमर के फर्श तथा पानी के गड्ढे में कोई अन्तर नहीं कर पाता।'' इसी प्रकार गौतम बुद्ध के संन्यास, मराठों के पतन, भारत के विभाजन, अरब-इजरायल युद्ध, मेवाड़ के युद्ध तथा पद्मिनी के जौहर और गुरु गोविन्दसिंह के दोनों बच्चों को दीवार में जिन्दा चिने जाने, आदि घटनाओं की आर्थिक व्याख्या नहीं की जा सकती। क्रिस्टोफर लॉयड के मतानुसार, 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या रोम के पतन और अभी-अभी हुए युद्धों के विस्फोट को नहीं समझ सकती। यह इतनी यान्त्रिक है कि मनोवैज्ञानिक आन्दोलनों तथा राष्ट्रीयता के विकास को नहीं समझा सकती। यह इतनी भौतिकवादी है कि इससे मस्तिष्क पर आदर्शों के प्रभाव को नहीं समझा जा सकता।'
3. **इतिहास के निर्धारण में संयोग के तत्त्व की उपेक्षा**—मार्क्स द्वारा प्रस्तुत इतिहास की आर्थिक व्याख्या में संयोग के तत्त्व को भुला दिया गया है जो मानवीय इतिहास के निर्धारण में सदैव ही एक मूल तत्त्व रहा है। यदि 1768 में कोर्सिका, जहाँ पर नैपोलियन महान् उत्पन्न हुआ था, फ्रांस के साथ न मिलाया गया होता, तो नैपोलियन इटली का नागरिक होता और न केवल फ्रांस वरन् समस्त यूरोप का इतिहास ही दूसरा होता। यदि 1917 में जर्मन सरकार ने लेनिन को रूस जाने की आज्ञा न दी होती, तो रूसी क्रान्ति का रूप कुछ और ही होता। यदि इंग्लैण्ड की रानी एलिजाबेथ प्रथम ने विवाह किया होता और उसके सन्तान हुई होती, तो इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड का एकीकरण नहीं हो सकता था। ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में पार्लियामेण्ट और केबीनेट जैसे महत्त्वपूर्ण संस्थाओं का विकास संयोग का ही परिणाम रहा है। संयोग के तत्त्व की उपेक्षा के कारण मार्क्स की व्याख्या को उचित नहीं कहा जा सकता है।
4. **मानवीय इतिहास के कालक्रम का निर्धारण सम्भव नहीं**—मार्क्स के द्वारा अपनी आर्थिक व्याख्या के अन्तर्गत इतिहास का काल-विभाजन कर दिया गया है। उसके अनुसार यह काल-विभाजन दास-युग, सामन्तवादी युग, पूँजीवादी-युग, सर्वहारा का अधिनायकत्व और फिर साम्यवादी युग-इस क्रम में है। इस प्रकार सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व पूँजीवाद के पूर्ण विकास के बाद आना चाहिए, किन्तु वस्तुत: ऐसा नहीं हुआ है। 1917 के पूर्व जार का रूस एक पूँजीवादी राज्य नहीं, वरन् पूर्णतया एक कृषि प्रधान राज्य था। इसी प्रकार चीन भी सर्वहारा क्रान्ति के पूर्व औद्योगिक दृष्टि से कोई विकसित देश नहीं था।
5. **राजनीतिक सत्ता का एकमात्र आधार आर्थिक सत्ता नहीं है**—मार्क्स का यह कथन भी सत्य नहीं है कि राजनीतिक सत्ता का उपभोग वही वर्ग करता है जिसके पास आर्थिक सत्ता होती है। इतिहास से यह बात स्पष्ट है कि शक्ति प्रदान करने का एकमात्र साधन आर्थिक नहीं होता। जहाँ प्राचीनकाल में भारत में ब्राह्मणों और मध्यकालीन यूरोप में पोप ने धार्मिक कारणों से शक्ति प्राप्त की थी, वहाँ वर्तमान युग में अधिनायकवाद की स्थापना मुख्यतया सैन्य शक्ति के आधार पर होती है। बुद्धिमत्ता, साहस, कपट आदि तत्त्व भी सत्ता प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। वेपर के अनुसार, 'मार्क्स की रचनाओं में कहीं भी इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया गया है कि मनुष्य अपने स्वाभिमान और आत्मसम्मान के तुष्टिकरण के लिए शक्ति की कामना करते हैं।'
6. **आर्थिक सम्बन्धों को राजनीतिक शक्ति द्वारा बदला जा सकता है**—मार्क्स के द्वारा इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि आर्थिक प्रणाली ही सदैव राजनीतिक और सामाजिक जीवन के सिद्धान्तों को जन्म देती है। लेकिन व्यवहार में अनेक बार इसके विपरीत बात देखी गयी है कि राजनीतिक सिद्धान्त आर्थिक प्रणाली को जन्म देते हैं। उदाहरण के लिए, 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड में 'यद्भाव्यम नीति' (Laissez faire) या व्यक्तिवादी विचारधारा का प्रतिपादन हुआ और इससे आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था को जन्म मिला। इसी प्रकार 1917 की क्रान्ति के बाद सोवियत संघ में साम्यवादी दर्शन के प्रभाव से नियन्त्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया। आज भी इंग्लैण्ड और भारत जैसे प्रजातान्त्रिक देशों के अन्तर्गत एक राजनीतिक दल के स्थान पर दूसरे राजनीतिक दल द्वारा सत्ता प्रदान करने से आर्थिक प्रणाली में थोड़े-बहुत परिवर्तन होते ही हैं। वास्तव में, राजनीतिक शक्ति द्वारा आर्थिक सम्बन्धों को बदला जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

इसका प्रमाण यह है कि आर्थिक विकास की दृष्टि से अमेरिका और सोवियत रूस समान स्तर पर रहे हैं, किन्तु राजनीतिक विचारधारा में भेद होने के कारण दोनों की व्यवस्था मूलत: भिन्न रहे है।

7. **इतिहास की धारा का राज्यविहीन समाज पर आकर रुकना सम्भव नहीं**—मार्क्स का विचार है कि इतिहास का विकास-क्रम राज्यविहीन समाज पर आकर रुक जाएगा। परन्तु प्रश्न है कि समाज की अन्तिम अवस्था साम्यवादी युग में क्या पदार्थ का अन्तर्निहित गुण 'गतिशीलता' समाप्त हो जाएगा। यदि गतिशीलता पदार्थ का स्वाभाविक गुण है तो उसमें उस समय भी परिवर्तन होगा, उत्पादन के साधन बदलेंगे। सामाजिक परिस्थितियाँ बदलेंगी, वर्गविहीन समाज का प्रतिवाद उत्पन्न होगा और फिर साम्यवाद समाप्त हो जाएगा। सत्य यह कि मार्क्स ने विश्व इतिहास का सीमित अध्ययन किया तथा सिद्धान्त निर्धारण में अनावश्यक जल्दबाजी की, अत: उसका सिद्धान्त अनेक दोषों से पूर्ण हो गया।

प्र.5. मार्क्सवादी पद्धति की आलोचना किन बिन्दुओं के आधार पर की जाती है? मार्क्स के योगदान पर भी प्रकाश डालिए।
On the basis of what points the Marxist method is criticized? Throw light on the contribution of Marx.

उत्तर

मार्क्सवादी पद्धति की आलोचना
(Criticism of Marxist Method)

मार्क्सवादी पद्धति की आलोचना निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर की जाती है—

हिंसा तथा रक्तपात का मार्ग अनुचित—मार्क्स अपने दर्शन में क्रान्तिकारी पद्धति पर ही अधिक जोर देता है, जिसे आलोचकों द्वारा अत्यधिक अनुचित कहा गया है। यह आवश्यक नहीं है कि क्रान्ति के मार्ग को अपनाने से वांछित लक्ष्य प्राप्त हो ही जाए। हिंसा को अपनाने का परिणाम असभ्यता और बर्बरता होता है और इस बर्बरता के आधार पर एक शान्तिपूर्ण, न्यायपूर्ण तथा व्यवस्थित समाज की स्थापना नहीं की जा सकती है। लास्की कहते हैं कि 'पूँजीवाद का अन्त साम्यवाद में न होकर ऐसी अराजकता में हो सकता है कि जिससे साम्यवादी आदर्शों से असम्बद्ध कोई निरंकुशवाद निकले।' पोपर का तो कहना है कि 'व्यावहारिक राजनीति के दृष्टिकोण से हिंसात्मक क्रान्ति की भविष्यवाणी मार्क्सवाद का सम्भवत: सबसे अधिक हानिकारक तत्त्व है।'

मार्क्स की धारणा यह है कि उचित माध्य की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के साधन अपनाए जा सकते हैं, किन्तु राजनीति को नैतिकता से पृथक् करने का यह विचार स्वयं साम्यवादी व्यवस्था के लिए अत्यधिक अनिष्टकर है। जोसेफ ई. डेवीज ने मार्क्स के विचारों की इस त्रुटि के सम्बन्ध में कहा है, 'यह एक गम्भीर और मूलभूत त्रुटि है, जिससे वर्तमान सरकार को सदैव ही भय बना रहेगा।''

पद्धति की दृष्टि से तो मार्क्स की विचारधारा निश्चित रूप से दोषपूर्ण है और इसकी तुलना में प्रजातान्त्रिक या विकासवादी समाजवाद का मार्ग निश्चित रूप से श्रेष्ठतर है। प्रो. जोड ठीक ही लिखते हैं कि 'यह सोचने का पर्याप्त आधार है कि मन्द गति से प्राप्त सुधारों की नीति जिसका प्रतिपादन विकासवादी समाजवादियों ने किया है, क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष की विधियों की अपेक्षा अधिक स्थायी और फलदायक है, भले ही वह उतनी विस्मयजनक न हो।

मार्क्सवादी कार्यक्रम—अपने लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात् पूँजीवाद का अन्त कर उसके स्थान पर साम्यवादी समाज (वर्गविहीन और राज्यविहीन समाज) की स्थापना के लिए कार्ल मार्क्स के द्वारा जो कार्यक्रम बनाया गया है, उसके तीन चरण हैं—

1. पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति।
2. सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की स्थापना।
3. राज्यहीन और वर्गविहीन समाज की स्थापना।

कार्ल मार्क्स का योगदान (Contribution of Karl Marx)

मार्क्स की महानता पर विभिन्न और परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किए जाते हैं। समाजवादियों के लिए यह एक देवता तुल्य है तो पूँजीवादियों के लिए सबसे बड़ा पिशाच, लेकिन इससे मार्क्स की महानता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि सम्पूर्ण मानवीय इतिहास में ऐसा कोई विचारक नहीं हुआ, जिसके विचारों ने मानव जाति के इतने बड़े भाग को प्रभावित और अनुप्राणित किया हो, और उनके सामाजिक जीवन में इतने गहरे, दूरगामी और आमूल परिवर्तन कर दिए हों, जितने कि मार्क्स के विचारों ने किए हैं। मार्क्स का नाम विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय है और उसकी रचनाएँ सम्पूर्ण विश्व के करोड़ों व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती हैं।

TOUCH 'n PASS

मार्क्स राजनीतिक विचारों के क्षेत्र में अपनी कई विशिष्ट देनों के कारण चिरस्मरणीय है। उसकी प्रमुख देन निम्नलिखित हैं—

वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन—मार्क्स वैज्ञानिक समाजवाद और साम्यवाद की विचारधाराओं का प्रबलतम प्रवर्तक और समर्थक है। मार्क्स प्रथम समाजवादी नहीं था और मार्क्स के पूर्व भी रॉबर्ट ओवन, एफ. डी. मॉरिस, चार्ल्स किंग्सले, डॉ. हाल, प्रूधो और सेण्ट साइमन, आदि समाजवादी विचारक हुए हैं, किन्तु इन लेखकों द्वारा प्रतिपादित समाज प्लेटो की 'रिपब्लिक' और थामस मूर की 'यूटोपिया' (Utopia) की भाँति काल्पनिक था। किन्तु मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद एक काल्पनिक विचारधारा न होकर विधिवत् रूप से प्रस्तुत एक व्यावहारिक दर्शन है जिसमें विद्यमान विश्व की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को परिवर्तित करने का एक व्यावहारिक मार्ग भी बताया गया है। इस प्रकार समाजवाद को वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक रूप प्रदान करने का श्रेय मार्क्स को ही प्राप्त है। इस सम्बन्ध में लुईस वाशरमैन ने ठीक ही लिखा है कि 'मार्क्स ने समाजवाद को एक षड्यन्त्र के रूप में पाया और उसे एक आन्दोलन के रूप में छोड़ा। समाजवाद ने उससे एक दर्शन और दिशा प्राप्त की।

इतिहास की आर्थिक व्याख्या का सिद्धान्त—इतिहास की आर्थिक व्याख्या का सिद्धान्त सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में उसकी एक बहुत बड़ी देन है। इतिहास की आर्थिक व्याख्या को अपूर्ण मानते हुए भी हमें स्वीकार करना होगा कि समस्त सामाजिक संस्थाओं में आर्थिक तत्त्व के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए उसने सामाजिक अध्ययन की एक बहुत बड़ी सेवा की है। वैधानिक और राजनीतिक संस्थाओं तथा विद्यमान आर्थिक व्यवस्था की अन्तर्निर्भरता के प्रतिपादन ने उसे 19वीं सदी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक दार्शनिक बना दिया है।

आर्थिक गतिविधियों का व्यापक अध्ययन—आर्थिक गतिविधियों और जीवन के अन्य क्षेत्रों पर उसके प्रभावों का जैसा अध्ययन मार्क्स ने किया है, वैसा अन्य किसी ने भी नहीं किया। मार्क्स पहला विचारक था जिसने व्यापार-चक्र, अतिउत्पादन और बेरोजगारी के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया। उसने ही यह अनुभव किया कि राष्ट्र की खुशहाली का एकमात्र साधन व्यापार नहीं है और यन्त्रीकरण के परिणामस्वरूप अनेक दोष उत्पन्न होंगे। उसने ही सर्वप्रथम यह अनुभव किया कि उद्योगों के यन्त्रीकरण का प्रभाव राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं रहेगा और औद्योगीकरण तथा उद्योगों के स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग में वर्गीय चेतना का तीव्रता के साथ विकास होगा।

पूँजीवाद के सम्बन्ध में अन्तरदृष्टि—इसके अलावा यद्यपि हम समाजवाद की अवश्यम्भावना को स्वीकार नहीं करते और हम यह मानते हैं कि पूँजीवाद का अन्त समाजवाद से नितान्त भिन्न एक सामाजिक व्यवस्था को जन्म दे सकता है, लेकिन यह मानना ही होगा कि पूँजीवाद के महत्त्वपूर्ण विकासों को पहले से देख लेने में मार्क्स ने उस सूक्ष्म अन्तरदृष्टि का परिचय दिया है, जिसका उसके समकालीन विचारकों में अभाव ही दीखता है। मार्क्स ने बिल्कुल सही रूप में इस बात का प्रतिपादन किया कि यद्यपि पूँजीवाद का परिणाम उत्पादन में वृद्धि होगा, किन्तु पूँजीवाद अपने विद्यमान स्वरूप में अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। 19वीं सदी का अबाधित पूँजीवाद अब भूत की वस्तु बन गया है और 20वीं सदी का पूँजीवाद उससे बहुत अधिक भिन्न है।

श्रमिक वर्ग में वर्गीय चेतना और एकता को जन्म—इन सबके अतिरिक्त मार्क्स की यदि कोई बड़ी देन है तो वह है श्रमिक वर्ग में वर्गीय चेतना और एकता को जन्म देना, उसकी स्थिति में सुधार करना, पूँजीपतियों के सम्मुख उनकी स्थिति को सबलता प्रदान करना और उन्हें पूँजीवाद के विरुद्ध अन्तिम संघर्ष के लिए तैयार करना । 'पूँजीवाद का अन्त और साम्यवाद का आगमन अवश्यम्भावी है।'' 'विश्व के मजदूरो एक हो जाओ, तुम्हारे पास खोने के लिए केवल जंजीरें हैं और पाने के लिए समस्त विश्व पड़ा है।'' मार्क्स की ये बातें निरपेक्ष सत्य नहीं हैं और उनकी आलोचना की जा सकती है, लेकिन यह एक तथ्य है कि मार्क्स के इन नारों ने श्रमिक वर्ग में वर्गीय चेतना उत्पन्न करने में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। मार्क्स ने समाजवाद के सैद्धान्तिक विवेचन के अतिरिक्त 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ' का निर्माण कर श्रमिक वर्ग को संगठित भी किया। मार्क्स तथा उसकी विचारधारा का महत्त्व इस बात में है कि वह पूर्णतया शोषित वर्ग के कल्याण हेतु समर्पित है और इसी बात ने उसे महान व्यक्ति बना दिया है। इसाह बर्लिन के अनुसार, '19वीं सदी में ऐसे अनेक सामाजिक आलोचक और क्रान्तिकारी हुए हैं, जिन्हें मार्क्स की तुलना में कम मौलिक, कम हिंसक या कम कट्टर सिद्धान्तवादी नहीं कहा जा सकता लेकिन इनमें से किसी ने भी एकनिष्ठ होकर अपने आपको एक ही किसी ऐसे तात्कालिक व्यावहारिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समर्पित नहीं किया जिसके लिए कोई भी त्याग महान नहीं हो सकता।

वेपर ने मार्क्स के सम्बन्ध में लिखा है, 'अपने सन्देश की शक्ति और भावी साम्यवादी आन्दोलन पर अपने प्रभाव के आधार पर विश्व के महान राजनीतिक विचारकों के किसी भी संग्रह में मार्क्स का स्थान पूर्णतया सुरक्षित है।'

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. 'दास कैपिटल' पुस्तक किसकी रचना है?
(क) मैकियावेली (ख) कॉर्ल मार्क्स (ग) प्लेटो (घ) अरस्तू
उत्तर (ख) कॉर्ल मार्क्स

प्र.2. टी०एच० ग्रीन के अनुसार स्वतन्त्रता के प्रकार हैं–
(क) सकारात्मक, आर्थिक (ख) निश्चयात्मक, सकारात्मक
(ग) व्यक्तिगत, सकारात्मक (घ) राजनीतिक, आर्थिक
उत्तर (ख) निश्चयात्मक, सकारात्मक

प्र.3. लास्की स्वतन्त्रता के कितने रूप मानते हैं?
(क) 2 (ख) 3 (ग) 4 (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) 3

प्र.4. निम्नलिखित में से ग्रीन द्वारा रचित पुस्तक है–
(क) दि प्रिन्स (ख) दि रिपब्लिक
(ग) लेवियाथन (घ) प्रोलेगोन्स ऑफ इथिक्स
उत्तर (घ) प्रोलेगोन्स ऑफ इथिक्स

प्र.5. लास्की के अनुसार स्वतन्त्रता के रूप हैं–
(क) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (ख) राजनीतिक स्वतन्त्रता (ग) आर्थिक स्वतन्त्रता (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.6. हीगल का जन्म हुआ था–
(क) फ्रांस (ख) इटली (ग) जर्मनी (घ) जापान
उत्तर (ग) जर्मनी

प्र.7. 'Encyclopaedia of the Philosophical Science' प्रसिद्ध ग्रन्थ है–
(क) सिसरो (ख) थॉमस एक्विनास (ग) हीगल (घ) मॉर्क्स
उत्तर (ग) हीगल

प्र.8. Science of Logic किसका ग्रन्थ है?
(क) हीगल (ख) मॉर्क्स (ग) ग्रीन (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) हीगल

प्र.9. वेपर का संकेत 'वह जितना महत्त्वपूर्ण दार्शनिक है, दुर्भाग्यवश उसे समझना उतना ही अधिक कठिन है।' किसके लिए है?
(क) मॉर्क्स (ख) ग्रीन (ग) हीगल (घ) हॉब्स
उत्तर (ग) हीगल

प्र.10. हीगल की 'द्वन्द्वात्मक पद्धति' क्या है?
(क) विकासवादी प्रक्रिया (ख) आदर्शवादी प्रक्रिया
(ग) रूढ़िवादी प्रक्रिया (घ) समाजवादी प्रक्रिया
उत्तर (क) विकासवादी प्रक्रिया

प्र.11. हीगल विश्व-आत्मा के विकास का प्रारम्भ कहाँ से मानते हैं?
(क) रूस (ख) चीन (ग) तुर्की (घ) भारत
उत्तर (ख) चीन

TOUCH 'n' PASS

प्र.12. हीगल के विचार-क्रम में नागरिक समाज है–
(क) वाद (ख) प्रतिवाद (ग) समवाद (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) प्रतिवाद

प्र.13. 'मूल्य का श्रम सिद्धान्त' किसने दिया?
(क) ग्रीन (ख) हीगल (ग) मॉर्क्स (घ) बोदां
उत्तर (ग) मार्क्स

प्र.14. वेपर का कथन, "उन्होंने सुन्दर गुलाब के फूलों की कल्पना तो की, परन्तु गुलाब के वृक्षों के लिए कोई धरती तैयार नहीं की।" का सम्बन्ध है–
(क) कार्ल मॉर्क्स से (ख) बेन्थम से
(ग) अरस्तू से (घ) कार्ल मार्क्स से पूर्व के समाजवादियों से
उत्तर (घ) कार्ल मार्क्स से पूर्व के समाजवादियों से

प्र.15. 'मानवीय चेतना स्वतन्त्रता को जन्म देती है, स्वतन्त्रता में अधिकार का भाव निहित है और अधिकार राज्य की माँग करते हैं' यह कथन है–
(क) प्रो० बार्कर (ख) डनिंग (ग) फिक्टे (घ) कांट
उत्तर (क) प्रो० बार्कर

प्र.16. हीगल सरकार के परम्परागत तीन अंगों में न्यायपालिका को किसका अंग मानते हैं?
(क) व्यावस्थापिका (ख) कार्यपालिका
(ग) (क) व (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) कार्यपालिका

प्र.17. "हीगल की अपेक्षा किसी अन्य व्यक्ति ने राष्ट्रीयता का अधिक उदात्त रूप में वर्णन नहीं किया है।" किसका कथन है?
(क) प्रो० बार्कर (ख) मैक्सी (ग) हैलोवेल (घ) वार्नर
उत्तर (ग) हैलोवेल

प्र.18. किसने कहा कि, "बिस्मॉर्क का प्रेरणा स्रोत हीगल था?"
(क) मैक्गवर्न (ख) रसेल (ग) मैक्सी (घ) वेपर
उत्तर (क) मैक्गवर्न

प्र.19. मॉर्क्स के अनुसार, "समवाद की उत्पत्ति कैसे हुई।"
(क) वाद से (ख) प्रतिवाद से
(ग) दो प्रतिवादों के संयोग से (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) दो प्रतिवादों के संयोग से

प्र.20. द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को मॉर्क्स तथा उसके अनुयायियों ने किस पौधे के उदाहरण से समझाया था?
(क) गेहूँ (ख) टमाटर (ग) गुलाब (घ) मटर
उत्तर (क) गेहूँ

प्र.21. द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में तीसरी दशा का नाम है–
(क) वाद (ख) प्रतिवाद (ग) समवाद (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) समवाद

प्र.22. मॉर्क्स ने हीगल के द्वन्द्वात्मक तर्क को लेकर क्या राय दी?
(क) इसे गलत साबित किया।
(ख) इसे आधार बनाकर अपने तर्क दिये तथा इसे पूर्णत सही बताया।

TOUCH 'n' PASS

(ग) विश्वात्मा के स्थान पर भौतिक तत्त्व को महत्ता दी।
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (ग) विश्वात्मा के स्थान पर भौतिक तत्त्व को महत्ता दी

प्र.23. मॉर्क्स ने भावी मानवीय इतिहास की कितनी अवस्थाएँ बतायी हैं?
(क) 5 (ख) 6 (ग) 8 (घ) 4

उत्तर (ख) 6

प्र.24. समाजवाद को वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक रूप प्रदान करने का श्रेय किसको जाता है?
(क) सेण्ट साइमन (ख) डॉ० हॉल (ग) चार्ल्स किंग्सले (घ) कार्ल मॉर्क्स

उत्तर (घ) कार्ल मॉर्क्स

प्र.25. मॉर्क्स द्वारा मानवीय इतिहास के काल क्रम में पूँजीवादी अवस्था के बाद की अवस्था है–
(क) दास अवस्था (ख) साम्यवादी अवस्था
(ग) श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व की अवस्था (घ) आदिम साम्यवादी अवस्था

उत्तर (ग) श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व की अवस्था

प्र.26. आचारशास्त्र (Ethics) नामक ग्रन्थ किसकी रचना है?
(क) कार्ल मॉर्क्स (ख) हीगल (ग) ग्रीन (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) हीगल

प्र.27. निम्नलिखित में से ग्रीन की रचना है–
(क) लेक्चर्स ऑन द प्रिन्सिपिल्स ऑफ पॉलिटिकल ऑब्लीगेशन
(ख) द इकॉनोमिक एण्ड फिलॉसफिकल मेन्युस्क्रिप्टस
(ग) कमेण्ट्रीज ऑन दि पॉलिटिक्स ऑफ आरिस्टोटल
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (क) लेक्चर्स ऑन द प्रिन्सिपिल्स ऑफ पॉलिटिकल ऑब्लीगेशन

प्र.28. निम्नलिखित में से कौन-सी रचना कार्ल मॉर्क्स की नहीं है?
(क) द कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो (The Communist Manifesto)
(ख) क्लास स्ट्रगल इन फ्रांस (Class Struggle in France)
(ग) वेल्यु, प्राइस एण्ड प्रोफिट (Value, Price and Profit)
(घ) द फिलॉसफी ऑफ हिस्ट्री (The Philosophy of History)

उत्तर (घ) द फिलॉसफी ऑफ हिस्ट्री (The Philosophy of History)

प्र.29. निम्नलिखित में से कौन-सी रचना हीगल की नहीं है?
(क) Philosophy of Right (ख) Science of Logic
(ग) Constitution of Germany (घ) The Civil War in France

उत्तर (घ) The Civil War in France

प्र.30. किसने कहा, "जिस प्रकार एक मनुष्य घटकों तथा रक्त धमनियों का समूह मात्र न होकर उससे अधिक है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्र व्यक्तियों का समूह मात्र न होकर उससे अधिक है।"
(क) फिक्टे (ख) वॉन (ग) केरयू हण्ट (घ) मैकाइवर

उत्तर (क) फिक्टे

TOUCH 'n PASS

UNIT-VII

वोलस्टोनक्राफ्ट, बोउआर और लक्जेमबर्ग

Wollstonecraft, Beauvoir and Luxemburg

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट के मुख्य विचार क्या थे?

What were the main thoughts of mary wollstonecraft?

उत्तर मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट एक अंग्रेजी लेखिका और महिलाओं के लिए शैक्षिक और सामाजिक समानता की एक उत्साही पैरोकार थीं। उन्होंने इस तरह के राजनीतिक परिवर्तन के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालियों के आमूल-चूल सुधार के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में सुधार का आह्वान किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इस तरह के बदलाव से पूरे समाज को फायदा होगा।

प्र.2. मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट की आदर्श सरकार क्या थी?

What was the ideal government of mary wollstonecraft?

उत्तर पुरुषों के अधिकारों के एक संकेत में, वोलस्टोनक्राफ्ट ने आक्रामक रूप से राजशाही और वंशानुगत विशेषाधिकारों के खिलाफ तर्क दिया, जैसा कि एंसीन शासन द्वारा बरकरार रखा गया था। उनका मानना था कि फ्रांस को सरकार का एक गणतांत्रिक स्वरूप अपनाना चाहिए।

प्र.3. प्रथम नारीवादी लेखिका कौन थी?

Who was the first feminist writer?

उत्तर मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट : पहली नारीवादी लेखिका—अपने नाम के तहत खुले तौर पर प्रकाशित करने वाली पहली महिलाओं में से एक, वोलस्टोनक्राफ्ट 1792 के ए विन्डिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन के लिए सबसे प्रसिद्ध है, जो महिलाओं की शिक्षा की वकालत करने वाला एक दार्शनिक पाठ है।

प्र.4. भारत में महिला आंदोलन की शुरुआत कब हुई?

When did the women's movement start in India?

उत्तर 19वीं शताब्दी में 3 बड़े आंदोलन चलाए गए। जिन्होंने समाज को प्रभावित किया। एक तो ब्राह्मण समाज था और दूसरा थियोसोफिकल सोसाइटी। जिनमें स्त्रियों की दशा में सुधार के लिए अनेक प्रयास किए गए और इसके फलस्वरुप 1829 में सती प्रथा के विरुद्ध कानून बनाया गया और इसमें महिलाओं की स्थिति में सुधार आ गया।

प्र.5. नारीवाद के उद्देश्य क्या हैं?

What are the objectives of feminism?

उत्तर नारीवाद का लक्ष्य महिलाओं द्वारा दैनिक आधार पर सामना की जाने वाली प्रणालीगत असमानताओं को चुनौती देना है। आम धारणा के विपरीत नारीवाद का पुरुषों को कमतर आंकने से कोई लेना-देना नहीं है, वास्तव में नारीवाद किसी भी लिंग के खिलाफ लिंगवाद का समर्थन नहीं करता है। नारीवाद समानता की दिशा में काम करता है, नारी श्रेष्ठता की ओर नहीं।

प्र.6. लक्जेमबर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

Give in short a life sketch of Luxemburg.

उत्तर लक्जेमबर्ग (1871-1919) बीसवीं शताब्दी के आरंभ की पोलिश समाजवादी क्रांतिकारी महिला थी जिसे क्रांतिकारी मार्क्सवाद (Revolutionary Marxism) की मूल प्रवर्त्तक माना जाता है। उन दिनों पोलिश राष्ट्रवाद (Polish Nationalism) वहाँ के मार्क्सवादियों का लोकप्रिय विषय था और वह 1863 के प्रथम अंतर्राष्ट्रीय संगठन (First International Organization) की स्थापना का तात्कालिक कारण भी था। परंतु लक्जेमबर्ग को मार्क्सवाद की मूल मान्यताओं में गहरा विश्वास था, अत: वह किसी भी तरह के राष्ट्रवाद के विरुद्ध थी। अपने इस विश्वास के कारण उसने राष्ट्रीय आत्मनिर्णय (National Self-Determination) की नीति का भी विरोध किया जो लेनिन (1870-1924) की देन थी।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. साइमन की आरंभिक समाजवाद की रूपरेखा का उल्लेख कीजिए।
Mention the outline of early socialism of Simone.

उत्तर

साइमन की आरंभिक समाजवाद की रूपरेखा
(Outline of Early Socialism of Simone)

सेंट-साइमन ने 1816-22 तक प्रकाशित लेखों के अंतर्गत एक नई तरह के समाजवाद की नींव रखी। उसने एक तरह के वर्ग संघर्ष (Class Conflict) का सिद्धांत रखा, परंतु यह हिंसात्मक संघर्ष नहीं था। उसने जिन दो प्रमुख वर्गों की पहचान की, वे थे—उत्पादक (Producers) या उद्योगपति (Industrialists), और परोपजीवी (Parasites) या अधिकारिवर्ग (Bureaucrats)। उसने तर्क दिया कि कोई क्रांतिकारी या सुधारात्मक गतिविधि तब तक व्यर्थ होगी जब तक वह राजनीतिक परिवर्तन न लाए। उसने भावी समाज की कल्पना वर्गहीन समाज (Classless Society) के रूप में नहीं की बल्कि यह विचार रखा कि मध्यवर्ग (Bourgeoisie), वैज्ञानिक (Scientists) और सर्वहारा (Proletariat) समान रूप से उत्पादक वर्ग के सदस्य होंगे। ये सब सामंतवाद—विरोधी संघर्ष में स्वाभाविक सहयोगी हैं, और भावी औद्योगिक प्रणाली से बराबर लाभान्वित होंगे। उसका विचार था कि साहूकार, इंजीनियर और माल-निर्माता अपनी प्रबंधकीय कुशलता और बुद्धिमत्ता के बल पर कामगार-वर्ग (Working Class) के साथ मैत्री स्थापित करने के लिए सबसे कुशल क्रांतिकारी नेता सिद्ध होंगे। उनकी सूझ-बूझ और प्रयत्नों से भावी समाज में वर्ग संघर्ष लुप्त हो जाएगा। सेंट साइमन के इन विचारों से स्पष्ट है कि उसके प्रहार का लक्ष्य सामंतवाद था, पूँजीवाद नहीं।

सेंट-साइमन ने लिखा—अब समय आ गया है जब उद्योगपतियों को समाज का नियंत्रण सँभाल लेना चाहिए, और उसके सदस्यों की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप उसका संगठन करना चाहिए। यह संगठन सार्वजनिक हित (Public Interest) से प्रेरित होगा। इसमें सामाजिक न्याय (Social Justice) के लक्ष्य की सिद्धि के लिए उत्पादन और वितरण के साधनों पर साझा स्वामित्व स्थापित किया जाएगा। इस व्यवस्था के अंतर्गत वैज्ञानिकों के सुनियोजित मार्गदर्शन में बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण (Industrialization) होगा जिससे उत्पादन इतना बढ़ जाएगा कि समाज में 'निर्धनता' और 'युद्ध' लुप्त हो जाएंगे। यह एक खुली वर्ग-व्यवस्था (Open Class System) होगी जिसमें जन्म पर आधारित विशेषाधिकारों (Privileges) की कोई गुंजाइश नहीं होगी; सबको काम मिलेगा, और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार प्रतिफल मिलेगा। इसमें राज्य ऐसी सरकार के रूप में नहीं रहेगा जो वर्ग-प्रभुत्व (Class Domination) और राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विताओं (National Rivalries) पर आधारित हो, बल्कि वह ऐसी कल्याणकारी व्यवस्था में बदल जाएगा जिसका वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धहस्त जन-सेवकों (Expert Public Servants) के हाथों में रहेगा।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि चार्ल्स फ्यूरिए (1772-1837), रॉबर्ट ओवेन (1771-1858) और सेंट-साइमन—ये तीनों आधुनिक समाजवाद के अग्रदूत माने जाते हैं।

प्र.2. रोजा लक्जेमबर्ग की साम्यवादी दल की भूमिका लिखिए।
Write the role of the Communist Party of Rosa, Luxemberg .

उत्तर

साम्यवादी दल की भूमिका
(Role of the Communist Party of Rosa Luxemberg)

रोजा ने सैद्धांतिक मार्क्सवाद (Theoretical Marxism) में आस्था रखते हुए 'जन-इच्छा' (Will of the People) को सम्मान देने की माँग की। उसे लोकतंत्र (Democracy) और स्वतंत्रता (Liberty) के सिद्धांतों में अडिग विश्वास था। रूस में जब लेनिन ने मार्क्सवाद से प्रेरित क्रांति की नींव रखी, तब रोजा ने उसकी अधिनायकतंत्रीय (Dictatorial) और नृशंसतंत्रीय (Tyrannical) प्रवृत्तियों की कड़ी आलोचना की। लेनिन ने क्रांति के संचालन का दायित्व व्यवसायिक क्रांतिकारियों (Professional Revolutionaries) के छोटे-से दल को सौंपना चाहा। रोजा लक्जेमबर्ग का विचार था कि ऐसे दल में स्वभावत: नौकरशाही (Bureaucracy) की प्रवृत्तियाँ आ जाएँगी।

स्वयं लेनिन ने यह स्वीकार किया था कि सोवियत समाजवादी लोकतंत्र और एक व्यक्ति के शासन या अधिनायकतंत्र में कोई अंतर्विरोध नहीं है। कभी-कभी अधिनायक एक वर्ग की इच्छा का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करता है और कभी-कभी उसकी प्रबल आवश्यकता अनुभव की जाती है। लेनिन की इस स्वीकारोक्ति और उसकी कार्य-प्रणाली को देखते हुए यह सिद्ध हो जाता है कि रोजा लक्जेमबर्ग की आलोचना में बहुत दम था। रोज़ा के अनुसार, समाजवाद (Socialism) का अर्थ सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक जीवन में पूरी जनता की खुली और बराबर की साझेदारी है। उसने यह तर्क दिया कि यदि यह साझेदारी नहीं रहेगी तो समाजवाद दर्जन भर बुद्धिजीवियों के आदेशों का समुच्चय बनकर रह जाएगा। यदि अनुभवों का आदान- प्रदान नए शासन के इने-गिने उच्चाधिकारियों तक सीमित रहेगा तो भ्रष्टाचार (Corruption) अवश्यंभावी है।

रोजा ने चेतावनी दी कि यदि समाज में लोकतंत्र का दमन कर दिया जाएगा तो दल में भी लोकतंत्र नहीं रहेगा; सर्वहारा के अधिनायकतंत्र (Dictatorship of the Proletariat) का परिणाम होगा—समाज का उत्पीड़न। परंतु लेनिन ने इन चेतावनियों को अनसुना कर दिया। लेनिन ने सर्वहारा वर्ग (Proletariat) का नेतृत्व साम्यवादी दल को सौंपकर एक ऐसे आंदोलन की शुरूआत की जिसमें क्रांति का सारा दायित्व और सारी शक्ति गिने-चुने लोगों के हाथों में आ गई, और कामगार इस क्रांति का साध्य नहीं रहा, साधन मात्र रह गया। जब साम्यवादी नेता और कामगार का रिश्ता मैनेजर-मजदूर जैसा यांत्रिक हो गया हो तो उसमें वह मानवीय तत्त्व कहाँ रहा जो मार्क्सवादी चिंतन का प्रेरणा-स्रोत था? रूस की शासन व्यवस्था में नौकरशाही इतनी ताकतवर हो गई, और पद-प्रतिष्ठा के इतने स्तर बन गए कि इसने 'शक्ति के स्तूप' (Pyramid of Power) का रूप धारण कर लिया। स्टालिन (1879-1953) ने इस व्यवस्था को और भी क्रूरता के साथ कायम रखा। उसके बाद के दशकों में इसमें कुछ ढील तो आई, परंतु वहाँ विरोधी मत के दमन की परंपरा लगातार चलती रही जिसमें खुफिया पुलिस के आतंक की विशेष भूमिका रही। ऐसी हालत में व्यक्ति की स्वतंत्रता बुरी तरह दब गई जिसने वर्गहीन समाज (Classless Society) के स्वप्न को धूल में मिला दिया।

प्र.3. रोजा लक्जेमबर्ग के सुधार और क्रांति का उल्लेख कीजिए।
Mention the reform and revolution of Rosa Luxemburg.

उत्तर

सुधार और क्रांति
(Reform and Revolution)

रोजा लक्ज़ेमबर्ग ने अपनी आरंभिक कृति 'सोशल रिफार्म ऑर रिवोल्यूशन?' (सामाजिक सुधार या क्रांति?) (1899) के अंतर्गत इस दृष्टिकोण का खंडन किया कि समाजवाद को पूँजीवाद के भीतर सामाजिक सुधारों की लंबी शृंखला के सहारे धीरे-धीरे स्थापित किया जा सकता है। उसने तर्क दिया कि कामगार आंदोलन (Workers' Movement) को मजदूर संघ (Trade Union) और संसदीय गतिविधि (Parliamentary Activity) के माध्यम से सुधारों के लिए संघर्ष अवश्य करना चाहिए, परंतु यह सारा प्रयत्न पूँजीवादी उत्पादन संबंधों (Capitalist Productive Relations) का अंत करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। सर्वहारा का अंतिम लक्ष्य (Ultimate Goal) क्रांति है जिसके लिए राजनीतिक शक्ति पर विजय प्राप्त करना सर्वथा आवश्यक है। पूँजीवादी व्यवस्था के संकट (Crisis) और अंतर्विरोधों (Contradictions) को केवल सुधारों के माध्यम से नहीं सुलझाया जा सकता।

रोजा ने अपनी सबसे महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक कृति 'द एक्युमुलेशन ऑफ कैपीटल' (पूँजी संचय) (1913) के अंतर्गत पूँजीवाद के पतन (Breakdown of Capitalism) की भविष्यवाणी की। उसने तर्क दिया कि शुद्ध पूँजीवाद अपने विकास के लिए जरूरी शर्तें पूरी नहीं कर सकता। पूँजीवाद जितना अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) पैदा करता है, उसे अपने अंदर नहीं खपा सकता। अत: पूँजीवादी देशों में जिस गति से माँग (Demand) बढ़ती है, पूँजी का संचय उससे ज्यादा तेजी से बढ़ता है। इस अतिरिक्त संचय को खपाने के लिए पूँजीवाद अल्पविकसित क्षेत्रों (Under-developed Areas) और गैर-पूँजीवादी उत्पादन (Non-Capitalist Production) के क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है जिससे पूँजीवादी साम्राज्यवाद (Capitalist Imperialism) का युग आरंभ होता है। साम्राज्यवाद का शिकंजा कसने के लिए इसमें ज्यादा-से-ज्यादा हिंसा (Violence) और सैन्यवाद (Militarism) का सहारा लिया जाता है। परंतु यह पूँजीवाद की समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं है। जब पूँजीवाद अपने विस्तार की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, और उसे आगे बढ़ने का रास्ता नहीं मिलता, तब वह टूट जाता है।

चूँकि पूँजीवाद का पतन अवश्यंभावी है, इसलिए सर्वहारा (Proletariat) के सामने दो ही विकल्प रह जाते हैं—या तो संकट, प्रतिक्रिया, युद्ध, विनाश एवं बर्बरता का सामना किया जाए, या फिर इन सबसे बचने के लिए समाजवाद की स्थापना की जाए। समाजवाद की स्थापना के लिए रोजा को जनपुंज की आत्मस्फूर्ति (Spontaneity of the Masses) में अगाध विश्वास था। परंतु इसके साथ-साथ उसने उपयुक्त संगठन, सुयोग्य नेतृत्व और मार्क्सवादी सिद्धांत में आस्था पर भी विशेष बल दिया।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वोलस्टोनक्राफ्ट के राजनीतिक विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe the political thoughts of Wollstonecraft.

उत्तर

वोलस्टोनक्राफ्ट के राजनीतिक विचार
(Political Thoughts of Wollstonecraft)

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट (1759-97) अंग्रेज लेखिका, समीक्षक, निबंधकार और उपन्यासकार थी। उसकी विशेष ख्याति आधुनिक नारीवाद (Feminism) की अग्रदूत के रूप में है। वॉल्स्टन्क्राफ्ट ने अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक में ही अपनी बहुचर्चित कृति 'ए विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमैन' (नारी-अधिकारों का औचित्य) (1798) प्रकाशित करके नारी-अधिकारों के

प्रति जागरूकता पैदा कर दी थी। जॉन स्टुआर्ट मिल (1806-73) की चर्चित कृति 'सब्जैक्शन ऑफ वीमैन' (स्त्रियों की पराधीनता) (1869) के प्रकाशित होने से पहले वॉल्स्टन्क्राफ्ट की कृति को ही स्त्रियों की समानता की माँग से जुड़ा अत्यंत प्रभावशाली दस्तावेज माना जाता था।

स्त्रियों के अधिकार (Rights of Women)

'ए विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमैन' (नारी-अधिकारों का औचित्य) के अंतर्गत वोलस्टोनक्राफ्ट ने सर्वमान्य उदारवादी मूल्यों और तर्क-शैली के आधार पर स्त्रियों के अधिकारों की शानदार पैरवी की है। उसने इस मान्यता का खंडन किया है कि प्रकृति ने स्त्री को पुरुष की दासी बनाया है। फिर, उसने इस उदारवादी मान्यता को दोहराया है कि 'मनुष्य विवेकशील प्राणी है' (Human being is a rational creature)। उसकी विवेशील प्रकृति ही स्वतंत्रता (Liberty) और आत्म-निर्णय (Self-Determination) के अधिकारों का स्रोत है। स्त्रियाँ भी निस्संदेह मनुष्य हैं। मनुष्य के नाते वे भी विवेकशील प्राणी हैं, और विवेकशील प्राणी के नाते उन्हें भी पुरुषों के समान स्वतंत्रता और आत्म-निर्णय का अधिकार है। नैतिक दृष्टि से स्त्रीत्व (Femaleness) को भेदभाव (Discrimination) का युक्तियुक्त आधार नहीं माना जा सकता।

दूसरी ओर, हमारी समाज-व्यवस्था ऐसी बनी हुई है जिसमें स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी के बाहर की दुनिया में कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के योग्य प्रतीत नहीं होतीं। इसका कारण यह है कि उन्हें ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती जिससे वे अपनी प्रतिभा या चरित्र का विकास कर सकें। उन्हें केवल ऐसी शिक्षा दी जाती है कि पुरुष-प्रधान समाज में उन्हें पुरुष के हाथ की कठपुतली बन कर कैसे रहना चाहिए? स्त्रियाँ अतिनम्र, सहनशील, भावुक और प्रशंसा की भूखी इसलिए बनी हुई हैं क्योंकि उन्हें ऐसा बनना सिखाया जाता है। आधुनिक शब्दावली में, उनका स्त्री रूप सामाजिक मान्यताओं के सांचे में ढला (Socially Conditioned) है।

वोलस्टोनक्राफ्ट ने तर्क दिया है कि यदि स्त्रियों को उपयुक्त शिक्षा दी जाए, पूर्ण नागरिक अधिकार (Civil Rights) प्रदान किए जाएँ, कानूनी तौर पर उन्हें अपने पति से स्वाधीन माना जाए, और वे अपनी पसंद से अपनी योग्यता का प्रयोग करने को स्वतंत्र हों तो वे समाज की पूर्ण सदस्य बनने के लिए सक्षम हो जाएंगी, और स्वयं पुरुषों के लिए भी अधिक उपयुक्त सहचर सिद्ध होंगी। परंतु आज स्थिति यह है कि विवाह को भी 'कानूनी वेश्यावृत्ति (Legal Prostitution) के तुल्य माना जाता है। स्त्रियों को दास बनाकर रखना सुविधाजनक हो सकता है, परंतु दासता एक कलंक है। इससे स्वामी और दास दोनों के आत्मसम्मान को क्षति पहुँचती है। जो मूल्य-प्रणाली इस दासता को मान्यता प्रदान करती है, उसे राजतंत्र (Monarchy), चर्च (Church) और सैन्य-संगठन की छत्रछाया में संस्थात्मक रूप दे दिया गया है। वोलस्टोनक्राफ्ट को विश्वास था कि जब तक स्त्री-पुरुष की यह विषमता (Inequality) कायम है, तब तक सामाजिक न्याय (Social Justice) के लक्ष्य को पूरा नहीं किया जा सकता।

समालोचना (A Critical Appraisal)

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट के चिंतन के अंतर्गत नारी-अधिकारों के बारे में इतने सुलझे हुए विचार प्रस्तुत किए गए हैं, फिर भी आज के नारीवादी इससे बहुत प्रभावित नहीं दिखते। वोलस्टोनक्राफ्ट ने नारी-अधिकारों पर बल देते हुए स्त्रियों को आत्म-उन्नयन (Self Improvement) का पाठ भी पढ़ाया जो कि आज की नारीवादियों की कार्य-सूची का विषय नहीं है। फिर उसने व्यवसायिक क्षेत्र (Professional Sphere) में स्त्रियों को उपयुक्त हिस्सा देने की माँग नहीं की, और परिवार संस्था के भीतर स्त्री के परंपरागत उत्तरदायित्वों को भी चुनौती नहीं दी, जबकि ये दोनों मामले समकालीन नारीवाद के प्रिय विषय हैं। उसने मुख्यत: स्त्री की गरिमा और आत्मसम्मान को बढ़ाने की पैरवी की। वह सोचती थी कि इनी-गिनी स्त्रियाँ ही अपने लिए स्वाधीन व्यवसाय चुनना चाहेंगी, जबकि अधिकांश स्त्रियाँ अच्छी पत्नी और अच्छी माता के रूप में ही अपना जीवन बिताना चाहेंगी। उसने उनके लिए केवल उपयुक्त शिक्षा और कानूनी तौर पर पति से स्वाधीनता की माँग की। देखा जाए तो उन दिनों यह माँग भी एक तरह से आमूल परिवर्तनवादी माँग (Radical Demand) थी।

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट की आत्मप्रेरणा और नैतिक साहस अवश्य सराहनीय हैं। उसे अपने समकालीन पुरुष-वर्ग की नाराजगी का सामना करना पड़ा। अपने आमूल-परिवर्तनवादी दृष्टिकोण के कारण उसे एडमंड बर्क (1729-97) जैसे रूढ़िवादी (Conservative) के तीक्ष्ण कटाक्ष को सहन करना पड़ा। फिर, जीवन के संघर्ष की राह में उसका व्यक्तिगत चरित्र भी लांछन का विषय बना। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की नारीवादियों ने अपना नाम ऐसी स्त्री के नाम के साथ नहीं जोड़ना चाहा जिसके जीवन में अनेक प्रेम प्रसंग आए थे, एक अवैध संतान पैदा हुई थी, और जिसने दो बार आत्महत्या की कोशिश की थी। परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक आते-आते वोलस्टोनक्राफ्ट की 'ए विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमैन' (नारी-अधिकारों का औचित्य) को नारीवाद के एक बुनियादी दस्तावेज के रूप में मान्यता मिल गई। 1881 में जब अमेरिकी नारीवादियों के एक समूह ने स्त्री-मताधिकार का इतिहास प्रकाशित किया तो इसे मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट को समर्पित किया गया था।

प्र.2. सेंट-साइमन के ऐतिहासिक विकास की यात्रा का वर्णन कीजिए।
Describe the course of historical development of Saint-Simone.

उत्तर

सेंट-साइमन (Saint-Simon)

क्लॉड हेनरी द रूब्रॉय सेंट-साइमन (1760-1825) उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ का फ्रांसीसी समाज-दार्शनिक और समाज-सुधारक था। उसने केवल कुछ निबंध और चौपन्ने लिखे; कोई स्थायी महत्त्व की कृति प्रस्तुत नहीं की। परंतु अपने छात्रों और शिष्यों के माध्यम से उसने औद्योगिक समाजवाद (Industrial Socialism), प्रत्यक्षवाद (Positivism), समाजविज्ञान (Sociology) और इतिहास-दर्शन (Philosophy of History) के क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। समाजविज्ञान के क्षेत्र में वह पहला ऐसा विचारक था जिसने परंपरागत संस्थाओं और नैतिकता के संदर्भ में औद्योगीकरण (Industrialization) के क्रांतिकारी प्रभाव को स्पष्ट अनुभव किया। दूसरे, उसने समाज के अध्ययन के लिए प्राकृतिक विज्ञान से मिलते-जुलते विज्ञान (Naturalistic Science) का समर्थन किया जो सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए तर्कसंगत मार्गदर्शन प्रदान कर सके। तीसरे, उसने ऐतिहासिक विकास की यात्रा को सूत्रबद्ध करने का प्रयत्न किया जिसे परवर्ती विकासवादियों ने अपने-अपने ढंग से आगे बढ़ाया।

ऐतिहासिक विकास की यात्रा (Course of Historical Development)

सेंट साइमन ने तर्क दिया कि प्रत्येक समाज किसी एक संगठन प्रणाली के अंतर्गत एकता के सूत्र में बँधा रहता है। परंतु इस 'व्यवस्था' (Order) को भंग किए बिना समाज 'प्रगति' (Progress) के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता। प्रत्येक प्रणाली अपने निर्माण के समय सर्वथा उपयुक्त समझी जाती है, परंतु विकास के ऊँचे स्तर पर पहुँचते ही वह पुरानी पड़ जाती है। प्रत्येक समाज-व्यवस्था का निर्माण किसी विशेष विश्वास-प्रणाली (System of Beliefs) की नींव पर होता है। जब ये विश्वास अपनी साख (Credibility) खो बैठते हैं, तब समाज-व्यवस्था के विघटन का खतरा पैदा हो जाता है। ऐसी हालत में समाज-व्यवस्था को कायम रखने के लिए एक नई वैकल्पिक विश्वास-प्रणाली जरूरी हो जाती है। इस सिद्धांत के आधार पर सेंट साइमन ने पश्चिमी सभ्यता के इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं (Stages) का विवरण दिया है।

पहली अवस्था प्राचीन यूनान और रोम की सभ्यताओं में देखने को मिलती है। इसकी विशेषताएँ थीं—बहुदेववादी विचारधारा (Polytheistic Ideology), दास-अर्थव्यवस्था (Slave Economy) और अखंड राजनीतिक शासन (Monolithic Political Rule)। ग्यारहवीं शताब्दी तक आते-आते ये सब बातें पुरानी पड़ गईं। अत: तब ऐतिहासिक विकास की दूसरी अवस्था शुरू हुई। इसकी विशेषताएँ थीं—सामंतवाद (Feudalism) और कैथोलिक धर्म (Catholicism)। यह मध्ययुगीन सभ्यता (Medieval Civilization) थी जो प्राचीन सभ्यता की तुलना में कई तरह से श्रेष्ठ थी। इसने अधिक तर्कसंगत धर्मशास्त्र (More Rational Theology) को बढ़ावा दिया; दासता के बंधन (Bondage) को अधिक मानवीय रूप में ढाल दिया; लौकिक (Temporal) शक्ति को आध्यात्मिक (Spiritual) शक्ति से पृथक् कर दिया; और उत्पादन (Production) के उन्नत तरीके विकसित किए।

परंतु पंद्रहवीं शताब्दी से यूरोप में फिर संक्रांतिकालीन संकट (Transitional Crisis) की शुरुआत हुई क्योंकि तब एक नई प्रणाली अस्तित्व में आ गई जो उद्योग और विज्ञान (Industry and Science) की नींव पर खड़ी की गई थी। यह प्रणाली प्रत्यक्षवाद (Positive) में विश्वास करती है। सेंट-साइमन ने तर्क दिया कि 'आधुनिक प्रत्यक्षवादी विज्ञान' (Modern Positive Science) ही सामंतवाद के बाद की (Post-feudal) औद्योगिक व्यवस्था (Industrial Order) के लिए उपयुक्त 'विश्वास प्रणाली' प्रस्तुत करता है। सेंट-साइमन ने दावा किया कि यह परिवर्तन अनिवार्य और अवश्यंभावी है—'हमारा उद्देश्य केवल इस अनिवार्य परिवर्तन को बढ़ावा देना और उसकी व्याख्या करना है।' यह बात महत्त्वपूर्ण है कि सेंट-साइमन के बाद ऑगस्ट कॉम्टे (1798-1857) और कार्ल मार्क्स (1818-83) दोनों ने सामाजिक परिवर्तन के बारे में यही दृष्टिकोण अपनाया।

प्रत्यक्षवाद (Positivism)

यह सिद्धांत कि वस्तु-जगत् की सही-सही व्याख्या केवल तथ्यों (Facts) और नियमों (Rules) के आधार पर दी जा सकती है, अमूर्त चिंतन या कल्पना के आधार पर नहीं। इसमें केवल उन्हीं तथ्यों पर विचार किया जाता है जिनका निरीक्षण और सत्यापन किया जा सकता हो।

सेंट साइमन ने तर्क दिया कि नया प्रत्यक्षवादी दर्शन (Positive Philosophy) समस्त विज्ञानों की आधार-शिला पर नई समाज-व्यवस्था का निर्माण करेगा। इसके लिए वर्तमान प्राकृतिक विज्ञानों (Natural Sciences) के अलावा एक नए सामाजिक विज्ञान (Social Science) का निर्माण जरूरी होगा जिसे सेंट-साइमन ने सामाजिक जीवविज्ञान (Social Physiology) की संज्ञा दी। उसका संकेत यह था कि सामाजिक जीवन को मनुष्य के प्राकृतिक जीवन के विकास की अवस्था मानकर चलना चाहिए। उसने दावा किया कि यह नया सामाजिक विज्ञान भावी समाज के लिए नैतिक नियमों और नीतियों के निर्माण में मार्गदर्शन प्रदान करेगा। यह विज्ञान शिक्षित वर्ग के लिए एक नया दर्शन सिद्ध होगा, और जनसाधारण के लिए वह एक नए धर्म की भूमिका निभाएगा। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि सेंट साइमन के निकट सहयोगी और समाजविज्ञान के जनक ऑगस्ट कॉम्टे (1798-1857) ने अपने नए समाजविज्ञान की नींव इन्हीं निर्देशों के अनुसार रखी।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. पहली नारीवादी लेखिका के तौर पर जाना जाता है–
(क) Hannah Arendt (ख) Mary Wollstonecraft
(ग) Mary Susan McIntosh (घ) Bettina Aptheker
उत्तर (ख) Mary Wollstonecraft

प्र.2. पुस्तक 'ए विन्डिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन' को किसने लिखा?
(क) वोलस्टोनक्राफ्ट (ख) बोउआर (ग) लक्जेमबर्ग (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) वोलस्टोनक्राफ्ट

प्र.3. किसने कहा–'समाजवाद का अर्थ सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक जीवन में पूरी जनता की खुली और बराबर की साझेदारी है'?
(क) वोलस्टोनक्राफ्ट (ख) बोउआर (ग) रोजा लक्जेमबर्ग (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) रोजा लक्जेमबर्ग

प्र.4. आधुनिक समाजवाद का अग्रदूत माना जाता है–
(क) सेंट साइमन को (ख) रॉबर्ट ओवेन को (ग) चार्ल्स फ्यूरिए को (घ) इन सभी को
उत्तर (घ) इन सभी को

प्र.5. साइमन ने अपने लेखों में समाजवाद की नींव रखी जिसमें दो वर्गों का उल्लेख किया है, ये दो वर्ग हैं–
(क) उद्योगपति और अधिकारी वर्ग (ख) कामगार वर्ग और अधिकारी वर्ग
(ग) राज्य और शासन (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) उद्योगपति और अधिकारी वर्ग

प्र.6. सेंट साइमन किस वर्ग के लिए कहा कि उन्हें समाज का नियन्त्रण संभाल लेना चाहिए?
(क) उद्योगपति (ख) अधिकारी वर्ग (ग) (क) व (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) (क) व (ख) दोनों

प्र.7. निम्न में से कौन समान रूप से उत्पादक वर्ग का सदस्य होगा?
(क) मध्य वर्ग (Bourgeoisie) (ख) वैज्ञानिक (Scientists)
(ग) सर्वहारा (Proletariat) (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.8. 'सोशल रिफॉर्म ऑर रिवोल्यूशन' (सामाजिक क्रान्ति या सुधार) किसकी रचना है?
(क) वोलस्टोनक्राफ्ट (ख) बोउआर (ग) लक्जेमबर्ग (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) लक्जेमबर्ग

प्र.9. भारत में 19वीं शताब्दी में महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक आन्दोलन किये गये, इनमें सती-प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह जैसी कुप्रथाओं को दूर करने का श्रेय जाता है–
(क) ब्रह्म समाज को (ख) आर्य समाज को (ग) सत्यशोधक समाज को (घ) इन सभी को
उत्तर (घ) इन सभी को

प्र.10. 20 अगस्त, 1828 ई० में 'आत्मीय सभा' की स्थापना किसने की, जिसे आगे चलकर 'ब्रह्म समाज' के नाम से जाना गया?
(क) स्वामी दयानन्द सरस्वती (ख) स्वामी विवेकानन्द
(ग) राजा राममोहन राय (घ) गोविन्द रानाडे
उत्तर (ग) राजा राममोहन राय

TOUCH 'n' PASS

प्र.11. थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए अमेरिकन कर्नल हेनरी स्टील अल्कॉट और रूसी महिला मैडम हेलेन पेट्रोवना ब्लावेट्स्की द्वारा न्यूयॉर्क 1875 ई० में की गयी थी। भारत में इस सोसाइटी का कार्यालय सन् 1882 ई० में कहाँ खोला गया था?

(क) मद्रास (ख) कोलकाता (ग) मुम्बई (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) मद्रास

प्र.12. भारत में थियोसॉफिकल सोसाइटी के कार्यों को किसने संचालित किया?

(क) ज्योतिबा फुले (ख) एनी बेसेण्ट (ग) दिनामणि देवी (घ) गौरा देवी

उत्तर (ख) एनी बेसेण्ट

प्र.13. सेंट साइमन ने पश्चिमी सभ्यता के इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं का विवरण दिया है। पहली अवस्था प्राचीन यूनान और रोम की सभ्यताओं में देखने को मिलती है। इसकी विशेषता थी–

(क) बहुदेववादी विचारधारा (ख) दास-अर्थव्यवस्था
(ग) अखंड राजनीतिक शासन (घ) ये सभी

उत्तर (घ) ये सभी

प्र.14. सेंट साइमन ने पश्चिमी सभ्यता के इतिहास की जिस दूसरी अवस्था को बताया है, इसकी विशेषता थी–

(क) सामंतवाद (ख) कैथोलिक धर्म
(ग) राजनीतिक राजसत्ता (घ) (क) और (ख) दोनों

उत्तर (घ) (क) और (ख) दोनों

प्र.15. प्रत्यक्षवाद का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया?

(क) अगस्टे कॉम्टे (ख) वोलस्टोनक्राफ्ट (ग) बोउआर (घ) लक्जेमबर्ग

उत्तर (क) अगस्टे कॉम्टे

प्र.16. राजनीति विज्ञान में प्रत्यक्षवाद (Positivism) के सिद्धान्त का तात्पर्य है–

(क) राजनीति से प्राप्त होने वाले ज्ञान से
(ख) केवल वही ज्ञान प्रामाणिक ज्ञान (Authentic knowledge) है जो ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभव पर आधारित है
(ग) जो ज्ञान हमें पूर्व दार्शनिकों/महापुरुषों से प्राप्त हुआ है
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (ख) केवल वही ज्ञान प्रामाणिक ज्ञान (Authentic knowledge) है जो ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभव पर आधारित है ❑

TOUCH n PASS

UNIT-VIII

जॉन रॉल्स, माइकल ओकशॉट और हाना आरेंट

John Rawls, Michael Oakeshott and Hannah Arendt

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. जॉन रॉल्स के कोई पाँच कार्य लिखिए।
Write any five works of John Rawls?

उत्तर जॉन रॉल्स के कार्य निम्न प्रकार हैं—

1. रॉल्स ने अपनी पुस्तक 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' में न्याय के विषय पर उदारवादी सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसे 'निष्पक्षता के रूप में न्याय' का नाम दिया।
2. रॉल्स का उपर्युक्त कार्य न्याय के विषय पर विश्व को एक अविस्मरणीय योगदान है।
3. रॉल्स के इस सिद्धांत ने राजनीतिक सिद्धांत एवं दर्शन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण बदलाव किये।
4. रॉल्स के उपर्युक्त सिद्धांत ने स्वतंत्रता, समानता, न्याय व अधिकार के मुद्दे पर समाज में नवीन बहस को जन्म दिया।
5. इसके अलावा इस सिद्धांत ने राजनीतिक सिद्धांत के पतन को उत्थान में परिवर्तित करने का कार्य किया।

प्र.2. जॉन रॉल्स के विचारों की प्रासंगिकता लिखिए।
Write the relevance of the thoughts of John Rawls.

उत्तर जॉन रॉल्स के विचारों की प्रासंगिकता निम्न प्रकार हैं—

1. रॉल्स जीवन भर न्याय के सिद्धांत की स्थापना में लगे रहे तथा उन्होंने सामाजिक विषमता से मुक्त समानता आधारित समाज की संकल्पना प्रस्तुत की।
2. गौरतलब है कि भारतीय समाज के लिये समानता का विचार अत्यधिक प्रासंगिक है क्योंकि भारतीय समाज में विविधता होने के साथ-साथ विषमताएँ व्याप्त हैं।
3. रॉल्स के अनुसार, न्याय उसी प्रकार सामाजिक संस्थाओं का सर्वप्रथम सद्गुण है, जिस प्रकार सत्य सभी न्याय व्यवस्थाओं का गुण है।
4. उनका कहना है कि कोई भी सिद्धांत चाहे कितना भी आकर्षक एवं लाभकारी क्यों न हो, वह असत्य होने पर निश्चित ही खारिज एवं संशोधित कर दिया जाएगा।

प्र.3. जॉन रॉल्स का क्या सिद्धान्त है?
What is the theory of John Rawls?

उत्तर जॉन रॉल्स का न्याय का सिद्धांत एक ऐसा सिद्धांत है जिसमें उन्होंने न्याय को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इसमें, वह एक काल्पनिक परिदृश्य का प्रस्ताव करता है जहाँ लोगों का एक समूह अपने या दूसरों के सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक या मानसिक कारकों से अनभिज्ञ होकर अपने लिए कानून बनाने के लिए एक साथ आता है।

प्र.4. रॉल्स के अनुसार राजनीतिक उदारवाद क्या है?
What is political liberalism according to Rawls?

उत्तर रॉल्स यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि न्याय के उनके दो सिद्धांत, ठीक से समझे गए, एक 'अधिकार का सिद्धांत' (अच्छे के सिद्धांत के विपरीत) का निर्माण करते हैं, जो सभी उचित व्यक्तियों द्वारा समर्थित होगा, यहाँ तक कि उचित बहुलवाद की शर्तों के तहत भी।

प्र.5. सिमोन डी बेवॉयर की संक्षिप्त जीवनी लिखिए।
Write in short a life sketch of Simon de-Beauvoir.

TOUCH 'n PASS

उत्तर सिमोन डी बेवॉयर का जन्म 1908 में फ्रांसीसी राजधानी पेरिस में हुआ था। अपनी युवावस्था के दौरान उन्होंने सोरबोनम में पहले दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया और फिर इकोले नॉर्मले सुप्रीयर में इस दूसरी संस्था में उनकी मुलाकात जीन पॉल सार्त्र से हुई, और उस क्षण में उन्होंने एक भावनात्मक रिश्ता शुरू किया जो जीवन भर चला। अंतत: 1986 में पेरिस में उनका निधन हो गया।

सार्त्र के अस्तित्ववादी प्रभावों को देखा जाता है दूसरा सेक्स, बेवॉयर के सबसे प्रसिद्ध काम, हालाँकि लिंग अध्ययन के लिए इस परिप्रेक्ष्य का आवेदन पूरी तरह से मूल था, जैसा कि हम देखेंगे। दूसरी ओर नारीवाद के लिए एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक निकाय विकसित करने के अलावा यह दार्शनिक एक उपन्यासकार भी था।

प्र.6. सिमोन के प्रमुख कार्य बताइए।

State the main works of Simone.

उत्तर 'द सेकंड सेक्स' उनका सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक कार्य है और आज तक महिलाओं के उत्पीड़न और मुक्ति से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण विषय माना जाता है।

मंदारिन को उसकी सबसे सफल किताबों में से एक माना जाता है और उसे फ्रांस का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार, 'प्रिक्स गोंकोर्ट' भी मिला है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. रॉल्स के न्याय-सिद्धांत की आलोचना कीजिए।

Critically evaluate Rawls' theory of justice.

उत्तर

रॉल्स के न्याय-सिद्धान्त का मूल्यांकन
(Evaluation of Rawls's Theory of Justice)

अनेक आलोचकों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से रॉल्स के न्याय-सिद्धांत की आलोचना की है—

समष्टिवादियों (Collectivists) के अनुसार, रॉल्स का न्याय-सिद्धांत परंपरागत उदारवादी-पूँजीवादी व्यवस्था के औचित्य की पुष्टि करता है जिसमें यह माना जाता है कि धनवान् लोगों को धन संचित करने की स्वतंत्रता प्राप्त होने पर निर्धन लोगों को भी लाभ होता है। इससे धनवान् वर्ग के विशेषाधिकारों को कायम रखने में सहायता मिलती है। रॉल्स ने अवसर की उचित समानता का जो सिद्धांत रखा है, उसे कठोरतापूर्वक लागू करने पर भी धनवान और निर्धन वर्गों के अंतर को कम नहीं किया जा सकता। हीनतम लोगों की स्थिति में मामूली-से-मामूली सुधार दिखाई देने पर यह सिद्धांत भारी सामाजिक-आर्थिक विषमताओं की अनुमति दे देता है। रॉल्स के न्याय-सिद्धांत पर एक और आपत्ति यह की जाती है कि हीनतम स्थिति वाले लोगों की पहचान बहुत मुश्किल है। रॉल्स ने अपने विवेचन में यह स्पष्ट नहीं किया है कि व्यक्तियों या समूहों को किस-किस आधार पर हीनतम माना जाएगा? यदि केवल आय और संपदा के आधार पर इनकी पहचान की जाएगी तो अन्य दृष्टियों से जरूरतमंद लोगों पर हमारा ध्यान ही न जाएगा। उदाहरण के लिए, जिनमें योग्यता या प्रतिभा की कमी है या जो भावात्मक असुरक्षा (Emotional Insecurity) से पीड़ित हैं, उनके अभावों की पूर्ति (Compensation) कैसे की जाएगी?

मार्क्सवादियों (Marxists) के अनुसार, आर्थिक और सामाजिक तथ्यों की जानकारी के बिना न्याय के सिद्धांत निर्धारित करना युक्तिसंगत नहीं है। रॉल्स ने न्याय के नियमों का पता लगाने के लिए मनुष्यों को एक काल्पनिक 'मूल स्थिति' में रखा है जहाँ उन्हें सामाजिक-आर्थिक तथ्यों की जानकारी नहीं होती, और वे इस बारे में 'अज्ञान के पर्दे' के पीछे सारी विचारणा करते हैं। मार्क्सवादियों के अनुसार नैतिक व्यवस्थाओं को केवल वर्ग-संबंधों (Class Relations) और स्वामित्व की प्रणालियों (Ownership Systems) के संदर्भ में समझा जा सकता है। तथाकथित 'अज्ञान के पर्दे' के पीछे सारी विचारणा निराधार है।

स्वेच्छातंत्रवादियों (Libertarians) के अनुसार, रॉल्स ने समानता पर अत्यधिक बल देते हुए मनुष्य की स्वतंत्रता का बलिदान कर दिया है। अधिक योग्य और प्रतिभाशाली व्यक्तियों को हीनतम व्यक्तियों के लाभ के लिए काम करने को विवश क्यों किया जाए? फिर, उद्यमशील मनुष्य जोखिम उठाकर ही उन्नति कर पाता है। रॉल्स के तथाकथित वार्ताकार तनिक भी जोखिम उठाने को तैयार नहीं हैं। ऐसे लोग समाज की क्या उन्नति कर पाएँगे!

समुदायवादियों (Communitarians) के अनुसार, रॉल्स का राजनीति-दर्शन उत्तम जीवन (Good Life) की किसी भी संकल्पना को दूसरों के श्रेष्ठ या हीन मानने का दावा नहीं करता। ऐसी नैतिक तटस्थता (Ethical Neutrality) की नीति अपना कर यह ऐसी जीवन प्रणाली अपनाने का अवसर खो देता है जो सामान्य शुभ (Common Good) को समर्पित हो।

TOUCH 'n' PASS

प्र.2. रॉल्स की तर्क-प्रणाली का उल्लेख कीजिए।
Mention the Rawls' methodology.

उत्तर

रॉल्स की तर्क-प्रणाली
(Rawls' Methodology)

रॉल्स ने न्याय के नियमों का पता लगाने के लिए, अनुबंधमूलक समाज-दर्शन (Contractarian Social Philosophy) का सहारा लिया है। इसके अंतर्गत उसने यह कल्पना की है कि यदि व्यक्तियों को उनकी वर्तमान सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से पृथक् कर दिया जाए और समाज में प्रचलित भेदभाव (Discrimination) से भी अपरिचित रहने दिया जाए तो वे भावी समाज में अपने हितों की अधिकतम वृद्धि के लिए सामाजिक जीवन के नियमों, सिद्धांतों और संस्थाओं का पुनर्निर्माण किस प्रकार करेंगे? इस काल्पनिक स्थिति को रॉल्स ने मूल स्थिति (Original Position) की संज्ञा दी है। ऐसी स्थिति में लोग परस्पर सहमति से जो नियम स्वीकार करेंगे, उन्हें विश्वव्यापी आधार पर न्याय के नियम मान सकते हैं।

मूल स्थिति का वर्णन करते हुए रॉल्स ने यह कल्पना की है कि मनुष्य अज्ञान के पर्दे (veil of Ignorance) के पीछे बैठे हैं। यह एक काल्पनिक स्थिति है जिसमें मनुष्य अपनी-अपनी आवश्यकताओं (Wants), हितों (Interests) निपुणताओं (Skills), योग्यताओं (Abilities), इत्यादि से बिल्कुल बेखबर होते हैं। वे यह भी नहीं जानते कि वास्तविक समाज में कौन-कौन-सी बातें संघर्ष (Conflict) पैदा करती हैं। अत: यदि उन्हें यह मालूम हो कि वे श्वेत या अश्वेत हैं, प्रोटेस्टेंट या कैथोलिक हैं, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि उन्हें यह पता नहीं होगा कि समाज में किस-किस आधार पर भेदभाव बरता जाता है? परंतु उन्हें अर्थशास्त्र (Economics) और मनोविज्ञान (Psychology) का आरंभिक ज्ञान होता है, और उनमें न्याय की चेतना (Sense of Justice) भी पाई जाती है।

अज्ञान के पर्दे के पीछे मनुष्यों पर कुछ प्रतिबंध अवश्य लगे रहते हैं जो नैतिकता के विचार के साथ जुड़े हैं। परंतु उन्हें उन बातों की जानकारी नहीं होती जो उनके मन में परस्पर विरोध या पूर्वग्रह (Prejudice) पैदा कर सकती हैं। रॉल्स ने मूल स्थिति में जिन मनुष्यों की कल्पना की है, वे विवेकशील कर्त्ता (Rational Agents) हैं जो न्याय के नियमों के बारे में परस्पर सहमति पर पहुँचने के लिए एकत्र हुए हैं। वे स्वार्थपरायण (Self-Interested) तो हैं, परंतु अहंवादी (Egoist) नहीं। नैतिक नियमों से बँधे रहने के कारण वे इतने अहंकेंद्रित (Self-Centred) नहीं हो सकते कि हर तरह से स्वार्थ साधन के लिए तैयार हो जाएँ। दूसरे शब्दों में, उनकी स्वार्थ भावना पर नैतिक भावना का अंकुश रहता है। वे ईर्ष्यालु (Envious) भी नहीं हैं; वे केवल अपने-अपने लिए प्राथमिक वस्तुओं (Primary Goods) की अधिकतम वृद्धि चाहते हैं; दूसरों को ये वस्तुएँ कितनी मात्रा में मिलती हैं—इससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। प्राथमिक वस्तुओं में अधिकार और स्वतंत्रताएँ (Rights and Liberties), शक्तियाँ और अवसर (Powers and Opportunities), आय और संपदा (Income and Wealth) तथा आत्मसम्मान (Self Respect) के साधन सम्मिलित हैं। इन मनुष्यों की एक और विशेषता यह है कि वे जोखिम उठाने या जुआ खेलने (Gambling) को तैयार नहीं होंगे, क्योंकि अज्ञान के पर्दे के पीछे वे यह नहीं जानते कि वे कितना दाँव लगा सकते हैं। इस अनिश्चितता की स्थिति में उनके सामने जो भी विकल्प होंगे, उनमें से वे सबसे कम खतरनाक रास्ता चुनेंगे।

प्र.3. माइकल ओकशॉट के तर्कबुद्धिवाद पर प्रहार का उल्लेख कीजिए।
Mention the attack on rationalism of Michael Oakeshott.

उत्तर

माइकल ओकशॉट का तर्कबुद्धिवाद पर प्रहार
(Attack on Rationalism of Michael Oakeshott)

तर्कबुद्धिवाद केवल तर्कबुद्धि (Reason) की सहायता से सृष्टि को संचालित करने वाले नियमों का पता लगाने का दावा करता है। सामाजिक जीवन में इसके प्रयोग का अर्थ यह है कि हम ऐसे सर्वोपरि नियम का पता लगा लें जो संपूर्ण सामाजिक गतिविधि को संचालित करता है; उसके अनुरूप अपना लक्ष्य निर्धारित कर लें; फिर संपूर्ण सामाजिक जीवन को उसी के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करें। ओकशॉट के विचार से ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि सामाजिक जीवन के लिए उपयुक्त नियमों की तलाश उसके भीतर करनी चाहिए; उन्हें बाहर से लाकर उसपर ऊपर से नहीं थोपना चाहिए।

ओकशॉट के अनुसार अनुभववादी (Empiricists) और तर्कबुद्धिवादी (Rationalists) राजनीतिक जीवन की दो बुनियादी संकल्पनाओं-समय (Time) और ज्ञान (Knowledge) का गलत अर्थ लगाते हैं। अनुभववादियों के अनुसार, समय 'अनजुड़े क्षणों की शृंखला' (Series of Disjointed Moments) है; तर्कबुद्धिवादियों के अनुसार, यह अवास्तविक (Unreal) है। अनुभववादियों के अनुसार, ज्ञान 'सूचनाओं का गट्ठर' (Bundle of Information) है; तर्कबुद्धिवादियों के अनुसार, यह 'समयहीन सामान्य सत्य-सिद्धांतों का समुच्चय' (Body of timeless general truths) है। इनमें से कोई भी यह नहीं

समझता कि समय के बारे में समुदाय की धारणा के निर्माण में, या इतिहास के निरंतर प्रवाह में परंपरा (Tradition) क्या भूमिका निभाती है? समुदाय के कार्य-संचालन के लिए जिस व्यावहारिक ज्ञान की जरूरत होती है, वह उसे परंपरा से ही प्राप्त होता है, किसी बाह्य स्रोत से नहीं।

ओकशॉट के विचार से, सामाजिक संस्थाएँ इसलिए स्थापित नहीं की जातीं ताकि उनके दायरे में राजनीतिक चिंतन और गतिविधि संपन्न की जा सके। वास्तव में ये संस्थाएँ स्वयं सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग हैं। अत: आंग्ल-अमेरिकी प्रतिनिधि शासन (Anglo-American Representative Government) की व्यवस्था को किसी अन्य साध्य का साधन या किसी विशेष समस्या का समाधान नहीं समझना चाहिए। उसे ऐसे 'राजनीतिक साहचर्य' के रूप में देखना चाहिए जो अपने-आप में साध्य भी है, साधन भी; जो स्वयं एक समस्या है, और समाधान भी।

प्र.4. हाना आरेंट के राजनीतिक विचारों के महत्त्व को बताइए।
State the importance of political thoughts of Hannah Arendt.

उत्तर

हाना आरेंट के राजनीतिक विचारों का महत्त्व
(Importance of Political Thoughts of Hannah Arendt)

परम्परावादी दार्शनिक विचारधारा में हन्ना आरेंट का महत्व निम्नलिखित विचारों के आधार पर समझा जा सकता है—

1. **मानव के मानसिक तथा वैयक्तिक पक्षों पर बल**—एक साहित्यकार होने के कारण उन्होंने व्यक्ति के मानसिक अथवा वैयक्तिक पक्षों को अस्तित्ववादियों के समान प्रमुखता प्रदान की है। मानव की वैयक्तिक तथा आन्तरिक समस्याओं को समझने के लिए एक विशेष परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता होती है। मनुष्य की चेतना तथा अनुभव हेतु तार्किक अन्वेषण अथवा वैज्ञानिक चिन्तन उपयोगी नहीं होता।
2. **भावना की भौतिक गतिविधि में निष्ठा**—आरेंट अमूर्त विचारों के प्रति अरुचि अभिव्यक्त करती है तथा भावना की भौतिक गतिविधि में निष्ठा अभिव्यक्त करती है। व्यक्तिनिष्ठ अनुभूति को क्रमबद्ध नहीं किया जा सकता उसको केवल यथार्थ रूप से अनुभव किया जा सकता है। भावना एक आन्भाविक तथ्य है। यह व्यवहारवाद को मशीनी कुशलता का प्रेरक तथा सर्वाधि कारवाद की ओर ले जाने वाली विचारधारा मानती है।
3. **अबौद्धिकतावादी एवं अस्तित्ववादी विचारों का विरोध**—आरेंट के अनुसार, अबौद्धिकतावादी एवं अस्तित्ववादी विचारकों ने जिन तर्कों से मतैक्य द्वारा समर्थित तथा जनसहभाग द्वारा परिचालित जिस उदारवादी राज्य की सम्भावना का विवेचन किया है वह अधिक स्थायी नहीं माना जा सकता। उससे अराजकता का निमन्त्रण प्राप्त होता है तथा सर्वाधिकारी व्यवस्थाओं की स्थापना होती है। इसलिए मूल समस्या यह है कि ऐसी संस्थाओं का निर्माण किया जाए जो एक साथ ही सार्वजनिक कार्यों में संलग्न व्यक्तियों में एकता के साथ-साथ उनके व्यक्तिगत जीवन को अर्थ भी प्रदान करें।
4. **रोमन युगीन विचारधारा का समर्थक**—रोमन युग में सत्ता, धर्म तथा परम्परा को मिलाकर एक सामाजिक राजनीतिक सम्मिश्रण तैयार किया गया था। इसी त्रयी के प्रति निष्ठा में पश्चिमी मनुष्य के अनेक भयानक संकटों तथा आक्रमणों के होते हुए भी अस्तित्व को अर्थ प्रदान किया था। आरेंट की दृष्टि से यह अतिकालीन संश्लेषण उच्चतम एकत्व का प्रतीक है। वर्तमान में, हम केवल क्रान्तियों के समय में ही अपने जीवन को अर्थ प्रदान करने का प्रयास करते हैं। अतीत काल में यह त्रयी जीवन को निरन्तर अर्थ प्रदान करता था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. रॉल्स के न्याय के मूल-सिद्धांत और लक्षणों का वर्णन कीजिए।
Describe the basic principle and features of Rawls' justice.

उत्तर

जॉन रॉल्स
(John Rawls)

जॉन रॉल्स (1921-2002) की प्रसिद्ध कृति 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' (न्याय का सिद्धांत) (1971) संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रकाशित हुई। यह ऐसा अवसर था जब वहाँ अल्पसंख्यक वर्गों के लिए (विशेषत: अश्वेत जातियों के लिए) समान अधिकारों का आंदोलन अपने पूरे उत्कर्ष पर था, और तरह- तरह की राजनीतिक असहमति (Political Dissent) का बोलबाला था। साथ ही

TOUCH 'n' PASS

यह भी अनुभव किया जाने लगा था कि पूँजीवादी और मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ वस्तुओं और सेवाओं को जुटाने में चाहे कितनी ही कार्यकुशल क्यों न हों, उन्होंने आय, संपदा और शक्ति की ऐसी विषमताएँ (Inequalities of Income, Wealth and Power) पैदा कर दी थीं जिन्हें कहीं भी उचित नहीं माना जा सकता था। जो आमूल-परिवर्तनवादी (Radicals) आर्थिक विषमताओं के उन्मूलन के लिए राजनीतिक कार्रवाई की माँग कर रहे थे, वे अपने वक्तव्यों में बार-बार न्याय की दुहाई देते थे। अत: प्रस्तुत संदर्भ में न्याय का पुनर्विवेचन जरूरी था। रॉल्स की कृति में न्याय के अमूर्त और दार्शनिक सिद्धांत को ऐसे रूप में उभारा गया जिसके अंतर्गत अधिकारों तथा आय और संपदा के वितरण के क्षेत्र में नीति-निर्माण के लिए ठोस सुझाव प्रस्तुत किए गए थे।

न्याय के मूल सिद्धांत (Principles of Justice)

रॉल्स के अनुसार, मूल स्थिति की उपर्युक्त शर्तें पूरी होने पर चूँकि प्रस्तुत वार्ताकार (Negotiators) कोई जोखिम उठाने को तैयार नहीं होंगे, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को यह अंदेशा रहेगा कि वास्तविकता प्रकट होने पर वह अपने-आपको 'हीनतम स्थिति' (The Least Advantaged Position) में पा सकता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति यह माँग करेगा कि जो 'हीनतम स्थिति' में है, उसके लिए 'अधिकतम लाभ' (Greatest Benefit) की व्यवस्था होनी चाहिए। अत: अपनी-अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए सब लोग न्याय के निम्नलिखित नियम स्वीकार करेंगे—

1. प्रत्येक व्यक्ति को सबसे विस्तृत स्वतंत्रता का ऐसा समान अधिकार प्राप्त होगा जो दूसरों की वैसी ही स्वतंत्रता के साथ निभा सकता हो; (Principle of Equal Liberty)
2. सामाजिक और आर्थिक विषमताओं का क्रम-विन्यास इस तरह से किया जाएगा कि—
   (क) इनसे हीनतम स्थिति वाले लोगों (The Least Advantaged) भेदमूलक सिद्धांत (Difference Principle) को अधिकतम लाभ (Greatest Benefit) हो, और
   (ख) ये विषमताएँ उन पदों और स्थितियों पर लागू होंगी जो सबके लिए अवसर की उचित समानता का सिद्धांत (Principle) सुलभ हों, शर्त यह है कि इसमें अवसर की उचित समानता (Fair of Fair Equality of Opportunity Equality of Opportunity) के नियम का पालन किया जाएगा।

इन सिद्धांतों को एक विशेष पूर्वताक्रम (Priority) से रखना जरूरी है। सिद्धांत (1) को (2) से प्राथमिकता दी जाएगी, और सिद्धांत (2) के अंतर्गत धारा (ख) को (क) से प्राथमिकता दी जाएगी। इसका मतलब यह है कि यदि प्रस्तुत स्थिति में इन सिद्धांतों का प्रयोग करने पर कई परस्पर विरोधी विकल्प सामने आ जाएँ तो उनमें से उपयुक्त विकल्प का चयन इस पूर्वता के नियम के अनुसार किया जाएगा। उदाहरण के लिए, आर्थिक विकास के किसी निर्दिष्ट स्तर पर सिद्धांत (2) में निहित किसी आर्थिक फायदे के लिए सिद्धांत (1) में निहित स्वतंत्रता (जैसे कि, समान मताधिकार) का बलिदान करना तर्कसंगत नहीं होगा।

समान स्वतंत्रताओं का सिद्धांत (Principle of Equal Liberties)

न्याय के प्रथम सिद्धांत में निहित समान स्वतंत्रताओं को उन अधिकारों के रूप में पहचान सकते हैं जो उदार-लोकतंत्रीय प्रणालियों (Liberal Democratic Systems) के अंतर्गत पाए जाते हैं। इनमें राजनीतिक सहभागिता (Political Participation) का समान अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (Freedom of Expression), धार्मिक स्वतंत्रता (Religious Liberty), कानून के समक्ष समानता (Equality before the Law), इत्यादि सम्मिलित हैं। रॉल्स ने यह स्वीकार किया है कि कुछ समान स्वतंत्रताओं में केवल इस शर्त पर कमी की जा सकती है कि इससे स्वतंत्रता की कुल मात्रा में वृद्धि होनी चाहिए।

सामाजिक-आर्थिक विषमताओं का क्रमविन्यास (Arrangement of Social-Economic Inequalities)

न्याय के दूसरे सिद्धांत के अंतर्गत रॉल्स ने अवसर की उचित समानता को न्याय की पहली शर्त माना है। यह शर्त पूरी हो जाने के बाद भेदमूलक सिद्धांत का प्रयोग शुरू होता है। इसमें सबसे पहले यह मानकर चलते हैं कि प्राथमिक वस्तुओं का समान वितरण होना चाहिए। इस नियम से किसी तरह की छूट (Departure) को तभी उचित ठहराया जा सकता है जब उसका परिणाम स्पष्ट लाभ के रूप में सामने आए। रॉल्स के अनुसार, बाजार प्रणाली (Market System) के अंतर्गत आय की विषमताएँ श्रम को सबसे अधिक उत्पादनमूलक कार्यों की ओर आकर्षित करके संपदा को बढ़ाती हैं। आदर्श स्थिति में इससे प्रत्येक व्यक्ति को लाभ होना चाहिए। परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। न्याय की शर्त पूरी करने के लिए इस प्रक्रिया से हीनतम स्थिति वाले लोगों को अधिकतम लाभ होना चाहिए। अत: यह सिद्धांत उन सामाजिक नीतियों का अनुमोदन करता है जो विशेष रूप से निर्बल और निर्धन लोगों को लाभ पहुँचाने के लिए बनी हों । असाधारण प्रतिभाशाली लोगों को उच्च आय का अधिकार भी इसी शर्त पर दिया जा

सकता है। परंतु यह शर्त पूरी हो जाने के बाद प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था (Competitive Economy) के अंतर्गत कार्यकुशलता के मानदंड को लागू किया जा सकता है।

उपयोगितावाद का खंडन (Repudiation of Utilitarianism)

रॉल्स ने अपने न्याय-सिद्धांत के अंतर्गत उपयोगितावाद के विभिन्न रूपों का विरोध किया है। उसने तर्क दिया है कि उपयोगितावाद का ध्येय कुल उपयोगिता की अधिकतम वृद्धि (Maximization of Total Utility) है, चाहे उसका वितरण किसी भी रूप में क्यों न हो। इसमें कोई व्यक्ति यह नहीं सोच सकता कि उसे इससे अवश्य लाभ होगा। 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' (Greatest Happiness of the Greatest Number) का हिसाब लगाते समय समाज के किस सदस्य के सुख की अनदेखी कर दी जाएगी—यह कोई नहीं जान सकता। यह संभव है कि समाज में एक व्यक्ति को दूसरों का दास बना कर 'अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख' का लक्ष्य पूरा कर सकते हों, परंतु इस प्रक्रिया में किसे दास बनना पड़ेगा—यह कोई नहीं जानता। यदि मूल स्थिति में, 'अज्ञान के पर्दे' के पीछे, विवेकशील वार्ताकारों (Rational Negotiators) के सामने उपयोगितावादी प्रस्ताव रखा जाएगा तो वहाँ प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वामी या दास बनने की संभावनाएँ बराबर होंगी। ऐसी हालत में कोई भी व्यक्ति दास बनने का जोखिम उठाने को तैयार नहीं होगा। अत: इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जाएगा। रॉल्स की न्याय-व्यवस्था के अनुसार, सुखी लोगों के सुख को चाहे कितना ही क्यों न बढ़ा दें, उससे दु:खी लोगों के दु:ख का हिसाब बराबर नहीं किया जा सकता।

न्याय के लक्षण
(Characteristics of Justice)

रॉल्स के न्याय-सिद्धांत के अंतर्गत न्याय के अनेक लक्षण स्वीकार किए गए हैं—

न्याय समाज का प्रथम सद्गुण है (Justice is the First Virtue of Society)

रॉल्स ने यह तर्क दिया है कि उत्तम समाज (Good Society) में अनेक सद्गुण अपेक्षित हैं; उनमें न्याय का स्थान सर्वप्रथम है। दूसरे शब्दों में, न्यायपूर्ण समाज और उत्तम समाज एक ही बात नहीं है। न्याय उत्तम समाज की आवश्यक शर्त (Necessary Condition) है, परंतु यह उसकी पर्याप्त शर्त (Sufficient Condition) नहीं है। समाज में न्याय के अलावा दूसरे नैतिक गुणों की प्रधानता हो सकती है, परंतु अन्यायपूर्ण समाज विशेष रूप से निंदनीय होगा। न्याय के नियम किसी समाज को जितनी दृढ़ता से बांधते हैं, उतनी दृढ़ता अन्य नैतिक गुणों में नहीं पाई जाती। अन्य नैतिक गुण सराहनीय हो सकते हैं, परंतु वे न्याय की तरह मनुष्य के लिए बाध्यकर (Binding) नहीं होते। उदाहरण के लिए, परोपकार (Charity) एक उत्तम गुण है, और उसकी प्रशंसा भी की जानी चाहिए। परंतु समाज में किसी को परोपकार के लिए विवश तो नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर, मनुष्यों को न्याय के नियमों का पालन करने के लिए विवश कर सकते हैं। रॉल्स के अनुसार, नैतिक और सामाजिक दर्शन (Moral and Social Philosophy) के अंतर्गत 'न्यायसंगत' (Just) और 'उचित' (Right) के बीच गहरा संबंध है, और 'उचित' का स्थान 'उत्तम' या 'शुभ' (Good) से पहले है (The Right is prior to the Good)। आज के युग में कहीं-कहीं 'शुभ' के नाम पर 'उचित' की उपेक्षा कर दी जाती है, जैसे कि बहुमत के लाभ के लिए अल्पमत का दमन किया जा सकता है, जो कि सर्वथा अनुचित है। जब कुछ आमूल परिवर्तनवादी यह माँग करते हैं कि सामाजिक उन्नति के कार्यक्रम में न्याय के विचार को आड़े नहीं आने देना चाहिए तो वे समाज को नैतिक पतन की ओर ले जाने का खतरा मोल ले रहे होते हैं।

प्रक्रियात्मक न्याय की प्रधानता (Primacy of Procedural Justice)

रॉल्स ने अपने न्याय-सिद्धांत को शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय (Pure Procedural Justice) की कोटि में रखा है। इसका अर्थ यह है कि जब न्याय के ये सिद्धांत सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिए जाएँगे तब इनके परिणामस्वरूप जो भी वितरण-व्यवस्था अस्तित्व में आएगी, वह अनिवार्यत: न्यायपूर्ण होगी। रॉल्स ने प्रक्रियात्मक न्याय के तीन रूपों की पहचान की है—(क) पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय (Perfect Procedural Justice)—इसके अंतर्गत वस्तुओं के उपयुक्त वितरण के स्वाधीन मानदंड (Independent Criterion of Fair Distribution) के साथ-साथ ऐसी प्रक्रिया भी निर्दिष्ट कर दी है जो निश्चित रूप से उस लक्ष्य की पूर्ति करती है; (ख) अपूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय (Imperfect Procedural Justice)—इसमें उपयुक्त वितरण का स्वाधीन मानदंड तो रखा जाता है, परंतु उसकी निश्चित सिद्धि की प्रक्रिया निर्दिष्ट नहीं की जाती; और (ग) शुद्ध

प्रक्रियात्मक न्याय (Pure Procedural Justice)—इसमें उपयुक्त वितरण का स्वाधीन मानदंड निर्दिष्ट नहीं किया जाता, बल्कि केवल उपयुक्त विधियों और प्रक्रियाओं की व्यवस्था की जाती है। रॉल्स का न्याय-सिद्धांत इसलिए शुद्ध प्रक्रियात्मक है क्योंकि इसमें केवल वितरण की प्रक्रिया को न्यायसंगत बनाने का प्रयत्न किया गया है; उससे कोई पूर्व-निर्धारित परिणाम प्राप्त करने का आग्रह नहीं किया गया है। इस तरह इसमें 'योग्यता के अनुसार आबंटन' (Allocation according to Desert) या 'आवश्यकता के अनुसार आबंटन' (Allocation according to Need) जैसे विवाद की कोई गुंजाइश नहीं रह गई है। मूल स्थिति के वार्ताकार योग्यता या आवश्यकता पर आधारित भेदभाव से परिचित ही नहीं हैं, अत: वे इस बारे में कोई निर्णय देने की क्षमता नहीं रखते।

शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय के विचार को व्यावहारिक रूप देने के लिए रॉल्स ने ऐसे संस्थात्मक ढाँचे का विवरण दिया है जो न्याय की स्थापना में सहायक होगा। इसमें एक ओर प्रतिस्पर्धात्मक बाजार अर्थव्यवस्था (Competitive Market Economy) रहेगी, दूसरी ओर सरकार की हस्तांतरण शाखा (Transfer Branch) बुनियादी सामाजिक न्यूनतम (Basic Social Minimum) की व्यवस्था करेगी, और एक अन्य शाखा एकाधिकार-निर्माण (Formation of Monopolies) को रोकेगी। ऐसी ही अन्य शाखाएँ भी होंगी। रॉल्स का दावा है कि जब ये संस्थाएँ कार्य करने लगेंगी, तब यह देखने की जरूरत नहीं रहेगी कि इसके परिणामस्वरूप किन-किन व्यक्तियों को कौन-कौन-सी वस्तुएँ मिलेंगी? न्यायपूर्ण प्रक्रिया का परिणाम होने के कारण यह वितरण अपने-आप न्यायपूर्ण माना जाएगा।

सामाजिक न्याय से सरोकार (Concern with Social Justice)

रॉल्स का प्रक्रियात्मक न्याय-सिद्धांत ऐसे अन्य सिद्धांतों से सर्वथा भिन्न है। प्रक्रियात्मक न्याय-सिद्धांत के अन्य प्रवर्त्तक साधारणत: यह तर्क देते हैं कि समाज में उत्पादन के स्तर पर जो विषमताएँ पैदा होती हैं, उन्हें वितरण के स्तर पर बदलने का प्रयास नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए, एफ.ए. हेयक (1899-1992), रॉबर्ट नॉजिक (1938-2002) और अन्य स्वेच्छातंत्रवादियों (Libertarians) ने यही तर्क दिया है। परंतु रॉल्स ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया है। मजदूरी (Wages) के निर्धारण में तो रॉल्स ने सीमांत उत्पादकता सिद्धांत (Marginal Productivity Theory) का पर्याप्त प्रयोग किया है और यह भी स्वीकार किया है कि इस सिद्धांत का प्रयोग करके लोगों की नैसर्गिक प्रतिभा को सबके हित में सर्वोत्तम उपयोग के लिए आकर्षित किया जा सकता है, फिर भी उसने यह माँग की है कि बाजार के नियमों को सदैव न्याय के सिद्धांतों के नियंत्रण में रखा जाना चाहिए।

सीमांत उत्पादकता सिद्धांत (Marginal Productivity Theory)

अर्थशास्त्र का यह सिद्धांत कि जो उद्योगपति अपने लाभ की अधिकतम वृद्धि चाहता है, वह जो नया मजदूर रखेगा, उसकी उत्पादकता पिछले मजदूर से कम होगी। एक जगह आकर नए मजदूर का योगदान उसे दी जाने वाली मजदूरी (Wages) के बराबर हो जाएगा। इसके बाद नया मजदूर रखने की गुंजाइश खत्म हो जाएगी।

रॉल्स के न्याय-सिद्धांत के अंतर्गत केवल ऐसी विषमताओं का समर्थन किया गया है जिनसे हीनतम व्यक्तियों (Individuals) या वर्गों (Sections) को यथेष्ट लाभ हो। वस्तुओं, अवसरों और लाभों के वितरण में निर्बल, निर्धन और असहाय वर्गों के हितों का ध्यान रखना सामाजिक न्याय का लक्षण है। रॉल्स ने वास्तविक वितरण को गौण मानते हुए वितरण की प्रक्रिया को न्यायसंगत बनाने पर बल दिया है, और इसलिए उसने अपने सिद्धांत को शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय की कोटि में रखा है। परंतु जब वितरण की प्रक्रिया में हीनतम स्थिति वाले लोगों का इतना ध्यान रखा जाएगा तो उसके परिणामस्वरूप वास्तविक वितरण भी सामाजिक न्याय के विरुद्ध नहीं हो सकता।

रॉल्स के तर्क का सार यह है कि विशेष प्रतिभाशाली लोग विशेष पुरस्कार के अधिकारी तभी माने जाएँगे जब वे अपनी प्रतिभा का प्रयोग करते हुए निर्बल और निर्धन लोगों की स्थिति को सुधारने में सहायक हों। परंतु वे ऐसा क्यों करेंगे? इस बारे में रॉल्स का कहना है कि सामाजिक जीवन को व्यक्तिगत लेन-देन (Individual Transactions) का जोड़ नहीं माना जा सकता। यह परस्पर सहयोग का क्षेत्र है जिसमें अधिक प्रतिभाशाली लोग कम प्रतिभाशाली लोगों के साथ मिलकर ही अपनी प्रतिभा तथा अवसरों का लाभ उठा सकते हैं। रॉल्स के अनुसार सामाजिक गतिविधि व्यक्तियों के परस्पर लेन-देन में ईमानदारी (Fair Play) तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सब लोगों को एक-दूसरे के साथ जोड़ देती है। यहाँ सबसे भाग्यशाली और सबसे भाग्यहीन लोगों के बीच 'शृंखला संबंध' (Chain Connection) कार्य करता है। प्रस्तावित व्यवस्था के अंतर्गत भाग्यशाली लोगों की आशाओं में कोई भी बढ़ोत्तरी होने पर संपूर्ण प्रणाली में प्रत्येक व्यक्ति की आशाओं पर इसका प्रभाव पड़ता है। मतलब यह कि ऐसी

TOUCH 'n' PASS

प्रोत्साहन-आधारित (Incentive-Based) बाजार प्रणाली हीनतम स्थिति वाले लोगों की हालत में भी अवश्य सुधार लाती है। परंतु जब तक परिवार संस्था कायम है, तब तक समाज में पूर्ण समानता लाना संभव नहीं हो सकता है, अधिक गंभीर विषमताएँ राजनीतिक व्यवस्था से जुड़े विशेषाधिकारों का परिणाम हों, स्वयं बाजार-व्यवस्था की देन न हों।

निष्कर्ष (Conclusion)

इन सब आलोचनाओं के बावजूद रॉल्स के न्याय-सिद्धांत की अनदेखी नहीं की जा सकती। देखा जाए तो रॉल्स ने न्याय के बारे में कुछ मर्मभेदी प्रश्न उठाए हैं और उनके समाधान का प्रयत्न किया है। उसने प्रक्रियात्मक न्याय के माध्यम से सामाजिक न्याय के लक्ष्य की पूर्ति का प्रयास किया है। उसके विचारों से दूसरों का मतभेद हो सकता है। परंतु उसने न्याय संबंधी चिंतन को एक नई दिशा दी है। इसका मुख्य संदेश यह है कि सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए न्याय की प्रक्रिया को सुदृढ़ करना आवश्यक है, और न्याय की प्रक्रिया निर्धारित करते समय सामाजिक न्याय के लक्ष्य को ध्यान में रखना जरूरी है। रॉल्स के आलोचक केवल अपने-अपने दृष्टिकोण को आगे रखते हैं।

प्र.2. माइकल ओकशॉट के राजनीतिक विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe the political thoughts of Oakeshott Michael.

उत्तर

माइकल ओकशॉट
(Michael, Oakeshott)

माइकल ओकशॉट (1901-90) समकालीन अंग्रेज राजनीतिक दार्शनिक है। वह 1952 में लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स के अंतर्गत राजनीति विज्ञान का प्रोफेसर बना जहाँ उसने हेरल्ड लास्की (1893-1950) की कुर्सी सँभाली। 1969 में वह वहाँ से सेवा-निवृत्त हुआ। ओकशॉट ने अनुभववाद (Empiricism) और तर्कबुद्धिवाद (Rationalism) पर प्रहार करके रूढ़िवाद (Conservatism) की नई व्याख्या प्रस्तुत की है। वस्तुत: ओकशॉट ने समकालीन समाज की समस्याओं और संकट का सजीव विवरण देते हुए रूढ़िवाद को अपनाने का नया आधार ढूँढ निकाला है। जो निम्न प्रकार हैं—

1. **अनुभववाद** (Empiricism)—वह सिद्धांत जो केवल ज्ञानेंद्रियों (Sense Organs) (आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा) से प्राप्त ज्ञान को प्रामाणिक मानता है; अन्य किसी तरह के ज्ञान को मान्यता नहीं देता।
2. **तर्कबुद्धिवाद** (Rationalism)—इस सिद्धांत के अनुसार सृष्टि एक नियत-निश्चित व्यवस्था है जो निर्विकार नियमों से बँधी है; तर्कबुद्धि (Reason) की सहायता से इन नियमों का पता लगा सकते हैं; अत: किसी घटना की एक ही प्रामाणिक व्याख्या हो सकती है।
3. **रूढ़िवाद** (Conservatism)—वह सिद्धांत जो चिरकाल से प्रचलित सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का सम्मान करता है। यह नए और बिना आजमाए हुए विचारों और संस्थाओं को अपनाने से संकोच करता है; उनकी जगह पुराने और आजमाए हुए विचारों और संस्थाओं को कायम रखने का समर्थन करता है।

राजनीति का स्वरूप (Nature of Politics)

ओकशॉट के अनुसार राजनीति दर्शन (Political Philosophy) का कार्य है—'मनुष्य की प्रकृति और सांसारिक नियति का अन्वेषण, समकालीन सभ्यता का आलोचनात्मक विश्लेषण और विवेचन, इत्यादि।' राजनीति ऐसी गतिविधि है जिसमें 'समाज की प्रचलित प्रथाओं की निकट जानकारी प्राप्त करके उनका अनुसरण किया जाता है (Pursuing the intimations of the existing traditions of behaviour)।' इसमें नित्य प्रति यह निर्णय नहीं किया जाता कि क्या किया जाए, कैसे किया जाए? यह अमूर्त सिद्धांतों या विचारों (Abstract Principles or Ideas) को कार्यान्वित करने का प्रयत्न भी नहीं है। राजनीतिक गतिविधि का ध्येय 'राज्य की नाव को गतिमान रखना है', धन-संपदा या समृद्धि बढ़ाना नहीं।

अपनी दो प्रसद्धि कृतियों 'रैशनालिज्म इन पॉलिटिक्स एंड अदर एस्सेज' (राजनीति में तर्कबुद्धिवाद तथा अन्य निबंध) (1962) और 'ऑन ह्यूमन कंडक्ट' (मानवीय आचरण का विवेचन) (1975) के अंतर्गत ओकशॉट ने 'नागरिक साहचर्य' (Civil Association) की ऐसी संकल्पना प्रस्तुत की है जिसमें रीति-रिवाज (Custom), पूर्वाग्रह (Prejudice) और परंपरा (Tradition) के प्रति रूढ़िवादी सम्मान को उदारवादी मूल्यों के साथ समन्वित किया गया है। ओकशॉट के विचार से राजनीतिक गतिविधि 'नागरिक साहचर्य' पर आश्रित है। यह न तो 'अनुबंध' (Contract) का परिणाम है, न यह परस्पर उद्देश्यों की पूर्ति (Mutuality of Purpose) का साधन है। इसकी व्याख्या के लिए वार्तालाप (Conversation) का प्रतिरूप (Model)

TOUCH 'n PASS

उपयुक्त होगा जिसके विकास का नियम कुछ हद तक उसके अपने भीतर से विकसित होता है। जैसे वार्तालाप के अंतर्गत बात में से बात निकलती है, और बात कहीं से कहीं पहुँच जाती है, वैसे ही समाज की गति उसे कहाँ-से-कहाँ ले जाएगी—इस बारे में कोई पहले से कुछ नहीं बता सकता।

ओकशॉट के अनुसार, राजनीतिक दायित्व (Political Obligation) मैत्री (Friendship) की तरह एक बिखरा हुआ दायित्व है; यह 'अनुबंध' जैसा बँधा-बँधाया दायित्व नहीं जिसे अपनी इच्छा से स्वीकार किया गया हो, और अपनी इच्छा से समाप्त किया जा सकता हो। जैसे मित्रों के बीच पहले से यह निश्चित नहीं होता कि वे एक-दूसरे के लिए क्या-क्या करेंगे, या क्या-क्या नहीं करेंगे, वैसे ही व्यक्तियों के लिए यह पहले से निश्चित नहीं होता कि वे राज्य के लिए क्या-क्या करेंगे?

ओकशॉट के विचार से, प्रत्येक मानव-साहचर्य (Human Association) प्रथाओं (Practices) से निर्मित होता है। प्रथाएँ व्यवहार-कुशलता (Prudence) और नैतिकता (Morality) से जुड़ी रहती हैं। व्यवहार-कुशलता पर आधारित प्रथाएँ किसी ठोस उद्देश्य या उद्देश्यों (Substantive Purposes) की पूर्ति करती हैं, परंतु नैतिक प्रथाएँ किसी अन्य साध्य का साधन (Means to an End) नहीं होतीं। अत: मानव-साहचर्यों के निर्माण के दो तरीके हैं जो स्पष्टत: एक-दूसरे से भिन्न हैं। इस तरह समाज में दो तरह के साहचर्य देखने को मिलते हैं—(1) उद्यममूलक साहचर्य (Enterprise Associations) जो व्यवहार-कुशलता पर आधारित हैं, और अपने सदस्यों के किसी ठोस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाए जाते हैं; और (2) नैतिक साहचर्य (Moral Associations) जो अपने-आप में साध्य (End-in-themselves) हैं। नागरिक साहचर्य एक नैतिक साहचर्य है जिसमें परस्पर-आश्रित नियमों (Interdependent Rules) की सत्ता (Authority) को मान्यता दी जाती है।

राजनीति के अंतर्गत 'नागरिक साहचर्य' की सत्ता को तो मान्यता दी जाती है, परंतु उसके विशिष्ट नियमों (Specific Rules) की आलोचना की जा सकती है। इसमें सर्वगुणसंपन्न समाज (Perfect Society) के निर्माण या मानव-जाति के उत्थान का लक्ष्य नहीं रखा जाता, क्योंकि यह व्यवहार-कुशलता या उद्यम पर आधारित साहचर्य नहीं है। इसका ध्येय वितरणमूलक न्याय (Distributive Justice) भी नहीं है, क्योंकि नागरिक शासक (Civil Rulers) न तो किसी वस्तु के स्वामी होते हैं, न उनके पास बाँटने के लिए कोई चीज होती है। जाहिर है, ओकशॉट के विचार से अधिकारों और दायित्वों के औपचारिक वितरण से शक्तियों, अवसरों और संपत्ति का यथार्थ वितरण नहीं हो पाता।

ओकशॉट के अनुसार, यूरोप के प्रत्येक आधुनिक राज्य में शुरू से ही नैतिक और उद्यममूलक दोनों तरह के साहचर्य के निर्माण की प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। भिन्न-भिन्न राज्यों और भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक युगों में किसी एक तरह के साहचर्य की प्रधानता रही है, हालाँकि दूसरी तरह का साहचर्य सर्वथा अनुपस्थित नहीं रहा। आधुनिक राज्य के स्वरूप को समझने के लिए इन दो तरह के साहचर्यों के परस्पर संघर्ष को समझना अधिक लाभदायक होगा; प्रचलित विचारधारात्मक श्रेणियों-जैसे कि दक्षिण-पंथियों (Rightists) और वामपंथियों (Leftists) के संघर्ष या मुक्त उद्यम (Free Enterprise) और समष्टिवाद (Collectivism) के संघर्ष की चर्चा करने से उतना लाभ नहीं होगा।

रूढ़िवाद और सुधार की संभावनाएँ (Conservatism and Scope of Reform)

ओकशॉट के अनुसार, राजनीति ऐसे जन-समुदाय के सामान्य प्रबंध की गतिविधि है जो चाहे-अनचाहे एक-दूसरे के निकट आ गए हैं। राजनीति किसी भी समूह में हो सकती है, परन्तु मुख्य रूप से इसका प्रयोग 'राज्यों' के संदर्भ में होता है। राज्य के नियम और संस्थाएँ सबसे उपयुक्त तभी सिद्ध होती हैं जब वे लोगों के लिए सुपरिचित हों, और उनमें भारी फेर-बदल न किया जाए। परंतु कभी-कभी वर्तमान प्रबंधों में कोई असंगति (Incoherence) पैदा हो सकती है जिसे दूर करने के लिए सुधार (Reform) जरूरी हो जाता है। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए ओकशॉट ने इंग्लैंड में स्त्रियों के मताधिकार (Enfranchisement of Women) का उदाहरण दिया है। यह अधिनियम इसलिए नहीं बनाया गया कि ब्रिटिश संसद ने किसी ऐसे प्राकृतिक या मानवीय अधिकार को मान्यता देने का निर्णय कर लिया था जो समान मताधिकार को आवश्यक मानता था, बल्कि इसलिए बनाया गया कि विवाहित स्त्री-संपत्ति-अधिनियम (Married Women's Property Act) लागू हो चुका था, और प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) के दौरान ऐसे अनेक परिवर्तन हुए थे जिनसे 1918 तक आते-आते अंग्रेज स्त्रियों को अंग्रेज पुरुषों के साथ अनेक क्षेत्रों में समानता प्राप्त हो चुकी थी। ऐसी हालत में उन्हें मताधिकार से वंचित रखना असंगत हो गया था। अत: यह अधिनियम तत्कालीन वस्तुस्थिति की एक असंगति को दूर करने का प्रयत्न मात्र था।

ओकशॉट ने अपना चिंतन आदर्शवादी दर्शन (Idealist Philosophy) के साथ शुरू किया, परंतु आगे चलकर उसमें राजनीतिक समाज (Political Society) और निष्ठा (Allegiance) की एक जटिल संकल्पना का समावेश कर लिया। इसमें परंपराओं के निर्वाह के साथ-साथ 'मरम्मत की राजनीति' (Politics of Repair) पर बल दिया गया है। ओकशॉट के अनुसार

राजमर्मज्ञ (Statesman) का कार्य 'सबसे छोटी बुराई को चुनने की कला है।' रूढ़िवाद (Conservation) के आधार और सुधार (Reform) के महत्त्व के बारे में ओकशॉट ने जो विचार व्यक्त किए हैं, उनमें अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश विचारक एडमंड बर्क (1729-97) के विचारों की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। परंतु ओकशॉट की प्रेरणा का मुख्य स्रोत अठारहवीं शताब्दी का स्कॉटिश विचारक डेविड ह्यूम (1711-76) है। ह्यूम की तरह ओकशॉट का रूढ़िवाद भी उसके संशयवाद (Skepticism) का परिणाम है। ह्यूम ने परंपरा, स्वभाव और रीति-रिवाज का सहारा इसलिए लिया कि उसे कोई दूसरा सहारा दिखाई नहीं दिया। उसे न तो ईश्वर में विश्वास था, न प्राकृतिक कानून (Law of Nature) में, न प्राकृतिक अधिकारों (Natural Rights) में। परंतु ह्यूम ने परंपरा और रीति-रिवाज को ईश्वर या प्राकृतिक कानून की तरह पूज्य और पावन नहीं बना दिया। यह बात ओकशॉट के रूढ़िवाद पर भी लागू होती है। ओकशॉट ने बर्क और उसके उत्तराधिकारियों के विचारधारात्मक रूढ़िवाद (Ideological Conservatism) को नहीं अपनाया। ओकशॉट स्वतंत्रता (Freedom) का पुजारी है; वह स्वतंत्रता को बर्क की तरह 'आत्मसंयम और धैर्य' की देन नहीं मानता, बल्कि वह समकालीन परिस्थितियों में व्यक्ति के खोए हुए अस्तित्व को ढूंढ़ निकालना चाहता है।

संशयवाद (Skepticism)

वह दार्शनिक सिद्धांत जिसके अनुसार, सत्य (Truth) या शुभ (Good) के बारे में विश्वस्त ज्ञान प्राप्त करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है। बहुत-से-बहुत हम किसी विषय पर निजी राय (Private Opinion) बना सकते हैं।

स्वतंत्रता की संकल्पना (Concept of Freedom)

स्वतंत्रता के बारे में ओकशॉट की धारणा साधारण मनुष्य की धारणा है, या फिर वह एक साधारण अंग्रेज की धारणा है। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता है जिसे शक्ति के भारी जमाव (Great Concentration of Power) से बचाना होगा। आधुनिक शासन प्रणालियों के अंतर्गत व्यक्ति की स्वतंत्रता के दमन के बहुत गूढ़ तरीके निकाल लिए गए हैं। अत: इस स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उपयुक्त शासन प्रणाली की स्थापना आवश्यक है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए ओकशॉट ने दो प्रकार की शासन प्रणालियों में अंतर किया है: संसदीय शासन प्रणाली (Parliamentary Government) और 'लोकप्रिय शासन प्रणाली' (Popular Government)। संसदीय शासन प्रणाली व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखती है; लोकप्रिय शासन प्रणाली उसे नष्ट कर देती है। संसदीय प्रणाली के अंतर्गत विधानमंडल व्यक्ति के हित में कानून बनाता है, और निजी गतिविधियों या स्वतंत्रताओं के क्षेत्र (Spheres of Private Activities or Liberties) स्थापित करता है जिनमें व्यक्ति बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के कार्य कर सकता है। सरकार केवल निर्णेता या 'अंपायर' (Umpire) की भूमिका निभाती है जो स्वयं खेल में हिस्सा न लेते हुए खिलाड़ियों पर खेल के नियम लागू करता है, और खिलाड़ियों के हितों में टकराव पैदा होने पर ही उनका फैसला करने के लिए खेल में हस्तक्षेप करता है।

इसके विपरीत 'लोकप्रिय' प्रणाली व्यक्तियों की वैयक्तिकता (Individuality) को नष्ट करके उन्हें जनपुंज (Mass) में बदल देती है। इसके अंतर्गत सार्वजनीन वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) स्थापित करके केवल संख्या के आधार पर सत्ताधारियों की सत्ता की पुष्टि की जाती है। इसमें व्यक्ति अपनी-अपनी व्यक्तिगत पसंद का प्रयोग नहीं कर पाते क्योंकि जनपुंज के सदस्यों के नाते ढेर सारे लोग एक ही जगह से अत्यंत प्रभावशाली संकेत प्राप्त करते हैं। बाहर से मिलने वाले इस संकेत को ही वे अपनी पसंद समझने लगते हैं। अत: उनका प्रतिनिधि या नेता वास्तव में उनसे कोई अधिदेश (Mandate) प्राप्त नहीं करता, बल्कि अपनी पसंद को अपने निर्वाचकों के मुँह से कहला कर उन पर अपना अधिदेश लागू करता है। दूसरे शब्दों में, 'लोकप्रिय' राजनीतिज्ञ 'विचारधारा' (Ideology) के अस्त्र का प्रयोग करके व्यक्तियों की वैयक्तिकता का दमन कर देता है, और उन्हें अपनी हाँ-में-हाँ मिलाने वाली कठपुतलियाँ बना देता है। ओकशॉट के शब्दों में, 'जनपुंज व्यक्तियों के संयोग से नहीं बनते बल्कि व्यक्ति-विरोधी इकाइयों (Anti-individual Entities) के जोड़ से बनते हैं।' अत: इनमें व्यक्ति की स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है। व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति इतना गहरा सरोकार ही ओकशॉट को ऐसा रूढ़िवादी (Conservative) सिद्ध करता है जो हृदय से उदारवादी (Liberal) है।

जनपुंज (Mass)

दूर-दूर तक बिखरे हुए, भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों की विशाल संख्या जिनमें कोई संगठन नहीं होता, परंतु एक ही जगह से अत्यंत प्रभावशाली संकेत मिलने के कारण वे एक ही तरह सोचने लगते हैं, और एक-जैसा व्यवहार करने लगते हैं।

विचारधारा (Ideology)

उन युक्तियों और मान्यताओं का समुच्चय जिनके आधार पर किसी वर्तमान या प्रस्तावित व्यवस्था को उचित ठहराने का प्रयत्न किया जाता है। विचारधारा विश्वास (Faith) का विषय है; यह तर्क-वितर्क (Reasoning) को बढ़ावा नहीं देती। यह लोगों को कार्रवाई (Action) की ओर प्रेरित करती है। इससे प्रेरित लोग बड़े-से-बड़ा त्याग करने को तैयार हो जाते हैं।

विचारधारा की भूमिका पर प्रहार करते हुए ओकशॉट ने तर्क दिया है कि कोई सिद्धांत जिन ऐतिहासिक परिस्थितियों में प्रस्तुत किए जाते हैं, उनसे पृथक् कर देने पर वे निरर्थक हो जाते हैं। कोई भी राजनीतिक सिद्धांत (Political Principles) तभी स्वीकार किए जा सकते हैं जब उन्हें जन्म देने वाली परिस्थितियों के संपूर्ण संदर्भ के साथ ग्रहण किया जाए। विचारधारा एक परिस्थिति में जन्म लेने वाले सिद्धांतों को दूसरी परिस्थिति पर बाहर से थोपने का प्रयत्न है। वास्तव में किसी राजनीतिक साहचर्य के लक्ष्य बाहर से निर्धारित नहीं किए जा सकते। वे समुदाय के भीतर पाए जाते हैं जहाँ से उनका पता लगाना चाहिए। राजनीतिक व्यवस्था में सक्रिय भागीदारी (Active Participation) से उसकी जो निकट जानकारी प्राप्त होती है, उसकी जगह किसी बने-बनाए सिद्धांत से काम नहीं चलाया जा सकता।

निष्कर्ष (Conclusion)

मौरिस क्रैंस्टन के अनुसार, माइकल ओकशॉट ऐसा राजनीति- सिद्धांतकार है जो किसी प्रचलित श्रेणी में नहीं आता। वह ऐसा 'परंपरावादी' (Traditionalist) है जो किसी परंपरागत मान्यता में विश्वास नहीं करता; वह ऐसा 'आदर्शवादी' (Idealist) है जो अनेक प्रत्यक्षवादियों (Positivists) से अधिक संशयवादी (Skeptical) है। वह स्वतंत्रता (Liberty) का प्रेमी है, परंतु उदारवाद (Liberalism) का खंडन करता है। वह ऐसा व्यक्तिवादी (Individualist) है जो लॉक (1632-1704) की तुलना में हेगेल (1770-1831) को वरीयता देता है। वह ऐसा दार्शनिक (Philosopher) है जो दार्शनिकवृत्ति (Philosophisme) या बुद्धिवाद (Intellectualism) का अनुमोदन नहीं करता।

ओकशॉट के अनुसार, दर्शन का अर्थ संपूर्ण ज्ञान प्रणाली का निर्माण नहीं है—यह केवल चिंतन का एक तरीका है। इसका ध्येय केवल समझना और व्याख्या देना है। व्यापारियों के लिए यह व्यर्थ की वस्तु है; सुख के अभिलाषियों के लिए यह कष्टदायक है। दर्शन जीवन को उन्नत करने का साधन भी नहीं है। यह सामाजिक जीवन के सार-तत्त्व को समझने और उसका अनुसरण करने का प्रयास है।

प्र.3. हाना आरेंट के राजनीतिक विचारों की विस्तार से विवेचना कीजिए।
Discuss indetail the political thoughts of Hannah Arendt.

उत्तर

हाना आरेंट
(Hannah Arendt)

आधुनिक अमेरिकी महिला दार्शनिक और राजनीति-विचारक हाना आरेंट (1906-75) का जन्म हैनॉवर (जर्मनी) में हुआ। उसके माता-पिता जर्मन यहूदी थे। जर्मनी में नाजीवाद के उदय के बाद उसे वहाँ से भागना पड़ा, और फ्रांस के रास्ते वह संयुक्त राज्य अमेरिका पहुँच गई। इस तरह 1941 से वह अमेरिका में बस गई, और फिर वहीं की नागरिक बन गई।

स्वतंत्रता का विश्लेषण (Analysis of Freedom)

आरेंट ने प्राचीन और आधुनिक समाजों की तुलना करते हुए यह लिखा है कि प्राचीन यूनानी नगर-राज्य में 'राजनीतिक 'जीवन' (Political Life) की प्रधानता थी, परंतु आधुनिक युग में यह विशेषता लुप्त हो चुकी है। यूनानी नगर-राज्य में समान व्यक्ति, सामूहिक आदर्शों से प्रेरित होकर समुदाय की सेवा में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने को तत्पर रहते थे, और इसी क्षेत्र में ख्याति अर्जित करने के लिए प्रयत्नशील थे। नगर राज्य की बेजोड़ सफलता का रहस्य यह था कि वहाँ सत्ता (Authority) सहभागितामूलक लोकतंत्रीय संस्थाओं (Participatory Democratic Institutions) में निहित थी, परंतु पारिवारिक तथा आर्थिक मामलों के 'निजी जीवनक्षेत्र' (Private Domain) को राजनीति या 'सार्वजनिक जगत्' (Public Realm) से पृथक् रखा जाता था। इसके विपरीत, आधुनिक युग में 'सार्वजनिक' और 'निजी' क्षेत्र आपस में घुल-मिल गए हैं, अर्थात् 'राजनीतिक' और 'पारिवारिक-आर्थिक' क्षेत्रों के बीच की सीमा-रेखा मिट गई है, और 'राजनीतिक कार्रवाई' 'आर्थिक प्रशासन' में बदल गई है। इसके परिणामस्वरूप संपूर्ण चिंतन और कार्रवाई के विषय उत्पादन (Production) और उपभोग (Consumption) की समस्याओं तक सीमित रह गए हैं, जिसने जनपुंज समाज (Mass Society) को बढ़ावा दिया है। आरेंट के अनुसार, ऐसी हालत में विचार की स्वतंत्रता (Freedom of Thought) लुप्त हो गई है।

TOUCH 'n' PASS

जनपुंज समाज (Mass Society)

वह स्थिति जिसमें भिन्न-भिन्न जातियों, समुदायों और संस्कृतियों से संबंधित लोग एक-जैसी परिस्थितियों के प्रभाव से अपनी मूल परंपराओं से हटकर एक जैसा व्यवहार करने लगते हैं।

'विचार की स्वतंत्रता' क्या है-आरेंट ने इसकी व्याख्या एक विशेष ढंग से दी है। अपनी प्रसिद्ध कृति 'द ह्यूमन कंडीशन' (मानवीय दशा का विवेचन) (1958) के अंतर्गत उसने मनुष्य की गतिविधि के तीन स्तरों की पहचान की है—श्रम (Labour), कृत्य (Work) और कार्रवाई (Action)। 'श्रम' के अंतर्गत मनुष्य अपने भौतिक जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करता है और सुख-सुविधाएँ जुटाता है; यह सबसे निम्न स्तर की गतिविधि है। 'कृत्य' शिल्पकारों और कलाकारों की गतिविधि है जो स्थायी महत्त्व की वस्तुएँ बनाकर सभ्यता के निर्माण में योगदान करते हैं। इसका स्थान 'श्रम' से ऊँचा है। सबसे ऊँचा स्थान 'कार्रवाई' का है जो समान नागरिकों के बीच 'सार्वजनिक परस्पर-क्रिया' (Public Interaction) का संकेत देती है। यह राजनीति का विषय है। इसके अंतर्गत समान नागरिक अपनी-अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हुए विश्व के बारे में अपने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। अत: इसमें प्रत्येक नागरिक कुछ-न-कुछ करने और कहने को स्वतंत्र होता है। यही वह क्षेत्र है जहाँ विभिन्न व्यक्ति अपनी-अपनी विचार-शक्ति के अनुसार मानव जीवन को अर्थ प्रदान करते हुए स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं। अत: यह 'विचार की स्वतंत्रता' का क्षेत्र है। यही विशेषता इसे 'सार्वजनिक जगत्' (Public Realm) का दर्जा प्रदान करती है।

आरेंट के अनुसार, आधुनिक समाज में व्यक्तियों के निजी हितों (Private Interests) की देख-रेख के लिए इतने शक्तिशाली और राष्ट्रव्यापी संगठन बना दिए गए हैं कि सार्वजनिक समस्याओं की ओर ध्यान देने की गुंजाइश बहुत कम रह गई है। आर्थिक और वैज्ञानिक प्रगति के कारण चिंतन-मनन से जुड़े दर्शन (Introspective Philosophy) को गहरा धक्का पहुँचा है। लोग मात्र अस्तित्व की रक्षा (Sheer Survival) के लिए इतने चिंतित और व्यस्त हैं कि वे एक 'स्थायी मानव जगत्' (Stable Human World) के निर्माण के लक्ष्य को भूल गए हैं। दूसरे शब्दों में, लोग 'श्रम' और 'कृत्य' के स्तर पर जी रहे हैं; उनकी 'कार्रवाई' की क्षमता कुंठित हो गई है। इस स्थिति ने एक ऐसे उपभोक्ता समाज (Consumer Society) को जन्म दिया है, जिसमें संस्कृति को निरंतर मनोरंजन उद्योग का सेवक बनाया जा रहा है। ऐसी हालत में 'विचार की स्वतंत्रता' लुप्त हो गई है। इसे फिर से नया जीवन देने के लिए 'सार्वजनिक' और 'निजी' जीवनक्षेत्रों को पृथक्-पृथक् करना जरूरी है। इसके लिए 'राजनीतिक जीवन' को 'पारिवारिक आर्थिक' जीवन से अलग करके फिर से महत्त्वपूर्ण स्थान देना होगा।

सर्वाधिकारवाद की उत्पत्ति (Origin of Totalitarianism)

आरेंट ने सर्वाधिकारवाद की उत्पत्ति पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है, और इस क्षेत्र में विशेष ख्याति अर्जित की है। अपनी विख्यात कृति 'द ओरिजिन्स ऑफ टोटैलीटेरियानिज्म' (सर्वाधिकारवाद की उत्पत्ति) (1951) के अंतर्गत आरेंट ने तर्क दिया है कि सर्वाधिकारवाद आधुनिक युग की अभूतपूर्व घटना है। चिरसम्मत निरंकुशतंत्र और नृशंसतंत्र (Classical Despotism and Tyranny) के सिद्धांतों के अनुसार इसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। सर्वाधिकारवाद के प्रमुख उदाहरण नाजीवाद (Nazism) और स्तालिनवाद (Stalinism) हैं। ये वस्तुत: ऐसे आंदोलनों (Movements) का संकेत देते हैं जिनमें 'निजी' और 'सार्वजनिक' जीवन के सारे पक्ष एक सर्वव्यापक प्रभुत्व की प्रक्रिया में विलीन हो जाते हैं। इस प्रक्रिया का केंद्र-बिंदु एक छद्म-वैज्ञानिक विश्वदृष्टि (Pseudo-Scientific Worldview) अथवा विचारधारा (Ideology) है, जो प्रस्तुत आंदोलन को अपने तर्क (Logic) या विचार (Idea) के अनुरूप समाज के निरंतर विध्वंस और पुनर्निर्माण के लिए विवश करती है। उदाहरण के लिए, इसमें इतिहास को परस्पर-विरोधी जातियों या वर्गों के बीच अंतर्निहित संघर्ष के रूप में देखा जाता है। इस विश्वास के परिणामस्वरूप मनुष्यों की सहज बुद्धि और व्यावहारिक ज्ञान छिन्न-भिन्न हो जाता है। विचारधारा की पुष्टि और विरोधियों के दमन के लिए इसमें आतंक (Terror) का भरपूर प्रयोग किया जाता है, जैसाकि यातना - शिविरों के अनुभव से सिद्ध होता है।

सर्वाधिकारवाद और 'सत्तावाद' (Authoritarianism) में अंतर करते हुए आरेंट ने लिखा है कि सत्तावाद के अंतर्गत संपूर्ण शक्ति और उत्तरदायित्व राज्य के हाथों में केंद्रित होते हैं। इसके विपरीत, सर्वाधिकारवाद ऐसा अनियमित आंदोलन है जिसमें शक्ति और उत्तरदायित्व के स्रोत एक-दूसरे से कटे हुए और परस्पर विरोधी होते हैं। इसमें सर्वोच्च शक्ति साधारणत: गुप्त पुलिस (Secret Police) के हाथों में रहती है, सरकार के हाथों में नहीं। अत: यहाँ वैधता (Legality) और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता (National Sovereignty) निरर्थक हो जाती है। आरेंट के अनुसार, जर्मनी में यहूदी-विरोधवाद (Anti-Semitism) ने सर्वाधिकारवाद को बढ़ावा दिया। वहाँ यहूदियों को 'राज्यहीन' (Stateless) बनाकर मानव मात्र के बुनियादी अधिकारों से वंचित कर दिया गया, और तरह- तरह की यातनाएँ दी गईं। इसके अलावा, साम्राज्यवाद (Imperialism) की प्रवृत्ति ने भी सर्वाधिकारवाद को बढ़ावा दिया। इसका एक अन्य कारण यूरोपीय समाज का विघटन था जिससे उखड़े हुए जनपुंज (Uprooted Masses) इतने अकेले और दिशाहीन हो गए कि उन्हें विचारधाराओं के पीछे-पीछे गतिमान किया जा सकता था।

क्रांति का विश्लेषण (Analysis of Revolution)

अपनी एक अन्य मुख्य कृति 'ऑन रिवोल्यूशन' (क्रांति : एक विवेचन) (1963) के अंतर्गत आरेंट ने अमेरिकी क्रांति (1776) और फ्रांसीसी क्रांति (1789) के स्वरूप में अंतर स्पष्ट किया है। उसने दावा किया है कि जहाँ अमेरिकी क्रांति एक 'स्वतंत्र संविधान' (Free Constitution) स्थापित करने में सफल हुई, वहाँ फ्रांसीसी क्रांति हिंसा और अत्याचार के रूप में ढल गई। फ्रांस में व्यापक निर्धनता की सामाजिक समस्या ने स्वतंत्र कार्रवाई की राजनीतिक समस्या को पीछे धकेल दिया। क्रांतिकारी निर्धन वर्ग के प्रति 'दया' की भावना से प्रेरित होकर 'आतंक' की राह पर चल पड़े। दूसरी ओर, अमेरिकी क्रांति के फलस्वरूप स्वतंत्र संविधान का निर्माण तो हुआ, परंतु वहाँ के अधिकांश नागरिक राजनीतिक क्षेत्र से बाहर रह गए। अत: उनके मन से 'जन-सेवा' की भावना (Public Spirit) लुप्त हो गई और वे राजनीति को निजी सुख के साधन के रूप में देखने लगे। आरेंट के अनुसार, किसी भी देश में क्रांतिकारी परंपरा की सार्थकता इस बात में है कि लोग अपने सहचरों के साथ स्वतंत्र कार्रवाई में हिस्सा लेते हुए 'सार्वजनिक सुख' (Public Happiness) को बढ़ावा दे सकें। परंतु ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है।

हाना आरेंट के चिंतन में अनेक मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत की गई हैं, परंतु इसे किसी विशेष चिंतन-प्रणाली के साथ जोड़ना कठिन है। सर्वाधिकारवाद के बारे में उसका विश्लेषण बेजोड़ है। परंतु आधुनिक युग के जनपुंज समाज की विकृतियों को दूर करने के लिए आरेंट ने प्राचीन यूनानी नगर-राज्य की विशेषताओं की ओर लौट चलने का जो सुझाव दिया है, वह व्यावहारिक नहीं है।

शक्ति का विश्लेषण (Analysis of Power)

हन्ना आरेंट ने शक्ति का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है, उसे शक्ति का रचनात्मक सिद्धांत (Constructive Theory of Power) कहा जा सकता है। अपनी चर्चित कृति 'ऑन वॉयलेंस' (हिंसा-विचार और विवेचन) (1969) के अंतर्गत आरेंट ने 'हिंसा' और 'शक्ति' में अंतर करते हुए यह तर्क दिया है कि जब शासक जनसाधारण की इच्छा के विरुद्ध अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए बल (Force) का प्रयोग करते हैं तो इस चेष्टा को 'हिंसा' की संज्ञा दी जानी चाहिए। इस तरह आरेंट ने शक्ति की परंपरागत धारणा को 'हिंसा' की कोटि में रखा है। दूसरी ओर, आरेंट ने 'शक्ति' की नई संकल्पना प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जो कि अत्यंत जटिल है।

आरेंट के अनुसार, 'शक्ति' का संबंध जनसाधारण से है। समाज में शक्ति के विश्लेषण का सरोकार इस प्रश्न से नहीं है कि 'कौन किस पर शासन करता है?' या 'कौन किसे आदेश देता है, और कौन उसका पालन करता है?' वस्तुत: राजनीतिक संस्थाएँ 'शक्ति' की विविध अभिव्यक्तियां हैं। दूसरे शब्दों में, जब जनसाधारण शक्ति के सिद्धांतों का अनुसरण करते हैं तो उनकी उपलब्धियाँ राजनीतिक संस्थाओं के रूप में सामने आती हैं।

आरेंट के विचार से, शक्ति किसी व्यक्ति (Individual) की विशेषता नहीं है। जब अकेला व्यक्ति कोई प्रयास करता है तो वह शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। जब बहुत सारे लोग मिल-जुलकर कार्रवाई करते हैं, तभी शक्ति के प्रयोग का अवसर पैदा होता है। अत: शक्ति का प्रयोग लोगों के परस्पर सहयोग (Cooperation) में सार्थक होता है। प्रस्तुत अर्थ में शक्ति का संबंध किसी-न-किसी समूह से है, और वह तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक यह समूह एकजुट रहता है। शक्ति ऐसे व्यक्तियों की विशेषता है जो मिल-जुलकर कार्रवाई करते हैं, और एक ही स्वर में बोलते हैं। उनकी शक्ति की उपलब्धियों को तो विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं के रूप में कायम रखा जा सकता है, परंतु स्वयं शक्ति को संचित करके नहीं रखा जा सकता। दूसरे शब्दों में, शक्ति का प्रयोग करने वाले समूह को परस्पर सहयोग और एकता की रक्षा के लिए लगातार सजग रहना होगा; उसमें तनिक भी ढील आ जाने पर उसकी शक्ति लुप्त हो जाएगी।

शक्ति की ये विशेषताएँ हमें 'हिंसा' और 'शक्ति' में अंतर करने में सहायता देती हैं। आरेंट के अनुसार, शक्ति 'सार्वजनिक जगत्' (Public Realm) को एकजुट रखती है जबकि 'हिंसा' उसके अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर देती है। प्रस्तुत संदर्भ में 'सार्वजनिक जगत्' और 'राज्य' (State) में अंतर करना उपयुक्त होगा। जब जनसाधारण स्वेच्छा से ऐसा व्यवहार करते हैं कि वे एक-दूसरे के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर देते हैं, तब वे 'सार्वजनिक जगत्' का निर्माण करते हैं। जब कोई बाह्य संगठन उन्हें किसी विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए विवश करता है, तब उन पर राज्य का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। आरेंट के अनुसार, 'शक्ति' उन लोगों की विशेषता है जो 'सार्वजनिक जगत्' का निर्माण करते हैं; 'हिंसा' राज्य की विशेषता है जिसका प्रयोग लोगों की इच्छा के विरुद्ध किया जाता है। हिंसा से काम लेते समय कुछ विशेष उपकरणों का प्रयोग किया जाता है; अत: इसे संचित करके रखा जा सकता है। आरेंट ने चेतावनी दी है : 'जहाँ यथार्थ शक्ति अनुपस्थित हो, वहाँ रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए हिंसा उभरकर सामने आ जाती है।' मतलब यह कि जहाँ लोग एकजुट होकर कार्रवाई नहीं करते, वहाँ वे राज्य के उत्पीड़न का शिकार हो जाते हैं।

TOUCH 'n' PASS

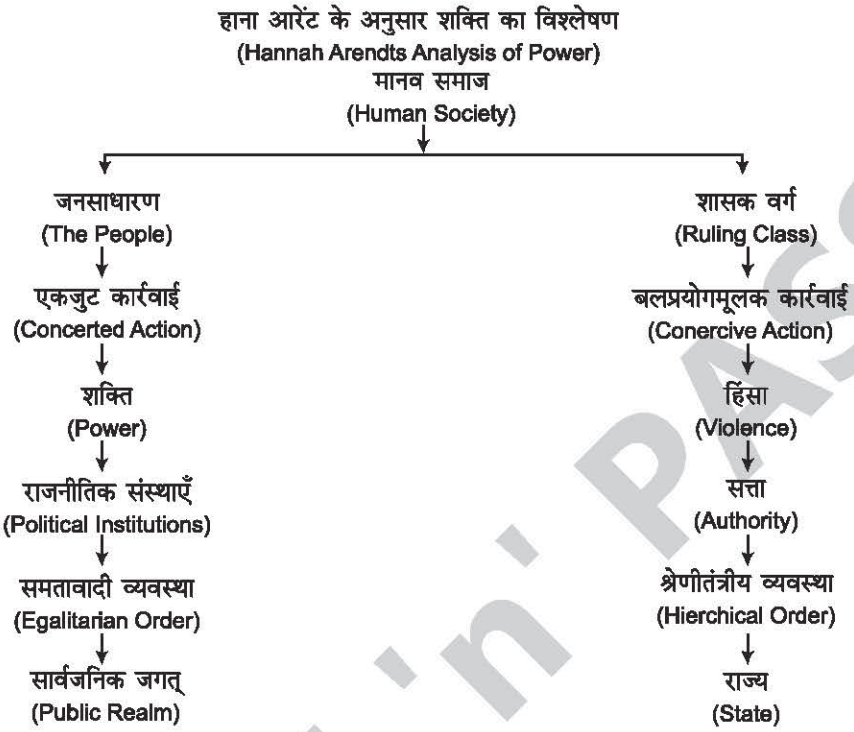

आरेंट की शब्दावली में 'शक्ति' और 'सत्ता' (Authority) का संबंध भी भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्रों से है। 'सत्ता' का संबंध 'आदेश देने और उसका पालन करने' (Command-Obedience Relationship) के क्षेत्र से है। यह संबंध श्रेणीतंत्रीय व्यवस्था (Hierarchical Order) को जन्म देता है। यह हिंसा पर आधारित है अत: इसका संबंध 'राज्य' के क्षेत्र से है। दूसरी ओर, शक्ति का संबंध जनसाधारण से है; अत: वह समतावादी व्यवस्था (Egalitarian Order) को जन्म देता है। यह मतैक्य (Consensus) और समझाने-बुझाने (Persuation) की प्रक्रिया पर आधारित है। अत: इसका संबंध 'सार्वजनिक जगत्' से है। आरेंट के विचार से, केवल शक्ति ही वैध सत्ता (Legitimate Authority) का सृजन कर सकती है; हिंसा ऐसा कभी नहीं कर सकती। उसने चेतावनी दी है : 'हिंसा शक्ति को नष्ट कर सकती है; यह उसका सृजन करने में सर्वथा असमर्थ है।'

श्रेणीतंत्र (Hierarchy)

ऐसी व्यवस्था जिसके विभिन्न हिस्से ऊँची-नीची श्रेणियों में बँटे रहते हैं। प्रत्येक श्रेणी अपने से निचली श्रेणी के ऊपर सत्ता का प्रयोग करती है।

आरेंट ने अपने एक निबंध 'ऑन पब्लिक हैपीनेस' (सार्वजनिक सुख : विचार और विवेचन) (1970) के अंतर्गत शक्ति के सार्वजनिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अमेरिकी लोकतंत्र के अनुभव को बहुत सराहा है। उसने तर्क दिया है कि अमेरिका में किसी व्यक्ति को तब तक सुखी नहीं माना जाता जब तक वह 'सार्वजनिक सुख' में हिस्सा नहीं लेता; किसी व्यक्ति को तब तक स्वतंत्र नहीं माना जाता जब तक वह सार्वजनिक स्वतंत्रता में हिस्सा नहीं लेता, और किसी व्यक्ति को तब तक सुखी या स्वतंत्र नहीं माना जाता जब तक वह सार्वजनिक शक्ति में हिस्सा नहीं लेता।

संक्षेप में, शक्ति के बारे में आरेंट की संकल्पना राज्य की भर्त्सना करती है क्योंकि वह बल-प्रयोग या हिंसा पर आधारित है। यह जनसाधारण को ऐसी समाज-व्यवस्था स्थापित करने के लिए सहयोग की ओर प्रेरित करती है जो उनके सामान्य सुख और स्वतंत्रता को बढ़ावा दे सके।

आरेंट के विश्लेषण का मुख्य संदेश यह है कि उत्पीड़ित वर्ग अपने-आपको संगठित करके ऐसी शक्ति जुटा सकते हैं जिससे वे हिंसा और उत्पीड़न का प्रयोग करने वाले शासक वर्ग का मुकाबला कर सकते हैं।

TOUCH 'n' PASS

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. सिमोन डी बेवॉयर का जन्म कहाँ हुआ था?
(क) पेरिस (ख) लन्दन (ग) मॉस्को (घ) टोक्यो

उत्तर (क) पेरिस

प्र.2. 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' (A Theory of Justice) में न्याय के विषय पर उदारवादी सिद्धान्त किसने प्रस्तुत किया?
(क) माइकल ओकशॉट (ख) जॉन रॉल्स
(ग) हाना आरेंट (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) जॉन रॉल्स

प्र.3. रॉल्स की मूल स्थिति में जिन मनुष्यों की कल्पना की है वे–
(क) विवेकशील कर्त्ता है (ख) ईर्ष्यालु भी नहीं है
(ग) स्वार्थपरायण तो हैं, परन्तु अहंवादी नहीं (घ) ये सभी

उत्तर (घ) ये सभी

प्र.4. जॉन रॉल्स की प्रसिद्ध कृति 'न्याय का सिद्धान्त' संयुक्त राज्य अमेरिका में कब प्रकाशित हुई?
(क) 1971 (ख) 1871
(ग) 1807 (घ) 1907

उत्तर (क) 1971

प्र.5. रॉल्स ने प्रक्रियात्मक न्याय के कितने रूप बताए हैं?
(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) दस

उत्तर (ख) तीन

प्र.6. 'वस्तुओं के उपयुक्त वितरण के स्वाधीन मानदंड के साथ-साथ ऐसी प्रक्रिया भी निर्दिष्ट कर दी है जो निश्चित रूप से लक्ष्य की पूर्ति करती है।' यह रॉल्स के किस प्रक्रियात्मक न्याय के अन्तर्गत आता है?
(क) पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय (ख) अपूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय
(ग) शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय (घ) अशुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय

उत्तर (क) पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय

प्र.7. कौन-से प्रक्रियात्मक न्याय में, वितरण का स्वाधीन मानदंड निर्दिष्ट नहीं किया जाता, बल्कि केवल विधियों और प्रक्रियाओं की व्यवस्था की जाती है?
(क) पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय (ख) अपूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय
(ग) शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय (घ) अशुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय

उत्तर (ग) शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय

प्र.8. वह सिद्धान्त जो केवल ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त ज्ञान को प्रामाणिक मानता है; अन्य किसी तरह के ज्ञान को मान्यता नहीं देता, कहलाता है।
(क) अनुभववाद (ख) तर्कबुद्धिवाद
(ग) रूढ़िवाद (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) अनुभववाद

प्र.9. वह सिद्धान्त जो चिरकाल से प्रचलित सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का सम्मान करता है, कहलाता है–
(क) अनुभवाद (ख) तर्कबुद्धिवाद
(ग) रूढ़िवाद (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) रूढ़िवाद

TOUCH 'n' PASS

प्र.10. 'ऑन ह्यूमन कंडक्ट' (मानवीय आचरण की विवेचना) किसकी प्रसिद्ध कृति है?
(क) जॉन रॉल्स (ख) माइकल ओकशॉट
(ग) हाना आरेंट (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) माइकल ओकशॉट

प्र.11. 'रेशनालिज्म इन पॉलिटिक्स एंड अदर एस्सेज' (राजनीति में तर्कबुद्धिवाद तथा अन्य निबंध) किसकी रचना है?
(क) जॉन राल्स (ख) माइकल ओकशॉट
(ग) हाना आरेंट (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) माइकल ओकशॉट

प्र.12. राजनीतिक गतिविधि का उद्देश्य क्या होना चाहिए?
(क) राज्य की नाव को गतिमान रखना (समाज की प्रचलित प्रथाओं, रीति-रिवाज की निकट जानकारी प्राप्त कर उनका अनुसरण करना और समन्वय स्थापित करना)
(ख) धन-संपदा या समृद्धि बढ़ाना नहीं
(ग) (क) और (ख) दोनों
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (ग) (क) और (ख) दोनों

प्र.13. प्रत्येक मानव-साहचर्य (Human Association) प्रथाओं (Practices) से निर्मित होता है, प्रथाएँ व्यवहार-कुशलता और नैतिकता से जुड़ी होती हैं। समाज में कितने साहचर्य देखने को मिलते हैं?
(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पाँच

उत्तर (क) दो

प्र.14. राजमर्मज्ञ (Statesman) का कार्य 'सबसे छोटी बुराई को चुनने की कला है।' यह कथन है–
(क) जॉन रॉल्स (ख) माइकल ओकशॉट
(ग) हाना आरेंट (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) माइकल ओकशॉट

प्र.15. ओकशॉट ने दो प्रकार की शासन प्रणालियों में अन्तर किया, इस वाक्य के लिए निमन में से कौन-सा तथ्य असत्य है?
(क) संसदीय शासन प्रणाली व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखती हैं
(ख) लोकप्रिय शासन प्रणाली व्यक्ति की वैयक्तिकता को नष्ट करके उन्हें जनपुंज में बदल देती हैं
(ग) संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत विधानमंडल व्यक्ति के हित में कानून बनाता है
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

प्र.16. 'द ह्यूमन कंडीशन' (मानवीय दशा का विवेचन) किसकी प्रसिद्ध कृति है?
(क) जॉन रॉल्स (ख) माइकल ओकशॉट
(ग) हाना आरेंट (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) हाना आरेंट

प्र.17. आरेंट ने मनुष्य की गतिविधि के लिए कितने स्तर बताए?
(क) दो (ख) तीन
(ग) चार (घ) पाँच

उत्तर (ख) तीन

प्र.18. आरेंट ने मनुष्य की गतिविधि के तीन स्तर बताए इसमें कार्रवाई (Action) का अर्थ है–
(क) मनुष्य अपने भौतिक जीवन की आवश्यकताएँ की पूर्ति करता है
(ख) शिल्पकारों और कलाकारों की गतिविधि है

TOUCH 'n' PASS

(ग) समान नागरिकों के बीच 'सार्वजनिक परस्पर-क्रिया' का संकेत देती है

(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (ग) समान नागरिकों के बीच 'सार्वजनिक परस्पर-क्रिया' का संकेत देती है

प्र.19. निम्नलिखित में से हाना आरेंट की रचना है–

(क) द ह्यूमन कंडीशन (मानवीय दशा का विवेचन) (1958)

(ख) द ऑरिजिन्स ऑफ टोटैलीटेरियानिज्म (सर्वाधिकारवाद की उत्पत्ति) (1951)

(ग) ऑन रिवोल्यूशन (क्रान्ति : एक विवेचन) (1963)

(घ) उपरोक्त सभी

उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

प्र.20. आरेंट की चर्चित कृति 'ऑन वॉयलेंस (हिंसा-विचार और विवेचन) (1969) के अन्तर्गत अन्तर स्पष्ट किया–

(क) प्राकृतिक और भौतिक अवस्था में (ख) हिंसा और शक्ति में

(ग) उच्च समाज और निम्न समाज में (घ) तानाशाही और प्रजातन्त्र में

उत्तर (ख) हिंसा और शक्ति में

प्र.21. आरेंट की शब्दावली में 'शक्ति और सत्ता' का संबंध भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्रों से है, सत्ता का सम्बन्ध है–

(क) राज्य पर शासन करना (ख) जनसमूह के द्वारा कानून बनाना व लागू करना

(ग) आदेश देना और उसका पालन करना (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) आदेश देना और उसका पालन करना

प्र.22. निम्नलिखित में से समतावादी व्यवस्था को जन्म देता है–

(क) शक्ति (ख) सत्ता

(ग) हिंसा (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) शक्ति

❑

TOUCH 'n' PASS

❑ यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।

❑ इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।

❑ इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।